# मधुविन्दनम्

## ( स्फुट विचार संग्रह )

लेखक

***रामाश्रय तिवारी***

पूर्व उप-परिवहन आयुक्त, उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण – 2025

© लेखक

रामाश्रय तिवारी
पूर्व उप परिवहन आयुक्त, उत्तर प्रदेश

प्रकाशक
रामाश्रय तिवारी
117-सी, टैगोर टाउन, प्रयागराज
मूल्य : 350/-

# *वाणी वन्दना*

बालचापल्यसंयुक्ता   वार्धक्ये  मन्दगामिनी।
भागीरथीप्रवाहेव  वाग्गतिः अपि सुशोभिनी।।
समुद्रं प्राप्य सुरसरिता  विलीना तीर्थवासिनी।
सुमसं प्राप्य वाग्देवी  हृदयस्था यशस्विनी।।

*जयतु माता सरस्वती !*

# *विषय सूची*

**वैयक्तिक विषय**

*प्रकरण संख्या*


मुख्य अंश – 2, 3, 15, 23, 25, 28, 33, 43, 44, 45, 46, 47, 57, 58, 60, 61, 62, 65, 74, 79, 82, 83, 88, 92, 96, 97, 98, 100, 111, 115, 117, 120, 121, 122, 126, 127, 131, 135, 137, 138, 141, 142

परिशिष्ट - 2, 3, 4, 5, 6, 9, 12, 19, 22, 31, 33, 36, 39, 40, 42, 48, 57, 59, 62, 63, 64, 65, 66, 67, 84, 86, 87, 88, 90, 91, 92, 93, 94, 96, 98, 99, 100, 102, 103, 106, 107


**सामाजिक विषय**

*प्रकरण संख्या*


मुख्य अंश – 1, 4, 6, 7, 8, 13, 16, 17, 18,,, 24, 26, 29, 31, 34, 35, 36, 38, 39, 48, 49, 50, 51, 52, 55, 63, 65, 68, 69, 72, 73, 76, 78, 80, 86, 87, 89, 91, 93, 94, 99, 101, 102, 103, 105, 107, 108, 109, 110, 112, 114, 118, 123, 124, 125, 130, 132, 136, 139, 140

परिशिष्ट - 1, 7, 8, 10, 14, 15, 16(क), 16(ख), 17, 20, 23, 26, 27, 30, 38, 41, 43, 46, 47, 50, 53, 56, 58, 61, 68, 69, 73, 74, 76, 79, 80, 81, 82, 85, 89, 95, 101, 104, 105, 108

## राजनैतिक विषय

प्रकरण संख्या

मुख्य अंश – 5, 9, 10, 11, 12, 14, 19, 20, 21, 22, 27, 30, 32, 37, 40, 41, 42, 53, 54, 56, 66, 67, 70, 71, 77, 81, 84, 86, 90, 95, 104, 106, 113, 116, 119, 128, 129, 133, 134

परिशिष्ट - 11, 13, 18, 21, 24, 25, 28, 29, 32, 34, 35, 37, 44, 45, 51, 52, 54, 55, 60, 70, 71, 72, 75, 77, 78, 83, 97

# आत्मनिवेदन

*त्रिपथगा गंगेव त्रिविध मधुबिन्दून् वितरती।*
*कृतिः वागीशाकृपया सुजनहित एषा नयवती।*

इस कृति में निहित नीतिज्ञान के उन मधुबिन्दुओं को सर्वजन सुलभ कराने का प्रयास है जो स्वधर्म के पथ पर अनवरत चलते हुए कर्मफल के विपाक के रूप में प्राप्त हुए हैं। व्यक्तिपरक धर्म, समाजपरक धर्म और राजनीति परक धर्म (राजधर्म) की इस त्रिवेणी में स्नान करके पवित्र और पावन रह सकते हैं। ''भिन्नरुचिः हि लोकः'' सत्य उक्ति है, अतः यह कहना सही नहीं होगा है कि यह कृति सभी को अभीष्ट और ग्राह्य होगी। कुछ लोगों के लिए व्यर्थ भी हो सकती है। जीवन को सार्थक बनाने के लिए इच्छुक व्यक्ति चार पुरुषार्थों में से अधिकांश की साधना के गुर इस पुस्तिका से ग्रहण कर सकता है।

साहित्य समाज का दर्पण है की मान्यता इस रचना में स्पष्ट है। वर्तमान समय के व्यक्ति, समाज और राजनीति से संबंधी सर्वांगीण परिस्थितियों का नग्न चित्र तथा इनके आच्छादन हेतु वस्तु स्वरूप शास्त्र-सम्मत निदान इसमें विविध भांति निरूपित हैं। इस रचना में कुल 142 मधुबिन्दु तथा परिशिष्ट में 108 मधुकणिकायें संग्रहीत हैं। सभी प्रकरणों में सभी अंगों के लएि कुछ न कुछ अंश हैं। मुख्य कथ्य के अनुसार व्यक्ति समाज और राजनीति विषयक नाम से तीन शीर्षकों में विषय सूची का विभाजन किया गया है।

इस रचना से पहले 'चरैवेति' तथा 'चरन् वै चरन्' नाम से दो कृतियां लगभग इसी तरह की, प्रकाशित हैं। यह भी इसी क्रम में तृतीय पद-न्यास है। चलते रहने पर मधु, (जीवन का रहस्य या पुरुषार्थों) का लाभ होता है। 'चरैवेति

चरैवेति चरन वै मधु विन्दति'। इसका अर्थ है कि मधु (अभीष्ट वस्तु) चलते रहने पर ही मिलती है। चलना बन्द करने पर मधुस्राव बन्द हो जाता है। चलने की क्रिया का फल मधु है। क्रिया और इसका फल संबद्ध है।

ऐतरेय ब्राह्मण में इन्द्र ने राजकुमार रोहित को चार बार चलते रहो का उपदेश दिया है। अंतिम बार कहा है –

*कलिः शयोनो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।*
*त्रेता समुत्तिष्ठन् कृतः संपद्यते चरन्।। चरैवेति ।।*

अर्थात सोते रहना कलियुग, जग-जाना (होश में) द्वापर, उठकर खड़ा होना त्रेता और चलना सतयुग है। अतः कृतार्थ होने के लिए चलते रहें। सांसारिक जीवन में चारों युगों की अनुभूति करना अपने वश में है। कृतयुग में जीना, (सन्मार्ग पर चलते रहना) परमगति का साधन है।

अब प्रकाशन के लिए लिखने से विराम लेना उचित लगता है। जितना लिखा गया वह हमारे संकल्प की पूर्ति के लिए पर्याप्त हो सकता है। अधिक पिष्टपेषण करना बुद्धि दौर्बल्य है। विशाल भूमि और अनन्त काल में कोई समान धर्मा पैदा होगा जो इन बातों पर आदर देकर सुपरिणाम से समाज को प्रकाशित करेगा। आर्षवाक्यों, सज्जनों के संदेश, विविध अध्ययन और स्वानुभूति सेमैं जो कुछ ग्रहण कर सका उसे अपनी दस कृतियों के माध्यम से सर्वार्थ प्रकाशित करते ऋषिऋण से उऋण होने का प्रयास किया है। ईश्वर मेरे प्रयास को सफल करे।

विद्वन्निष्ठ,
***रामाश्रय तिवारी***

# मधुविन्दनम्

## ( 1 )

## स्वतंत्रता की सुनामी

स्वतंत्रता की सुनामी पश्चिम से चलकर ,पूरे विश्व को आक्रांत करने लगी है। भारत में मनचलों, दुराचारियों व भ्रष्ट लोगों की कमी नहीं रह गई है। उसके प्रभाव से अपने यहां- (1) स्त्री के वस्त्र धारण और कामाचार तथा भ्रष्टाचारियों के अर्थार्जन में स्वतंत्रता से नग्नता का प्रकोप नित नई सीमा छू रहा है। इसमें हस्तक्षेप करने का साहस शासन में नहीं रह गया है। (2) सत्ता केलिए भ्रष्टाचार, पाखंड, असत्य, मिथ्याप्रचार, अनीति, शोषण आदि हथकंडों का ब्रह्मास्त्र चलाने और देश की आर्थिक स्थिति तथा शांतिव्यवस्था को भी दांव पर लगाने में यहां के नेता स्वतंत्र हैं। (3) पश्चिमी प्रभाव के शिकार हुये चिंतक और अवसरवादी समाजसेवी, लोकनीति को समाप्त करने तथा सामाजिक मान्यताओं को मिथ्याचार सिद्ध करके, विदेशी संस्कृति को ही भारतीय सिद्ध करने का प्रयास करने में स्वतंत्र हैं। (4) स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए, स्वतंत्र चिन्तन, अभिव्यक्ति तथा आचरण में राजकीय भय पैदा करना, सामाजिक विघटन तथा अविश्वास की स्थिति पैदा होना आदि अनेक स्थितियां इस नई स्वतंत्रता में बढ़ती जा रही हैं। यह चिन्ताजनक बातें हैं। इनसे कहीं न कहीं हर स्तर के लोग दुखी हैं। विशेष बात स्पष्ट है कि भारत मे हानिकारक स्वतंत्रता की सुनामी है और आवश्यक स्वतंत्रता बाधित है।

स्वतंत्रता की सीमा का अतिक्रमण रोकना, अपनी शक्ति के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति की जिम्मेदारी है। निर्भय रहकर मर्यादा का निर्धारण करने और नैतिक मानदंडों को स्थापित करने में लेखनी का बल भी महत्वपूर्ण है।

## ( 2 )

## महानता की परख

व्यक्ति की महानता के निर्धारण में दो तरीके प्रचलित हैं। प्रथम तरीका धरातलीय है जिसमें भौतिक उन्नति, सफलता, प्रतिष्ठा आदि के अनुसार महानता मानी जाती है। इतिहास में, अधिकतर इसी मापदण्ड का प्रयोग मिलता है। दूसरा

तरीका जीवन के उच्च मूल्यों के लिए आचरण और आध्यात्मिक उत्कर्ष पर आधारित होता है। उच्च आदर्शों को लक्ष्य बनाने वाले, सफलता या असफता का चिंतन न करने वाले, कर्तव्य कर्म (स्वधर्म) का पालन करने वाले की कर्मयोग पर निष्ठा के आधार पर, महानता का निर्धारण विशेष महत्वपूर्ण है। गीता में प्रथम कोटि के लोगों को कृपण कहकर निन्दा किया है और समत्वबुद्धि वाले को ही महान बताया है। 'बुद्धौ शरणमन्वच्छ कृपणा फलहेतवः' –गीता।

लोक में सफल होनेवाले को महान मान लिया जाता है किन्तु महान माने गये लोगों की दृष्टि में उच्च आदर्शोंवाला कर्मयोगी ही महान होता है। वह महानों के लिए भी महान होता है। सामान्य लोग वास्तविक महत्ता का आकलन नहीं कर पाते हैं।

अकबर को लोग महान कहने लगे किन्तु अकबर की मान्यता मे राणा प्रताप महान थे, वह राणा की महानता का कायल था। सिकन्दर को महान कहा गया किन्तु सिकंदर दार्शनिक डायगिनीज ही महानता का कायर था। इसी तरह इन्द्र केलिए कर्ण, दधीचि व वृहस्पति जैसे, राम के लिए वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य आदि उदाहरण हैं जिनमें महानों के लिए महान मानने योग्य व्यक्ति रहे हैं। भौतिक महत्ता योग्यता द्वारा या तिकड़म से प्राप्त अथवा बाहर से आरोपित हो सकतीं है किन्तु आध्यात्मिक महत्ता ईश्वरीय न्याय से, पात्रता होने पर, मिलती है। अहंकारी व्यक्ति वास्तविक महानता को नहीं देख सकता है। अहंकार का त्याग करके, वास्तविक महानता की पहचान करने वाले और उन्हें आदर देने वाले महान हैं।

**( 3 )**

## ब्राह्मण सावधान!

इस सृष्टि में चार वर्णों की व्यवस्था मनुवादी नहीं, ईश्वरीय है।ऐसा होने के कारण यह व्यवस्था अमर है। कोई पक्ष प्रबल तो कोई दुर्बल होता रहता है। सन्तुलन बनने पर विकास होता है। इस समय ब्राह्मण के दुर्बल होने से अव्यवस्था होचली है। अच्छे चिंतक होकर सम्पूर्णानंद ने ब्राह्मण को सावधान किया तो लोगों नें बुरा माना था। बालादपि भसुभाषितम्, अतः, सही बात को मान लेना ही बुद्धिमानी है।

ब्राह्मण में बुद्धिबल, क्षत्री में बाहुबल, वैश्य में धनबल और शूद्र में जनबल होता था। अब भी कुछ ऐसा ही है।हर वर्ण अपनी विशेषता सुरक्षित रखता है। ब्राह्मण को दुर्बल, गरीब या असहाय कहने पर बुरा नहीं लगता है किन्तु बुद्धि पर आक्षेप, मूर्ख आदि सुनना वह नहीं सह सकता है, उसे सम्मान चाहिए। पूर्वजों के आनुवंशिक प्रभाव से अब तक कुछ सम्मान मिल रहा है। अब भी लोग हिन्दू बनने के लिए जनेऊ पहनकर ब्राह्मण ही बनते हैं। अब, अपनी विशेषता और सम्मान को सुरक्षित रखने के लिए उसको आचार, व्यवहार, जीवन के मूल्य आदि में भी विशिष्टता रखना अनिवार्य होगया है ।

प्रथम आवश्यकता है -कि अपने व्यक्तिगत जीवनचर्या को शुद्ध या हो सके तो पवित्र अवश्य रक्खें। रोटी-बेटी (भोजन व विवाह)के विषय में सजग रहें। विवाह संबंध समान कुलपरंपरा में करें। भोजन के पदार्थ शुद्ध होने पर मन शुद्ध होता है। भोजन की विधि सही रहे। हाथ, पैर व मुंह धोकर खायें। शुद्ध वस्त्र में, पीढ़ा पर बैठकर खाना सात्विक विधि है। हाथ पैर आदि धोकर कुर्सी पर बैठकर खाना राजसी विधि है। जूता पहनकर चलते हुये पशुवत खाना तामसी विधि है। कम से कम राजसी विधि रखना सर्वत्र संभव है।

दूसरी बातें - सूर्योदय के पहले उठना, स्नान, सूर्यार्घ, संध्यावंदन, इष्टदेव की आराधना आदि को दिनचर्या का अंग बनाना, शिखा व जनेऊ का सम्मान व उनके द्वारा ब्राह्मणत्व का स्मरण करते रहना आदि आचार का पालन करना हैं। यह सब कार्य सुवह-शाम में मिलाकर दिनभर में तीस मिनट देने पर भी संभव हैं।

तीसरी बातें - व्यवहार में सत्य, परोपकार, क्षमा ,विनम्रता आदि के साथ ही स्वाभिमान की रक्षा करना है। अर्थ के संग्रह मे तथा स्त्री जाति से सम्पर्क में शुचिता और पारदर्शिता रखना, क्षुद्र बातों में समय न विताना, जीवन के उच्चतम मूल्यों के लिये संकल्प रखना आदि आदर्श मानवीय गुणों का आदर करना सराहनीय हैं।

चौथी बातें - स्वधर्म का पालन करना और धन, सत्ता आदि परधर्म के प्रलोभन से बचे रहना हैं। समाज व देश मे कुरीति, अनीति आदि के निवारण का प्रयास करना। सत्ता देने वाला और उसके नियंत्रक बनें, भोग करने वाला नहीं।

त्याग की वृत्ति से सब के लिए विश्वसनीय बनें।

यहां ब्राह्मण के लिए कुछ बातें लिखी गई हैं। इनके होने पर पूर्णता का आधान होगा। ब्राह्मणत्व सुरक्षित रखने केलिए संकल्प बनाने पर,पूर्वजों का आशीर्वाद मिलेगा। हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा पुनः शीर्ष पर होगी। क्षुद्र कलह को छोड़कर ब्राह्मण असली मनुवादी बने, तथा अपनी योग्यता को तदनुरूप बनाये। तब मनुवाद पर आक्षेप समाप्त हो जायेगा। इसके लिए ही सावधान होने का आग्रह है।

( 4 )

## आश्चर्य की बात - 1

आज की परिस्थिति में, अपने देश में, कुछ लोगों को रामराज्य और अभूतपूर्व विकास की गति दिखाई पड़ रही है तो कुछ लोगों को असहाय समाज, निरंकुश तथा अनीतिपरक शासन और पतन की पराकाष्ठा का भान हो रहा है। इस विरोधाभास का कारण है कि लोगों की दृष्टि ही सदोष और पूर्वाग्रहग्रस्त है। दृष्टि ही सृष्टि सिद्ध हो रही है।

निष्पक्ष चिंतन करने पर भी दोष दिखाई पड़ सकते हैं। उनको गुण मानना अंधभक्ति है। कुछ गुण भी मिलेंगे जिनका समर्थन होना चाहिए। दोषों की निन्दा मात्र में नहीं बल्कि उनके निराकरण हेतु सकारात्मक चिंतन व सहयोग में अभिरुचि लेना देशभक्ति है। सत्य स्थाई है, सत्ता अस्थायी। सत्य के सामने सत्ता को झुकना पड़ता है। समन्वय होने पर आश्चर्य का भी निवारण होगा।

( 5 )

## आश्चर्य की बात- 2

अंग्रेजों की सेना में भारतीय लोग भी नौकरी करते थे।उनमें से कुछ लालच में तथा कुछ जीविका केलिए स्वदेशी सेना के विरुद्ध लड़े है। महाराष्ट्र में महर जाति के लोगों का इतिहास अन्य लोगों से भिन्न है। वे मानसिक रूप से अंग्रेजों के गुलाम होकर अंग्रेजों का साथ दिये। पेशवाओं से युद्ध में अंग्रेजों की विजय को इन गुलामों ने अपनी विजय माना। दो सौ वर्ष पहले के इस कुकृत्य को ये लोग अब भी शौर्य दिवस के रूप मे मनाते हैं।यह आश्चर्यजनक है।

अंग्रेजों के गुलामी की मानसिकता स्वतंत्र भारत में भी व्याप्त है। सुभाष चन्द्र बोस को देशद्रोही मानना संभव था किन्तु देश के स्वाभिमान के विरुद्ध शौर्य दिवस मनाने वालों के विरुद्ध कार्यवाही करने की हिम्मत नहीं है। अंग्रेजों के संरक्षण में, इस जाति की विशेष भूमिका व प्रभाव स्वतंत्रता के पहले से ही अब तक हैं। संविधान से सुरक्षित व वोट बैंक के इन मालिकों को गुलामी से मुक्त करना संभव नहीं लगता है। स्वतंत्र देश में यह आश्चर्य की बात है।

इतना ही नहीं, यदि इन पर नियंत्रण नहीं किया गया तो एक दिन यूनियन जैक झंडे के नीचे शौर्य दिवस मनाया जायेगा। स्वतंत्र देश में यह देश के स्वाभिमान को धराशायी करने वाली बात हो जायेगी। इस परम आश्चर्य को रोकना पड़ेगा। सभी दलों को एकमत होकर इस कुप्रथा को बन्द कराना चाहिए।

## ( 6 )

## हिन्दू के स्तरभेद

हिन्दू कोई जाति या धर्म नहीं है। यह भारतीय वैदिक संस्कृति की अमूल्य मान्यताओं, परम्पराओं, ज्ञान और सद्गुणों का समन्वित रूप है जो, कमोवेश, विश्व भर में सुरक्षित है। अपने मूलस्थान भारत में ही इसका रूपान्तरण तीव्र गति से हो रहा है। विदेशी संस्कृति और धर्म के माननेवालों के प्रभाव से बहुत से हिन्दू अपनी मूल मान्यताओं के मानने मे शिथिल हो रहे हैं। उनसे विवाह संबंध करने पर हिन्दुत्व का नाममात्र भी शायद ही बचता है। यह सभी लोग, व्यक्तिगत हित को ध्यान में रखते हुये, अपने को हिन्दू घोषित करते रहते हैं। हिन्दू संगठन को देखते हुये सब को हिन्दू माना जाता है। इस तरह हिन्दू के तीन भेद हैं।

प्रथम - वे लोग हैं जिनमें में हिन्दुत्व के सभी लक्षण सुरक्षित हैं। द्वितीय - वे लोग हैं जो सद्गुणों के पालन में शिथिल हैं किन्तु दूसरी संस्कृति से संबद्ध नहीं हैं। तृतीय - वे लोग संदिग्ध हिंदू हैं जो तथाकथित क्रांतिकरी विचारक, सिनेमा के प्रभाव में नग्नाचारी, विवाहादि संबंध से अन्य धर्म ,देश और संस्कृति से प्रभावित या विदेशी रक्त और संस्कृति से जन्मजात लगाव रखने वाले हैं।

हिन्दू जाति नहीं है, अतः कोई जन्मना हिन्दू नहीं कहा जायेगा। यह उपाधि संस्कृति से संबद्ध है अतः प्रथम कोटि का हिन्दू रहने के लिए यहां की मूल संस्कृति का उपासक होना आवश्यक है।

## ( 7 )

## अज्ञानी का कुतर्क

कल एक आदमी का वक्तव्य सुना कि वेद व उपनिषद धर्म हैं, मनुस्मृति धर्म नहीं है, वह मनुवादी कानून हैं। अंबेडकर धर्म के द्रोही नहीं थे, वे वेद का आदर करते थे। वे स्वार्थी मनुवादी नियमों के विरुद्ध थे। इसीलिए उपनिषद को नहीं, मनुस्मृति को उन्होंने जलाया था। उन्हें पता नहीं कि ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् - आदि वेद में ही है। स्मृतियां वेद से ही उत्पन्न हैं और उपनिषदों से दर्शन का विकास हुआ है जो स्मृतियों में जीवन का परम लक्ष्य निर्धारित करता है। तीनों का लक्ष्य एक ही है। अब कुतर्की लोगों से शास्त्रार्थ करना मूर्खता है।

अतः शास्त्रार्थ के लिए नहीं, सामान्य लोगों को वस्तुस्थिति को अवगत कराने के लिए यह लिखा गया। हम अपनी पूंजी सुरक्षित रक्खें। संत तुलसी दास ने पहले ही सचेत किया है--

*हरितभूमि तृणसंकुल समुझि परइ नहिं पथ।*
*जिमि पाखंड विवाद से लुप्त होहिं सद्ग्रंथ।।*

## ( 8 )

## शिक्षा की सार्थकता

जब हम पांचवीं कक्षा में पढ़ते थे तो लोगों का पत्र लिखने का काम कर दिया करते थे। पत्र का आरंभ करना इस तरह सिखाया गया था – 'अत्र कुशलं तत्रास्तु। यहां से सभी बड़ों का आशीर्वाद और छोटों का प्रणाम पहुंचे। विदित हो कि-' आदि। यह लगभग सन 1950 की स्मृति है।

अब का एक हास्यास्पद उदाहरण है। एक बीए के विद्यार्थी ने कहीं कतिपय शब्द पढ़ लिया था। अपने पिता को पत्र में लिखा - पिताजी कतिपय प्रणाम। नई-नई शिक्षा नीतियों का यही परिणाम है।

शिक्षा मे पुरानी पद्धति से भी कुछ लेना चाहिए। अब भी आचार-व्यवहार, शालीनता, शुद्ध भाषा आदि प्राथमिक बातें सीखना अत्यावश्यक है।

## ( 9 )

## प्रतिबद्धता

किसी व्यक्ति या वैचारिक संकीर्णता से उत्पन्न विषय से प्रतिबद्ध (मानसिक रूप से बन्धनग्रस्त) व्यक्ति का विकास बाधित हो जाता है। किसी सिद्ध पुरुष या महान आदर्शों के प्रति प्रतिबद्धता होने पर अनन्त उत्कर्ष की संभावना होती है।

महाभारत के पात्रों में भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप और अश्वत्थामा ऐसे पात्र थे जो अपराजेय और इच्छा-मृत्यु थे, किन्तु यह सभी कहीं न कहीं प्रतिबद्ध होने के कारण न तो अपना पूरा पराक्रम दिखा सके न ही न्याय के पक्ष में लड़ सके। कोई राज्य से, कोई सम्मान से तो कोई मित्रता और वचनबद्धता से प्रतिबद्ध था।

अपने देश में, स्वतंत्रता संग्राम के अंतिम दशकों में, कई समर्थ नेताओं द्वारा महाभारत के पात्रों का चरित्र दुहराया गया है। भारत का वास्तविक हितचिंतन ही इसमें न्याय का पक्ष था, किन्तु सभी प्रभावशाली नेता क्षुद्र और संकीर्ण विषयों से प्रतिबद्ध होगये थे। कोई किसी जाति से,कोई किसी धर्म या व्यक्ति से,कोई पाश्चात्य संस्कृति से तो कई उच्च आदर्शोंवाले अपने से वरिष्ठ के सम्मान और शील से प्रतिबद्ध रहे। स्वतंत्रता के पहले से ही,न्यायपक्ष (देशहित) का त्याग करके, अपनी प्रतिबद्धता में सभी मोहग्रस्त हो गये। संकीर्ण प्रतिबद्धता का क्रम अब भी उसी तरह बना है। अपने निजी व्यक्तित्व, दल और अंधभक्तों को बढ़ाने के लिए देशहित का बलिदान करने में किसी नेता को शर्म नहीं है।

सभी देशों में स्वाभिमान, संस्कृति और आर्थिक सम्पन्नता के आधार पर चुनाव लड़े जाते है। उनमें से बहुत देश हमें प्रेरणा देने योग्य हैँ। अच्छाई की नकल करना भी उचित है। हम और हमारे नेता जाति, धर्म और व्यक्ति के प्रति क्षुद्र प्रतिबद्धता छोड़कर,संस्कृति और देश के प्रति प्रतिबद्ध बनें और संकल्प लें - अब लौं नसानी अब ना नसैहौं।

## ( 10 )

## देश की समस्याओं का मूल

अपना देश आन्तरिक व बाह्य समस्याओं से आक्रांत है। भौतिक सुविधाओं के बढ़ने के साथ ही यहां समस्यायें भी बढ़ती जा रही हैं। समग्र परिस्थिति का

अध्ययन करने पर निश्चय होता है कि सर्वोच्च सत्ता संसद, विधानसभा तथा उनसे उत्पन्न कैबिनेट में है। सारी समस्याओं का मूल दूषित सत्ता ही है।

सांसद और विधायक बनने की योग्यता और जीतने के हथकंडे भ्रष्ट हो गये हैं। सभी दलों के अधिकांश नेता और उनके दलाल राजनीति को व्यवसाय बना लिए हैं। अतः अपना बेतन, पेंशन, सुख-सुविधायें तथा प्रभाव का क्षेत्र बढ़ाने से संबंधी बिल एकमत से पारित करते हैं। पांच वर्ष में जीवन भर तथा बच्चों के लिए व्यवस्था होजाती है। राजकाज का संचालन कुछ योग्य अधिकारियों और कर्मचारियों के द्वारा होता है, जिसका श्रेय मंत्री लेते हैं। अधिकारी को स्वयं अपनी उपलब्धि को कहने का अधिकार नहीं है। इतना ही नहीं अपने भ्रष्टाचार को भी राज कर्मियों पर ही आरोपित करके, प्रचार तंत्र के भरोसे, वे अपनी स्वच्छ छबि बनाते हैं। यह नग्नचित्र सभी देख रहे हैं।

इस परिस्थिति में परविर्तन आवश्यक है। सांसद और विधायक के लिए योग्यता का निर्धारण करके उनके लिए भी प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। चुनाव की प्रक्रिया में बदलाव अपेक्षित है। शासन के सभी अंगों तथा समाज को सशक्त और स्वतंत्र रखने के स्पष्ट नियम बनाना, सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना आदि उपायों से समस्याओं का मूलोच्छेद हो सकता है।

## ( 11 )

## राजनीति और कूटनीति

राजनीति के द्वारा शासक व्यवस्था तथा धर्म की प्राप्ति करता है। यही राजधर्म जैसा भी है। राजनीति समाज और परिवार के प्रमुख केलिए भी कारगर है। ज्वलंत उदाहरण - रामराज्य के समय में यही नीति थी।

कूटनीति के द्वारा अर्थ और काम की प्राप्ति संभव है।यह नीति दुश्मन या पराये के लिए ही प्रयोज्य है। इसके प्रयोग से व्यवस्था संदिग्ध रहती है। परिवार व समाज में कूटनीति का प्रयोग घातक है। ज्वलंत उदाहरण - महाभारत के समय यही नीति थी।

वर्तमान समय में भारत में कूटनीति का प्रयोग बेहिचक हो रहा है। कम से कम, अपने समाज और परिवार को इस नीति के प्रयोग से मुक्त रखना समझदारी

है। देश के नेता भी सचेत हो जाय तो सौभाग्य होगा। अथवा राजकाज के संचालन तथा व्यवस्था या सुरक्षा को सुदृढ़ रखने के लिए बनाई गई नीतियों को राजनीति कहते हैं। अपनों के साथ राजधर्म के रूप में और परायों के साथ कूटनीति के रूप में प्रयोज्य, दोनों तरह की नीतियां सामान्यतया राजनीति हैं। दूसरा वर्गीकरण सात्विक नीति-राजधर्म, राजस नीति-राजनीति और तामस नीति-कूटनीति है।

## ( 12 )

## रामायण में राजधर्म

राम के मुहं से भरत को सीख -

तुम मुनि मातु सचिव सिख मानी।

पालेहु प्रजा पुहुमि रजधानी।।

(पुहुमि माने पृथ्वी)

मुखिया मुख सो चाहिए खान पान कहुं एक।

पालइपोषइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक।।

राजधरम सरबस एतनोई। जिमि मन मांहि मनोरथ गोई।।

## ( 13 )

## पार्वती-विजय

अपने रूप-लावण्य और कामदेव की सहायता के भरोसे पार्वती जी ने शंकर जी को स्ववश करना चाहा था। इन दोनों प्रलोभनों से निरपेक्ष शिव जी ने विघ्न स्वरूप काम को भस्मसात कर डाला। अपने सामने, ऐसा देखकर पार्वती जी ने अपनी सुषमा को व्यर्थ समझा। इस घटना को कालिदास ने लिखा है –

*तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।*

*निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती*

*प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।।*

तब पार्वती जी ने तपस्या (आराधना) रूपी अपनी परम शक्ति का आश्रय लिया। भगवान शंकर भी इस अमोघ शक्ति को सहन न कर सके। एक दिन वे

पार्वती जी के सम्मुख उपस्थित होकर, अपने को क्रीतदास होना स्वीकार कर लिया। कुमार संभव मे है – अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः। इस तरह पार्वतीजी की कीर्ति अजेय पर भी विजय पाने की है।

कोई भी स्त्री पार्वती जी की विजयगाथा से प्रेरणा लेकर सशक्त बन सकती है। रूप का प्रभाव अस्थायी होता है। नारी का विजय पाने के लिए झुकना एक उत्तम नीति है। इस नीति का प्रयोग न करने पर नारी को आजीवन झुकना पड़ता है। वह पुरुष जाति की निन्दा करते हुए, जीवन के अन्त में असहाय हो जाती है। नारी को स्वतंत्र और सशक्त बनाने के पाश्चात्य जगत के तरीके भारत में निन्दनीय ही रहेंगे। इनका प्रचार दूषित राजनीति है।

पतिपरायणा स्त्री की शक्ति और महिमा अपरिमेय है। वह पतित पति का भी उद्धार करने में सक्षम होती है। हमारी संस्कृति कामधेनु है। पार्वतीजी की तरह सती, सावित्री, सीता, अनुसूया आदि के चरित्र स्त्री जाति केलिए संवल देने वाले हैं। इनसे प्रेरणा लेने पर स्त्री अपने पति को अजेय बनाती है तथा स्वयं अजेय रहती है।

## ( 14 )

## मृगतृष्णा

पहली बार चुनाव के पहले अच्छे दिन आनेवाले थे।दूसरी बार रामराज्य आने वाला था। तीसरी बार भारत का अकल्पनीय स्वर्णिम युग आने वाला है। चुनाव के पहले विश्वात रूप से आने वाले सभी लुभावने युग, चुनाव के बाद, मृगतृष्णा की तरह गायब हो जाते हैं और मरुभूमि की तरह कलियुग ही प्रबलतर प्रगट होता है। कमोवेश सभी दल आकाश में कुसुम का दर्शन कराने का वादा करते हैं।

भारत को, आगे दिखाई पड़ने वाले मृगतृष्णा के जल की लालच छोड़कर, पीछे छूट रहे अमृत सरोवर से तृप्ति होने में विश्वास रखना चाहिए। हमें ठीक पीछे लौटना पड़ेगा। परिवारवाद, व्यक्तिवाद और जातिवाद के कुचक्र से मुक्त रहना पड़ेगा। योग्यता और लोकमान्यता को महत्व देना पड़ेगा। देशवासियों के साथ विश्वसनीय राजधर्म के पालन से ही स्वर्णिम युग आयेगा।

## ( 15 )

## असंगता कैसे?

गीता में कर्मयोग का आधार असंग रहना बताया गया है। बहुधा, कर्मयोग का साधक भी अच्छे-बुरे, शुभाशुभ आदि द्वंदों में से उसी एक को ग्रहण कर लेता है जो उसे अनुकूल लगता है। यहीं पर संगदोष उत्पन्न हो जाता है क्योंकि अनुकूलता स्वभाव के अनुसार होती है और स्वभाव का एक निश्चित आग्रह होता है।कहा है – 'प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।'

असंगता में इस बाधा के निराकरण के लिए गीता मे है – 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थतौ।' शास्त्रानुसार निर्णय लेकर स्वधर्म के पालन से साधक असंग बना रह सकता है।

## ( 16 )

## पौरोहित्य प्रथा

कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान के लिए शास्त्रज्ञान को आवश्यक बताया गया। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को शास्त्र का ज्ञान नहीं होपाता है। अतः, हमारी संस्कृति में, पौरोहित्य की प्रथा प्रचलित रही है। पढ़े-लिखे पुरोहित से मार्गदर्शन पाकर सभी सन्मार्ग पर चलते थे। समर्थ राजा भी अपने विशिष्ठ पुरोहित को पूज्य समझता था और उसके कवच से आवृत रहता था।शुक्राचार्य, वृहस्पति, वशिष्ठ, धौम्य जैसे राजपुरोहित विख्यात हैं।

अब पुरोहित लोभी और अल्पज्ञ लोग भी होने लगे हैं। उनकी सामाजिक मान्यता बहुत कम हो गई है। वे संस्कृत पढ़ नहीं पा रहे हैं जबकि हमारे सारे संस्कार व धर्म के विधान संस्कृत में ही हैं। सरकारी नीति में उपेक्षा के कारण संस्कृत विद्यालय बन्द होते जा रहे हैं। राजकीय विद्यालय अध्यापकों के बिना चलरहे हैं। उनकी नियुक्ति कई दशक से बन्द है। योग्यता के अभाव में पौरोहित्य प्रथा विकृत होती जा रही है। योग्य होने पर पुरोहित बहुत दान लेने का अधिकारी होता है, अन्यथा लोभी कहा जा रहा है। इस स्थिति में संस्कृति और समाज का पतन हो रहा है।

भारतीय संस्कृति का संरक्षण अभीष्ट है तो संस्कृत की शिक्षा में गुणात्मकता के लिए नीति बनानी चाहिए। इस शिक्षा में राजकीय कोष से पर्याप्त धन दिया जाय। मनुवाद का विरोध छोड़कर सही चिंतन अपेक्षित है। पौरोहित्य प्रथा को संजीवनी शक्ति देना चाहिए।

## ( 17 )

## कुल परम्परा

कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान शास्त्र और पुरोहित के द्वारा होता है। यहां तक का धर्म लिखित रूप में है। इसके बाद भी कर्त्तव्याकर्तव्य का विधान है जो ब्रिटिश संविधान की तरह अलिखित है। इसका संरक्षण और उपदेश कुल की गृहिणियों और वृद्ध माताओं द्वारा होता है। कुलदेवता का अर्चन, पंच महायज्ञ, विभिन्न संस्कार, दैनिक से लेकर वार्षिक तक पर्वों पर क्रियायें, खान-पान, रहन-सहन आदि कई विषयों का ज्ञान और निर्वाह भी हमारी संस्कृति मे महत्वपूर्ण है। यह कुलपरंपरा के अनुसार होता है। इसके लिए भी कुलांगना का बड़ा महत्व और आदर होता है। धर्मशास्त्र में है कि जो नहीं लिखा जा सका उसे कुल की माताओं से जाना जाय।

जहां गृहिणी अपने पद से च्युत होने लगे वहां कुलपरंपरा नष्ट हो जाती है। वहां भारतीय संस्कृति की नींव ही हिल जाती है। आजकल नारी सशक्तिकरण के नाम पर विभिन्न स्तरों से उनके शोषण के समाचार नित्य सुनाई पड़ते हैं। यह भारतीय नारी के साथ प्रच्छन्न नीतिगत बेइमानी है जो संस्कृति के लिए घातक है। इसमें पाश्चात्य सभ्यता का पोषण स्पष्ट है।

कुलपरंपरा को सुरक्षित रखने के लिए भारतीय नारी बने रहने की इच्छा आवश्यक है। अतःविवाह, खानपान आदि समान स्तर के साथ ही करना चाहिए। यह संबंध की सफलता और परंपरा के सतत प्रवाह केलिए हितकर है। भारतीय नारी के आचरण के लिए निर्धारित मापदंड और जीवन के आदर्शों का प्रचार और संरक्षण परिवार, समाज और राष्ट्रीय स्तर से होना चाहिए।

## ( 18 )

## वैदिक विधिशास्त्र

(1) यहां वैदिक का अभिप्राय है वेद के आदेश और उनसे उपवृहिंत, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, धर्मसूत्र तथा स्मृतियों में निहित ज्ञान तथा वैदिक दर्शनों द्वारा प्रतिपादित नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से है।इनके द्वारा विविध विषयों के साथ सम्पूर्ण विधिशास्त्र का निरूपण भी हुआ है। इन शास्त्रों का अध्ययन करते समय कभी-कभी धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्तव्य, नीति-अनीति, पापपुण्य, विधि-निषेध जैसे द्वंद्वात्मक शब्द समानार्थक हो जाते हैं। अतः, विधिशास्त्र का अध्ययन करते समय प्रसंगतः अर्थ ग्रहण किया जाता है।

विधिशास्त्र को न्यायशास्त्र भी कहा जा सकता है। शब्दकोश के अनुसार विधि और न्याय समानार्थक नहीं है, किन्तु न्याय की प्रतिष्ठा के लिए निर्धारित होने के कारण विधि को भी न्याय माना जासकता है। समस्त राजधर्म न्याय पर आधारित होता है। अतः प्रत्येक दृष्टि से भारतीय चिंतन को जानने के लिए यह विषय महत्वपूर्ण है। अद्यतन चिंतन के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन के लिए पाश्चात्य चिंतकों के विचारों को भी जानना उपयोगी होसकता है।

## ( 19 )

## वैदिक विधिशास्त्र

(2) वैदिक परंपरा में धर्म के दो उद्येश्य हैं – अभ्युदय और निःश्रेयस। वैदिक विधिशास्त्र में व्यक्ति तथा समाज के अभ्युदय में बाधाओं के निवारण के लिए व्यावहारिक नियम हैं। परस्पर व्यवहार के नियमन को न्यायव्यवस्था कहाजाता है। इसमें कर्तव्य और अकर्तव्य दोनों निर्धारित कियेगये हैं। विचलन करने वाले को दण्ड देना या उससे क्षतिपूर्ति दिलाना विधिशास्त्र के अनुसार होता था। इसे व्यवहार शास्त्र भी कहते हैं। न्याय और विधि इसी से परिभाषित होते थे। हमारे यहां विधि (न्याय)की परिभाषा लगभग अपरिवर्तित ही रही है। वेदाधारित स्मृतियों में व्यवहाराध्याय मिलता है। इसके प्रवर्तन को राजधर्म का मुख्य अंग माना जाता था।इसे दण्ड भी कहते हैं। राजा के सोने पर भी राजदंड जाग्रत रहता था। इसमें सत्य और निष्पक्षता का प्रगट होना आवश्यक होता था।

सामाजिक संस्थायें भी, राजाश्रय में रहकर, छोटे-छोटे वादों का निस्तारण करती थीं। जैसे पाप का प्रायश्चित यथाशीघ्र करना पड़ता था उसी तरह न्याय भी अविलंब देने की व्यवस्था उस समय थी। दर्शनों के माध्यम से कर्तव्य (न्याय) क्या है, इनका नियमन कैसे किया जाय और क्यों किया जाय इन सब प्रश्नों के उत्तर विधिशास्त्र में हैं।

वैदिक व्यवस्था में वादकर्ता, अभियुक्त, साक्षी तथा न्यायाधीश यही वाद के निर्णय के अंग होते थे। अधिवक्ता के द्वारा विलंब कराने और दोषी को मुक्त कराने का भय नहीं रहता था। दोषी को दंड देने के लिए साक्षी को धर्मबंधन या दंड के भय में रहने को वाध्य कियाजाता था। महाअभियोगों में तुला, अग्नि,जल, विष और कोश इन दिव्य विधियों का प्रयोग संदेह निवारण हेतु होता था। येनकेन प्रकारेण निर्दोष को मुक्त और दोषी को दंड देना न्याय की सफलता थी। अपराधिक और आर्थिक दोनों प्रकार के वादों के निस्तारण के नियम सविस्तार मिलते हैं।

वैदिक विधिशास्त्र में वेद ही संविधान है। स्मृतियां संविधान के अनुसार बने कानून और नियम हैं। राजा और उसके कर्मचारी इन कानूनों के प्रवर्तक थे।राजा को विचलित होने से बचाने को राजधर्म की शिक्षा और पुरोहित का 'धर्मदण्डोऽसि' वाक्य सचेतक था। यह व्यवस्था सहस्त्रों वर्ष तक चली है। विभिन्न धर्मों को मानने वाले शासक आये किन्तु विधि-व्यवस्था को कोई नहीं बदल सका। मुसलमानों के समय से कुछ परिवर्तन हुये हैं। अंग्रेजों ने भारी फेरबदल किया। उस अवधि में भी मिताक्षरा टीका और परंपराओं के साक्ष्य मान्य थे। सामाजिक संस्थाओं का न्याय भी मान्य था। अब, स्वतंत्रता के बाद, वैदिक विधिशास्त्र समाज व शासन से लुप्त हो चला है। इसका स्थान पाश्चात्य विधिशास्त्र ने पूर्णतः ले लिया है।

क्रमशः

## ( 20 )

## वैदिक विधिशास्त्र

(3) वैदिक विधिशास्त्र का महत्व जानने तथा उसके अद्यतन प्रासंगिक बातों को कार्यान्वित करने के लिए आजकल प्रचलित पाश्चात्य जगत की शासन-

प्रणाली तथा उनके आधारभूत न्याय और विधि की परिभाषाओं को भी जानना आवश्यक है। आजकल प्रत्येक देश में चार स्तरों से कानून और न्याय की व्यवस्था है। प्रथम- संविधान है जो शासक या जनता की इच्छानुसार बनाया जाता है। द्वितीय- संविधान के अनुसार चयन से गठित संसद और विधान सभा है जो कानून और कार्यकारिणी बनाती हैं। तृतीय- कानूनों का प्रवर्तन करने वाले अधिकारी और कर्मचारी हैं जो प्रतियोगिता से आते हैं। चतुर्थ- न्यायालय है जहां से अन्तिम न्याय की आशा की जाती है। इन चारों स्तरों से न्याय होना आदर्श स्थिति है। संविधान, संसद तथा कर्मचारी अपने स्तर से निष्पक्ष, ईमानदार और तर्कसंगत बने रहकर न्यायसंगत कार्य करें तो न्यायालय में वादकारी बहुत कम हो जाते हैं। तब वहां से प्राप्त अंतिम आदेश भी वास्तविक न्याय रहता है। यह आदर्श शासन प्रणाली बन सकती है जो भारत में तो चारों चरणों में नहीं है, अन्यत्र भी अंशतः ही है।

न्याय की परिभाषायें देखें - बाइबिल में -Justice is regarded as general virtue. कांट ने कहा है- Law is command of reason. इसी के आधार पर हम कह सकते हैं कि Justice is command of reason. राल्स कहते हैं- Justice is defined as fairness. उनके अनुसार न्याय समानता में है। केवल जाति, लिंग और सामाजिक पृष्ठभूमि के कारण भेद अनुचित कहा है अतः योग्यता से भेद होना मान्य लगता है। वास्तव में न्याय की परिभाषा देना प्लेटो आदि के समय से ही बहुत विवादित विषय रहा है। चैंबर के शब्दकोश में न्याय का अर्थ है- Awarding what is due, impartiality, rightness. वेब्स्टर के शब्दकोश मे न्याय- Administration of what is just by impartial adjustment of conflicting claims. इस तरह स्वच्छ, निष्पक्ष, समतामूलक जैसे गुणों से युक्त निर्णय न्याय है।

कानून की परिभाषायें देखें-

एक्विनास ने कहा- Law is command of God. कुरान कानून को अल्लाह का संदेश मानता है।आस्टिन ने कानून को command of sovereign कहा है।सामान्य मान्यता से Law is strong common भी कहते हैं। Roscoe pound says – Law is social institution to satisfy social wants. इस तरह कानून की भी अनेक परिभाषायें हैं। पाश्चात्य विचारकों ने न्याय और कानून

का अलग-अलग विषद अध्ययन किया है। उनकी परिभाषायें धर्मपरक, अर्थपरक, सुखपरक, उपयोगिता परक, तर्कपरक, व्यवस्थापरक आदि भिन्न-भिन्न दृष्टियों और मूल्यों से हैं। यह नितनूतन बन रही हैं। भारतीय चिंतन में मूल्यों का बाहुल्य नहीं है। यहां अभ्युदय में सहायक कर्तव्याकर्तव्य और व्यवस्था को ही सर्वोपरि स्थान है। अतः, विधि और न्याय दोनों एक ही पंक्ति में स्थापित हैं। दोनों पक्षों का समन्वित तात्पर्य है- समता, निष्पक्षता, स्वच्छता तथा दूरदृष्टि से बने हुये, व्यक्ति व समाज के अभ्युदय में सहायक, न्यायोचित कानून और नियमों का अनुपालन करना और तदनुसार वादों का निर्णय देना न्याय है। कानून न्याय स्थापित करने के लिए होते हैं। इनके दुष्ट होने पर न्यायप्रणाली की जड़ ही समाप्त हो जातीं है।

विधिशास्त्र को जुरिस्प्रुडें का समानार्थक माना जा सकता है। प्रुडेंस शब्द का अर्थ दूरदृष्टि और सूक्ष्म बुद्धि है। भारतीय विधिशास्त्र का दर्शन कानून और न्याय में सूक्ष्म बुद्धि (प्रुडेंस) की आवश्यकता और उसका ज्ञान समझाता है। भारतीय परंपरा के ज्ञान और समन्वय के साथ पाश्चात्य चिंतन पूर्ण होसकता है।।

क्रमशः

## ( 21 )

## वैदिक विधिशास्त्र

(4) वैदिक विधिशास्त्र की रचना और उसके क्रियान्वयन की प्रक्रिया पर प्रकाश डालने के लिए, स्मृतियों के कुछ अंशों के उदाहरण के साथ, उसका स्वरूप प्रस्तुत किया जाना यथास्थान होगा। अर्थशास्त्र, कामन्दक नीति, शांतिपर्व तथा और भी ग्रंथ, जो वैदिक परंपरा के उपासकों द्वारा लिखे गये हैं, में भी यह विषय मिलता है। स्मृतियों में इसी विषय का आनुपूर्वी निरूपण हुआ है। अतः इन्हीं को सर्वोपरि महत्व दिया जाता है।

वैदिक विधि का विधान तपःपूत ऋषियों द्वारा हुआ है। ऋषियों में भी जो उस युग में सर्वश्रेष्ठ थे उन्हीं के उपदेश स्मृति के रूप में संग्रहीत हैं। ऋषियों के अनुरोध से मनु ने मनुस्मृति का उपदेश दिया। मनुस्मृति का प्रथम श्लोक है-

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः।
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन्।।

आगे ऋषियों के अनुरोध पर मनुस्मृति प्रगट हुई। इसी तरह याज्ञवल्क्य, पराशर, व्यास, शंख, लिखित आदि कई ऋषियों ने देश और काल के अनुसार स्मृतियों का उपदेश दिया है। मनुस्मृति प्राचीन है, अतः उसके उपदेशों का संशोधन उत्तरकालीन ऋषियों ने किया है। संशोधन होते रहने के कारण विधान कालातीत भी होते रहे हैं। इस तरह यह परंपरा संजीवनी शक्ति के साथ विकासशील बनी रही। इसे समाप्त करने के राजनैतिक प्रयास हुये जिससे बहुत क्षति हुई किन्तु ऋषियों के अमोघ आशीर्वाद से बीज अवशिष्ट है। प्रातिभा ज्ञान पर आधारित आर्षवचनों का लोप संभव नहीं है। यही स्मृतियों के प्रणयन की विशेषता और वर्तमान स्थिति का परिचय है।

स्मृतियों के विधान का अक्षरशः अनुपालन कराना राजधर्म था। कानून बनाने में न्याय होता था, अतः अनुपालन में भी न्याय होता था। कुछ विधान देखें –

यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्स षट्पदाः।
तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः।। म.स्मृति

जैसे जोंक थोड़ा-थोड़ा रक्त लेता है, बछड़ा थोड़ा-थोड़ा दूध पीता है, मक्खी थोड़ा-थोड़ा मधु लेती ही उसी तरह राजा को थोड़ा-थोड़ा वार्षिक कर लेना चाहिए। यह कराधान का नियम था।

द्वयोस्त्रयाणां पंञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्।
तथा ग्रामशतानां च सहस्त्रपतिमेव च।। म.स्मृति

रक्षा के लिए गांव को इकाई बनाकर, दो, पांच, सौ तथा सहस्त्र गावों के प्रधान रक्षक बनाये जाय। यह सुरक्षा की व्यवस्था थी।

उभयानुमतःसाक्षी भवत्येकोऽपि धर्मवित्।
सर्वःसाक्षी संग्रहणे चौर्यपारुष्यसाहसे।।या.स्मृति

दोनों पक्ष स्वीकार करें तो एक ही धर्मज्ञ साक्षी पर्याप्त है। निर्जन स्थान पर चोरी आदि और सबके सामने साहस के अपराध में सभी साक्षी बन सकते हैं। यह साक्षी संबंधी नियम था।

श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वावेदकसंनिधौ।
ततोऽर्थी लेखयेत्सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम्।।या.स्मृति

प्रतिवादी की कही बात वादी के सामने लिखा जाय। तब तत्काल ही वादी प्रमाण प्रस्तुत करे। यह वाद निर्धारण का नियम अविलंब व झूठे प्रपंच से बचने के लिए था।

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे युगे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपानुसारतः।।पाराशर स्मृति

युगेयुगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्वजिाः।
तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजा।।पा.स्मृति

सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के धर्म, सयय के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। उनमें द्विजाति भी तदनुसार होते हैं।

पाराशर स्मृति में पुनर्विवाह आदि बहुत से समयानुसार अपेक्षित संशोधन हैं। सभी स्मृतियों में मानव स्वभाव, देशकाल का प्रभाव तथा प्रकृति के नियमों को दृष्टि में रखकर विधान बने हैं तथा तदनुसार व्याख्ययित भी हैं। न्याय और दण्ड की व्यवस्था यथाशीघ्र और निर्दोष रखने का प्रयत्न स्पष्ट है। इन स्मृतियों का उपयोग वर्तमान व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन कर सकता है।

क्रमशः

**( 22 )**

## वैदिक विधिशास्त्र

(5) इस विषय के सम्यक् अध्ययन से राजकीय व सामाजिक, व्यवस्था के लिए, आज भी उपयोगी, बहुत से सिद्धांत कार्यान्वित करने योग्य और स्पष्टतया प्रासंगिक लगते हैं। कुछ बातों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

सर्वप्रथम वैदिक विधिशास्त्र के प्रणयन की प्रक्रिया से शिक्षा ली जानी चाहिए। संविधान और कानून बनाने वाले व्यक्ति सचरित्र व निष्पक्ष हों और अहंकार वश नहीं, लोगों के आग्रह से यह पुनीत कार्य संपन्न करें।इन स्तरों से संस्कृति, सामाजिक मान्यताओं, प्राकृतिक नियमों, मानव स्वभाव और देशकाल के अनुसार जनाकांक्षाओं को दृष्टि में रखकर विधान बनाने पर ही न्याय की प्रतिष्ठा संभव है। यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण शिक्षा है।

दूसरी शिक्षा - इसके बाद इन विधानों क़ो प्रवर्तित करने वालों की योग्यता और ईमानदारी का महत्व है। राज्याध्यक्ष से लेकर उनके मंत्रियों का आचरण अविवादित और स्वच्छ होना अनिवार्यता है। इनकी सत्यनिष्ठा में थोड़ी भी कमी निचले कर्मचारियों को भ्रष्टाचार करने के लिए स्वतंत्र व बाध्य करती है। राजकर्मचारियों का नियमन धर्म और दंड के प्रभाव से करने में सजग रहना आवश्यक होता है। शांतिव्यवस्था का अभाव, नैतिक मूल्यों का पतन, प्रजा का शोषण, सीमा की असुरक्षा आदि राज्य की विफलता के प्रमाण हैं। इसके आधार पर शासन के गुणवत्ता का आकलन करना चाहिए।

तृतीय शिक्षा है - दोषी को दण्ड और पीड़ित को न्याय देने की कार्यवाही तत्काल करनी चाहिए। न्याय केलिए दंड का अहर्निश जाग्रत रहना आवश्यक है। अधिवक्ता आदि के द्वारा निर्णय करने में विलंब कराना न्याय का हनन है। न्याय प्रक्रिया में वादी, प्रतिवादी, साक्षी और न्यायाधीश चार ही सम्मिलित हों तो अनावश्यक विलंब नहीं होता है। साक्षी और न्यायाधीश का चरित्र निर्णय देने में महत्वपूर्ण है। साक्ष्य में सत्यनिष्ठा के लिए प्रतिष्ठित व्यक्ति को महत्व दिया जाय।

चतुर्थ बात - कोई भी वाद अनिस्तारित नहीं रहे। कभी-कभी दैवी साक्ष्य के आधार पर भी निर्णय संभव है।वाद के निर्धारण में दोषसिद्ध, दोषमुक्त या संशयग्रस्त तीन श्रेणी हैं। संशयग्रस्त को दोषमुक्त नहीं माना जाय। यदि कई वादों में कोई व्यक्ति संशयग्रस्त हो जाता है तो उसके आचरण पर विशेष दृष्टि होनी चाहिए और महत्त्वपूर्ण पद पर न रहे।

पांचवीं बात - सामाजिक स्तर से न्याय की व्यवस्था हमारे शास्त्रों के अनुसार रही है। पंच परमेश्वर की मान्यता को पुनः स्थापित किया जा सकता है। प्रत्येक गांव मे सचरित्र व वृद्ध जनों को छोटे-छोटे आपसी विवादों को निपटाने का अधिकार व कर्तव्य निर्धारित हो। यहां का निर्णय अधिक पारदर्शी होता है। ऐसी व्यवस्था से वादों के निस्तारण हेतु न्यायालय में भीड़ घटेगी और शीघ्र न्याय मिलेगा। इस तरह की कई बातें हम अपने शास्त्रों से सीख सकते हैं।

इन शिक्षाओं के साथ ही नैतिकता का महत्व, परलोक का भय, लोकमान्यता आदि के प्रति सद्भावना जाग्रत करके न्यायालय में जानेवालों को अच्छा मनुष्य बनाने की प्रेरणा के साथ, परिस्थितियों के अनुसार, निर्णय देना भी न्यायालय की

दृष्टि में होने की व्यवस्था दी गई है। व्यक्ति और समाज के लिए स्वतंत्रता, समानता व गरिमा के साथ अभीष्ट की प्राप्ति में साधक होना वैदिक विधिशास्त्र की प्राथमिकता है।

इस पूरे विवरण की सार्थकता व स्वाभिमान के लिए,अपने यहां के विधिशास्त्र में इन्हें उचित स्थान देना समय की मांग है। पाश्चात्य न्यायप्रणाली में संशोधन अपेक्षित हैं। विधि मंत्रालय में इस पर विचारार्थ विशेष ध्यान देना चाहिए। इसके आधार पर हम अपने यहां क्रांतिकारी परिवर्तन कर सकें तो विश्व को संदेश देकर सबके उपकारक बन सकते हैं।

## ( 23 )

## अन्तर्दृष्टि

अन्तर्दृष्टि और प्रातिभ ज्ञान व्यक्ति की दुर्लभ योग्यता हैं। पूर्व जन्मों के आत्मसंयम से आगत और वर्तमान मे अंतःकरण की साधना से जाग्रत होकर यह गुण आश्चर्यजनक सफलता प्रदान करते हैं। एक श्रुतधर की स्मरणशक्ति, विशाल पांडित्य, आश्चर्यजनक वक्तृता, सम्मोहन शक्ति आदि करिश्मा, आकर्षित करके अपना प्रभाव पैदाकर सकते हैं किन्तु उनसे दूरगामी लाभ संशयग्रस्त ही रहता है।वे काम यंत्र भी कर सकते हैं। अतः अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न, तात्पर्य और रहस्य को जानने वाले विद्वान का महत्व उन सब से बहुत अधिक होता है।प्रचार में अरुचि के कारण उनकी प्रतिभा का सदुपयोग नहीं होपाता है। मालवीय जी की तरह उन्हें ढूंढ़ने वाला होना चाहिए।

बहुधा आकर्षण पैदा करने वाले अधिक सफल होते हैं। समता, स्वतंत्रता, स्वावलंबन, स्वाभिमान, सम्पन्नता आदि के प्रलोभन में सब धान बाइस पसेरी के दर से करके, अंधेर नगरी के नियम लागू हो सकते हैं। अच्छे काम भी, बुरे सहायक उपकरणों के उपयोग से, कुपरिणाम ही देते हैं। तब समाज की दशा कीचड़ मे फंसी गाय की जैसी हो जाती है। गोपालन अच्छा काम है किन्तु मूर्ख गोपालक द्वारा गाय को फंसा देना निन्दनीय है।

देश और समाज में व्यवस्था तथा विकास के लिए दूरदृष्टि वाले, प्रतिभाशाली व निष्पक्ष चिंतकों का संग्रह और उनका सम्मान करना आवश्यक है। यह कार्य सदाशयता से ही संभव होता है।

## ( 24 )

## मर्यादा पुरुषोत्तम

राम की आराधना कई रूपों में होती है। बालक रूप, धनुष - बाणधारी रूप, वशिष्ठ या संतसभा के सामने बैठा रूप, सीताराम और लक्ष्मण-हनुमान के साथ आदि रूपों में विराजित राम की मूर्तियां मन्दिरों में स्थापित होती हैं।ऐसी उपासना सामान्य स्तर के लोग करते हैं। अतः, जनसमुदाय को आकर्षित करने के लिए, सबसे अधिक प्रचलित आराधना का रूप यही है। धरातलीय होने के कारण, इस उपासना में ही साम्प्रदायिक, सामाजिक तथा राजनैतिक विवाद होते हैं।

दूसरी आराधना रामनाम के द्वारा होती है। तुलसीदास ने इस उपासना का बड़ा महत्व लिखा है –

राम एक तापस तिय तारी।
नाम अनेक खल कुमति सुधारी।।

कहं लगि कहौं नाम प्रभुताई।
राम न सकहिं नाम गुण गाई।। आदि।

इस तरह से नामोपासना का विशद गुणगान किया गया है। कबीर, नानक आदि निराकार के उपासकों ने भी नाम की महिमा गाई है। कबीर कहते हैं-

दशरथ सुत सब जगत बखाना।
रामनाम कर मरम न जाना।।

नानकदेव कहे हैं - नानक दुखिया सब संसार। हरि को भजे त हो निस्तार।।

यह घटघट बासी परमात्मा का स्मरण है जो विश्वव्यापी है। यही प्रभु स्वरूप है। इसी रूप का दर्शन होने पर तुलसी भी कहते हैं- निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध। इस तरह की ऊंची साधना ज्ञानमार्ग के द्वारा मोक्ष की कामना करने वाले करते हैं।

तीसरी उपासना मर्यदा पुरुषोत्तम के रूप में है। आदि कवि वाल्मीकि ने राम को इसी रूप में प्रतिष्ठित किया है। तुलसी ने दशरथ सुत को ही मर्यदा पुरुषोत्तम

और ब्रह्म दोनों रूपों में वर्णन किया है। दोनों को एक ही सिद्ध करने का प्रयास किया जिससे दशरथसुत का स्वरूप मानवीय सीमा से परे दैवी स्तर का भी हो गया है। व्यक्ति को उच्चतम स्तर तक विकास करने के लिए तथा सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर तक लाभान्वित होने के लिए मर्यदा पुरुषोत्तम के स्वरूप में राम को प्रतिष्ठित करना अधिक उपयोगी है।

रामायण में है – 'रामो द्विर्न भाषते।' यह राम ने कैकेयी को विश्वास दिलाने के लिए कहा। इस सत्यनिष्ठा का पालन उन्होंने आजीवन किया। मानस में है- ''बैरिहुं राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि चलनि अनुसरहीं।'' यह व्यवहार कुशलता थी। आराधनाय लोकस्य त्यजतो नास्ति में व्यथा।' यह लोक-कल्याण केलिए त्याग की भावना थी। 'सियहिं चढ़ाई चढ़े रघुराई।' यान पर बैठते समय सीता की सुरक्षा और सम्मान का यह उदाहरण है जो प्रत्येक भारतीय नारी को देय होता है। रामायण, मानस तथा रामचरित के अनेक ग्रन्थों में राम के गुणों की गणना का वृहद् भंडार है। पराक्रम के साथ इन गुणों का संयोग उन्हें शीलवान सिद्ध करता है। उनका गुणगान करने में बड़े-बड़े कवियों ने हार मानी है। अतः, हमारे स्तर से इतना लिखना उदाहरण मात्र है।

आजकल राम के गुणों और उनके आचरण का अनुकरण करना आवश्यक है। यही निर्विवाद और सही रामभक्ति है जिसमें सब का कल्याण संभव है।

## ( 25 )

## विश्वसनीयता

मनुष्य के लिए लोक-परलोक तथा यश-कीर्ति का साधक,एक दुर्लभ उपलब्धि, उसकी विश्वासनीयता है। सत्य, अहिंसा, सदाचार, पराक्रम आदि अनेक गुणों का संगम होने पर व्यक्ति विश्वासनीय बनता है। उसकी वाणी से संशय समाप्त हो जाता है तथा उसके अभयदान से मनुष्य निश्चिंत हो जाता है। सुग्रीव ने राम की बातें सुना और उनके द्वारा दुंदुभि के अस्थि को उड़ाने और सात ताल के वृक्षों को एक वाण से काट देने पर उसे दृढ़ विश्वास होगया। मानस में है –

देखि अतुल बल बाढ़ी प्रीती।
बालि बधब अस भइ परतीती।।

सत्य वाणी और क्षमता, दोनों के मिलने पर विश्वास होता है।

किसी को प्रभावित करने के लिए छलप्रपंच,शक्ति का प्रयोग जैसे साधन भी होते हैं। ऐसे साधनों से दंडित, प्रभावित, या वश में करने पर ही, अवसर मिलने पर, बदला लेने के लिए, बलिदानी या सिरफिरों द्वारा, हिंसा का सहारा लिया जाता है। राजनैतिक हिंसायें (शारीरक, चारित्रिक या जीवनचर्या संबंधी) बदला लेने केलिए या महत्वाकांक्षा से होती हैं। सत्ता के लिए महत्वाकांक्षी व्यक्ति द्वारा किसी भी व्यक्ति की हिंसा संभव है। स्वधर्म से विश्वसनीय होने पर कोई हिंसा का शिकार नहीं होता है। फांसी की भी सजा देनेवाले सत्यनिष्ठ न्यायाधीश से कोई बदला नहीं लेता है। पाखंडी के प्रलाप में विश्वास करनेवाले लोभी या मूर्ख होते हैं। किसी की पृष्ठभूमि, उसका व्यक्तिगत आचरण तथा क्षमता को जानकर ही उसे विश्वसनीय समझना बुद्धिमानी है।

विश्वासनीय होने में स्वयं निश्चिंत रहकर दूसरों को भी निश्चिंत और अभय करना बड़ा पुण्यदायी है। ऐसे पुण्यात्मा को भी ईर्ष्यालु और राजनैतिक दृष्टि से महत्वाकांक्षी व्यक्तियों से सावधान रहना नीतिसम्मत है।

## ( 26 )

## स्वावलंबन

स्व शब्द का प्रयोग संकुचित अर्थ में व्यक्तिपरक किया जाता है। व्यापक दृष्टिकोण से देखने पर परिवार, ग्राम, समाज, देश आदि सभी को स्व माना जा सकता है। बिना साथी के पशुपक्षी भी सुखी नहीं रह सकते हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसकी अनेक आवश्यकताएं होती हैं। अतः संकुचित अर्थ में स्वावलंबी रहना स्वस्थ मस्तिष्क वाले को संभव नहीं है।

आजकल, देश में विभिन्न जातियां अपने-अपने सहारे तथा नारी भी स्वतंत्र रहकर स्वावलंबी रहने के लिए प्रेरित की जा रही हैं। यह एक राजनैतिक कुचक्र है। इससे पारिवारिक और सामाजिक दुर्दशा के साथ कोई लाभ नहीं होगा। आर्थिक रूप से सुदृढ़ होने पर नारी कुछ समय तक स्वावलंबी जैसी रह सकती है

किन्तु आजीवन सुखी, सुरक्षित और ससम्मान रहने के लिए परिवार का सहयोग लेना अनिवार्य है। अन्यथा वे निराश, असम्मानित और दयनीय हो जाती हैं। जाति का विचार भी समस्यात्मक है। पिछड़ी जातियों के लोग, सवर्णों से दूरी बनाने पर, सदैव पिछड़ी मानसिकता के ही रह जायेंगे। धन और पद से ही नहीं सामाजीकरण से उनका स्तर ऊंचा होगा। इसके लिए उन्हें सबका सहयोग लेना पड़ेगा। व्यक्तित्व के विकास के लिए पचास प्रतिशत माता-पिता के संस्कार का और उतना ही सामाजीकरण का प्रभाव बताया गया है।

भारत में तीन हजार के लगभग जातियां हैं। सवर्ण या ब्राह्मण और मनुवाद का विरोध करने में सब एक दिखाई पड़ते हैं, लेकिन इन जातियों के आपसी संबंध में भेदभाव है। रोटी-बेटी के संबंध और सामाजिक व्यवहार में अलगाव उन लोगों में भी है। विशेष कारण से भेदभाव तो ठीक है किन्तु अहंकार के कारण होना हानिकारक है।यह सब विकृत जातिवाद का परिणाम है। पहले केवल वर्णव्यवस्था थी। उसको सुदृढ़ रखने केलिए जातिव्यवस्था बनी। यहां तक में छुआछूत की बात का विधान कहीं नहीं है। पौराणिक काल में हमारे समाज में इसतरह की मान्यताऐं कुछ कारणों से प्रचलित हुई हैं। गोपालक यादव जाति और अन्य कृषि क्षेत्र की जातियां पहले वैश्य वर्ण में थीं, अब पिछड़ी जाति होगई हैं। इस तरह के उलटफेर हुये हैं। आजकल सार्वजनिक जीवन में जातिव्यवस्था विघटनकारी हो गई है। केवल वर्णव्यवस्था की उपयोगिता है। इससे गुणात्मक विकास संभव है। विकास के लिए स्वावलंबन का सही अर्थ समझना होगा।

पारिवारिक और सामाजिक सहयोग के साथ रहने में ही स्वावलंबन संभव है। असंभव हेतु प्रयास मूर्खता है। अहंकार को छोड़कर उसकी जगह स्वाभिमान और सहयोग के साथ रहकर, अपने को शोषित समझने की धारणा वाली नारी और पिछड़ी जातियां भी सुखी रहकर समाज में उचित सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर सकती हैं।

## ( 27 )

## नोटा का महत्व

प्रजातंत्र में वोट देने के समय नोटा का बड़ा महत्व है। इसका अर्थ है- 'नन आफ दी एबव' यानी सभी उम्मीदवार अयोग्य हैं, अतः सभी अमान्य हैं।

विशेषकर भारत जैसे देश में यह व्यवस्था बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। जाति, संम्प्रदाय, कुनीति और कुशासन के लिए कुख्यात दलों तथा दुराचार, भ्रष्टाचार आदि व्यक्तिगत दुर्गुणों से युक्त लोगों को भी वोट इसलिए दिया जाता है कि विकल्प नहीं है। यह भावना अज्ञान के कारण है जिसे दूर करें।

सबसे आवश्यक है प्रजातंत्र की व्यवस्था को शुद्ध करना। कोई व्यक्ति अयोग्य है तो उसे टिकट देने वाला दल ही अयोग्य मानना तर्कसंगत है। योग्य व्यक्ति स्वतंत्र लड़े । गंदे दल के टिकट पर लड़ना उसकी अयोग्यता सिद्ध करती है। समाजसेवा और राजनीति की शिक्षा योग्यता का अनिवार्य अंग मान्य होना चाहिए।

बदनाम लोगों या दलों को वोट न देकर नोटा की बटन दबाना बहुत आवश्यक है। यदि पचीस-तीस प्रतिशत वोटर नोटा का प्रयोग कर दें तो विश्व में यहां के प्रजातंत्र की निन्दा होगी। तब हमारे नेता लोग चुनाव की व्यवस्था को प्रजातंत्र के अनुकूल बनाने को मजबूर होंगे। अब भी, भ्रष्टाचार को समाप्त करने और सुशासन लाने का उपाय प्रबुद्ध वोटरों के हाथ में है। समाजसेवार्थ और देश की उन्नति के लिए कार्य करने वाले लोग नोटा के प्रयोग को प्रचारित कर सकें तो स्वतः उचित विकल्प मिल जायेगा।

## ( 28 )

## कर्म और संकल्प

इस संसार में रहने केलिए यह शरीर ही जीव का गृह होता है। मुक्त होने के पहले उसे कोई न कोई घर चाहिए। तृणजलूका (घास का कीड़ा) नई पत्ती पकड़ने पर पुरानी छोड़कर आगे जाता है। यही उपमा जीव के यात्रा की दीगई है। अधर्म में जीवन बिताने पर, मृत्यु के समय जीव को अगली गति और आवास की चिन्ता होती है। वह दुखी और व्यग्र होकर शरीर त्याग करता है। इस घर के छूटने के पहले, जिसने अपने कर्म और निश्चय के द्वारा नया आवास बना लिया है वह मृत्यु के समय नये घर में गृह-प्रवेश का उत्सव मनाता है। अतः कहा है-

दुनियां में जब आये तो सब हंसते तु रोता था।<br>करो कुछ काम ऐसा तुम कि जग रोये तु हंसता जा।।

अगला जन्म कर्म और संकल्प के अनुसार (यथाकर्म यथाश्रुतम्) होता है। संकल्प के अनुसार प्रबल संस्कार सम्मुख उपस्थित होजाते हैं। यही ईशोपनिषद् में है--

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तंशरीरं
ओम् क्रतो स्मर कृतंस्मर क्रतो स्मर कृतंस्मर।।

यहां प्राणवायु को महाप्राण में रखकर शरीर को भस्म करने की कामना है। उसके बाद अपने कर्मों और संकल्प का स्मरण करते हुये महाप्रयाण अभीष्ट है।

## ( 29 )

## मानस पर विवाद

आजकल रामचरित मानस की कुछ चौपाइयां और उनके आधार पर पूरा महाकाव्य, कुछ नासमझ लोगों द्वारा, विवादित बनाया गया है। ऐसे काम बहुत दिनों से होरहे हैं।इन विवादों का तार्किक और शास्त्रीय ढंग से उत्तर देना संभव है।कुछ लोग दिये हैं, और भी दिया जा सकता है। मुख्य विवाद – *ढ़ोल गंवार शूद्र पशु नारी। ए सब ताड़न के अधिकारी।। नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं।अवगुन आठ सदा उर रहहीं।। जे वरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलिवारा।। नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी।।* आदि चौपाइयों पर है।

इन प्रसंगों का अर्थ जानने के लिए भारतीय संस्कृति में नारी तथा चारों वर्णों का स्वधर्म, उनका सम्मान तथा सामाजिक उपयोगिता, उनका स्वभाव और उनकी क्षमता आदि का ज्ञान होना चाहिए। गुण और स्वभाव के आधार पर वर्ण और जाति भी होती थीं। उसके अनुसार उनका नियंत्रण, उनकी शिक्षा तथा उनके कर्म निर्धारित होते थे। योग्यता होने पर, सत्यकाम जाबालि की तरह, कोई भी ब्राह्मण हो सकता था। आज की बात कुछ भिन्न है लेकिन उस समय के ब्राह्मण और उनकी कृति पर उंगली उठाना मूर्खता व हठधर्मिता है।

शूद्र शब्द की निरुक्ति है – आशु द्रवति इति शूद्रः। जो शीघ्र ही लोभ, भय या किसी असमंजस से विचलित होकर असत्य, पलायन आदि का सहारा ले, वह शूद्र माना गया। बुद्धि की कमजोरी तथा मनोबल के अभाव को देखते हुये उनके

स्वधर्म निर्धारित थे। सभी वर्णों का स्वधर्म था। उससे विचलन करने पर सभी दंडनीय थे। अब, युग के प्रभाव से सभी विचलित होरहे हैं किन्तु यह नहीं कह सकते कि सभी समान होगये हैं। बौद्धिक स्तर पर भेद अब भी बहुत है।

शूद्र को वेदादि न पढ़ाने की व्यवस्था उचित थी। सही अर्थ न समझने वाले वेद को ही निन्दनीय कहते हैं। इसलिए कहा है -

> इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्।
> विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।। –महाभारत,वायपुराण।।

इसका भाव है कि अल्पज्ञ वेद की ही निन्दा करता है अतः वेद उससे डरकर दूर रहता है। अब सभी को सब विषय पढ़ने पढ़ाने का अधिकार है। ऐसी स्थिति में अल्पबुद्धि लोगों के अल्पज्ञान का परिणाम समाज को भोगना पड़ रहा है। वे स्वयं पुनर्मूषको भव की ओर जा रहे हैं। उन अल्पज्ञों को समझाना कठिन है। तुलसीदास ने स्वयं उनका उत्तर दे रखा है –

> मूरख ह्रदय न चेत जौ गुरु मिलईं विरंचि सम।
> फूलइ फलइ न बेंत जदपि सुधा बरसहिं जलद।।
> खलउ करइ भल पाइ सुसंगू।
> मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू।। ऐसी अनेक बातें लिखी हैं।

मानस जैसे ग्रन्थ से साम्प्रदायिकता और तत्कालीन स्वधर्म की मान्यताओं को त्याज्य मानने पर भी सदाचार, व्यवहार, सुनीति आदि की शिक्षा लेना समाज के लिये उपयोगी है। मानस की पावन सुरसरिता में स्नान करने केलिए भगवान सब को सद्बुद्धि दें। ग्रंथ का उद्देश्य कवि ने स्वयं लिखा है--

> कीरति भनिति भूति भलि सोई।
> सुरसरि सम सब कर हित होई।।

## ( 30 )

## जातिवाद/लाभहानि

इसमें कोई संदेह नहीं है कि जातिवाद अप्रासंगिक होचुका है।तथापि,जैसे मरी हाथी का भी मूल्य होता है उसी तरह, व्यक्तिगत व्यवहार में इसका कुछ लाभ है,और किसी की हानि नहीं है। सार्वजनिक स्थानों और राजनीतिक क्षेत्रों में जाति

से पहचान अनेक अनिष्टों के साथ जातीय सेनाओं के बीच गृहयुद्ध तक का कारण बनरही है।यह संविधान में तथा राजनीति से उपजीवी लोगों की अदूरदर्शिता का परिणाम है। देशहित में, इन क्षेत्रों में, जातिवाद को स्थान देना देशद्रोह तक समझना असंगत नहीं होगा। इसे तत्काल बन्द करना उचित है।

## ( 31 )

## भारत भूमाता

देश में विकल्प के रूप में सत्यनिष्ठ और योग्य जननेता से संबंधित असमंजस और चतुर्दिक असन्तोष को दूर करने के लिए, इस भारतधरा की शक्ति का आवाहन कारगर उपाय है। 'सुजलां सुफलां मलयजशीतलां शस्यश्यामलां मातरं बन्दे'-इत्यादि पवित्र वाणी से भारत भूमाता की बन्दना और उनका जागरण करने पर वह माता अपनी अमृतमयी कुक्षि से एतदर्थ समर्पित पुत्रों को प्रस्तुत करदेगी।नेता जी सुभाष, लौह पुरुष पटेल जैसे अनेक लोग पुनः आने के लिए आतुर हैं और आचुके होंगे। पाखंड और विवाद का सर्वनाश सन्निकट है। हमें वास्तविक स्वतंत्रता तभी मिलेगी।

प्रार्थना में बड़ी शक्ति होती है। भारत भूमाता की उर्वराशक्ति पर विश्वास करते हुये, हम अपने स्तर से सत्प्रयास में लगे रहें। 'नाश्रान्तस्य सख्याय देवाः'। हमारे थक जाने पर भूमाता वरदायिनी बनेंगी।

## ( 32 )

## नया जातिवाद

स्वतंत्रता के बाद पुराने धर्मशास्त्रों को जलाने और उनकी मनमानी व्याख्या करने की परंपरा चल पड़ी है। यह पुराने जातिवाद के विरोध का उपाय माना जा रहा है। यह तथ्य है कि जातिवाद का सामाजिक दुरुपयोग मुगल और ब्रिटिश काल में बहुत हुआ। अब, सार्वजनिक और राजनैतिक क्षेत्र में जातिवाद की मान्यता हानिकर सिद्ध होरही है।व्यक्तिगत और पारिवारिक संबंधों में जाति की मान्यता उपयोगी है। इससे किसी की हानि या उसका अपमान नहीं है।इसका विरोध करना किसी की सामान्य स्वतंत्रता को छीनना है। विदेशी शासकों ने भी समता के ही अधिकार से वंचित किया था, पारिवारिक या व्यक्तिगत स्वतंत्रता में

हस्तक्षेप वे भी नहीं कर सके थे। अब एकदम उलटी गंगा बहाने का प्रयास हो रहा है। राजनैतिक क्षेत्र में जाति की मान्यता और पारिवारिक क्षेत्र में उसका विरोध करना नया जातिवाद है। यह देश की आन्तरिक व्यवस्था के लिए घातक हो रहा है। धर्मग्रंथों की निन्दा और उनको जलाना नये जातिवाद का अत्याचार है।

आश्चर्यजनक है कि स्वतंत्रता के बाद जाति के अनुसार नये धर्मशास्त्रों का बनाना आरंभ है। इतना ही नहीं भारतीय संस्कृति और सनातन धर्म का नारा लगाकर सत्ता में आने वाले भी नये धर्म और नई व्याख्या करके, प्राचीनता का नामोनिशान मिटाने में लग गये हैं। जो पराधीनता के काल में नहीं हुआ वह भी इस समय हो रहा है। समता के लिए स्वतंत्रता का आन्दोलन हुआ था। यह कैसी स्वतंत्रता है? इससे सामान्य सवर्ण व्यक्ति को न समता, नही स्वतंत्रता का लाभ हुआ है। उसे अनेक सामाजिक और राजनैतिक समस्यायें झेलनी पड़ रही हैं। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को ही भारतीय आदर्श बनाने का कुचक्र चल रहा है।

जननेताओं और सामाजिक चिंतकों का ध्यान आसन्न विभीषिका की ओर आकृष्ट किया जारहा है।वे ,देश और प्राचीन संस्कृति को गुलामी की खांईं से निकलने के बाद नवीन जातिवाद पर आधारित कुशासन के कुएं में गिरने से बचायें। सवर्णों को नोटा की बटन दबाकर, विरोध प्रदर्शित करना चाहिए।

## ( 33 )

## आश्चर्य का कारण

आश्चर्य होने पर प्रभावित होना, अंधभक्त होना, ईश्वर मान लेना, किंकर्तव्यविमूढ़ होना जैसी कोई एक प्रतिक्रिया होती है। अभूतपूर्व, कारण से असंबंध कार्य, कल्पना व तर्क से परे घटना को देखकर आश्चर्य होता है और अपने स्वभाव की कमजोरी से व्यक्ति प्रतिक्रिया से ग्रस्त हो जाता है। आश्चर्य और उससे उत्पन्न होने वाली कमजोरी से बचने और स्वस्थ रहने का एकमात्र उपाय प्रकृति के सन्निकट रहना है।

प्रकृति की शक्ति, उसका सौंदर्य, उसमें उपलब्ध नित-नूतनता आदि से मानसिक संबंध बना लेने पर सृष्टि की सारी बातें तुच्छ लगती हैं। एक अणु की शक्ति से सिकंदर पराजित हो सकता है। मानव में दृष्ट खल और साधु के स्वभाव

भी प्रकृति की रचना ही हैं। उसमें उपलब्ध अघ का उदधि और साधु का गुणागार अनन्त है। उसे समझ लेने पर मनुष्य के किसी कार्य, उसकी शक्ति व सफलता उसके मानवीय या दानवीय स्वभाव को देखकर आश्चर्य नहीं होता है। आजकल अधिकांश लोग तुच्छ बातों से ही आश्चर्यचकित हैं। महापुरुषों, धर्माचार्यों और भगवानों का मेला लगरहा है। इस स्थिति को बदलने से प्राकृतिक और मानवीय पर्यावरण का शोधन होगा।

प्रकृति आश्चर्यों का भंडार है। उसके साहचर्य से मनुष्य अविचलित और निर्विकार रहसकता है। उस प्रकृति की महिमा और उसके संचालक का चिंतन करने पर संसार में सभी तुच्छ दिखाई पड़ते हैं। कोई भी शरीरधारी मनुष्य ईश्वर और आराध्य नहीं दिखाई देता है। सत्य को देखने के लिए अनन्त प्रकृति या अपने हृदयाकाश में अन्वेषण करना उचित है।

## ( 34 )

## अवश्यंभाविता

विधाता की जैसी इच्छा होती है, लोगों की चित्तवृत्ति, आंधी में तिनके की तरह, उसी दिशा में भागने लगती है। उसे रोकना असंभव होता है। कुपथगामी होने से, यदुवंश के विनाश का लक्षण देखकर, कृष्ण और बलराम ने सुधार का बहुत प्रयास किया। बलराम ने मद्यपान पर रोक लगाया।कृष्ण की नीति व वाक्पटुता तथा बलराम का पराक्रम व्यर्थ रहा। सात्यकि तथा कृतवर्मा के वादविवाद से उत्पन्न कलह से पूरा खानदान लड़मरा। बलराम ने स्वतः प्राणत्याग कर दिया तथा कृष्ण बहेलिया के बाण से आहत होकर गोलोक चले गये। एक दिन में सर्वनाश हो गया। अवश्यंभाविता के इस सत्य को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा जासकता है।

हम परब्रह्म परमेश्वर तथा अष्टमूर्ति (सूर्य, चन्द्र, पंचभूत तथा जीव) के रूप में व्याप्त उसी तत्व के उपासक रहे हैं। शिवलिंग या शालिग्राम, उसी अरूप के प्रतीक हो सकते हैं।उनका मंदिर आस्था का केन्द्र हो तो तर्कसंगत है। यदि मनुष्य की मूर्ति व मंदिर हमारी उपासना का केन्द्र बनने लगे तो यह सनातन धर्म के विनाश का लक्षण है।तब जगद्गुरु, भगवान, पूज्य बाबा, संत, मंदिर तथा धर्मोपदेशकों की बाढ़ आना स्वाभाविक है। तब, जिसने किसी शास्त्र को देखा ही

नहीं, वह भी वादविवाद रूपी शास्त्रार्थ करने को उद्यत होजाता है। ऐसी स्थिति में मानव के लिए हितकर धर्म का लोप तथा असत्य और अनाचार का प्रकोप स्वाभाविक है। क्या यह स्थिति समाज केलिए किसी अनिष्टकारी घटना की अवश्यंभाविता की ओर संकेत कररही है?

विधाता की इच्छा कोई नहीं जान सकता है।अतःसमाज में सुनीति की स्थापना केलिए मानवीय प्रयास होना ही चाहिए। हम अपने धर्म के मूल को पुनः पहचानें।लगभग एक सहस्त्र वर्षों से अपने-अपने सम्प्रदाय के पोषण में सामान्य कोटि के विद्वानों नें पौराणिक धर्मों का प्रचार किया। अधिकांश पाखंड और कुरीतियां इसी समय की देन हैं जिससे शास्त्रों को न जानने वाले साधकों नें भी सनातन धर्म और हिन्दू जाति की निन्दा किया है। आचार्य शंकर द्वारा समर्थित, कुरीतियों से मुक्त, स्मार्त सनातन धर्म की प्रतिष्ठा करने पर हम समाज को सुरक्षित करने में सफल हो सकते हैं।

## ( 35 )

## धर्म की व्याख्या

कोई पदस्थ व्यक्ति अपने अच्छे या बुरे कार्य को सही सिद्ध करने के लिये,अपने अनुसार धर्म की व्याख्या करता है। राम और रावण, बालि और सुग्रीव, पांडव और कौरव आदि के इतिहास में तथा वर्तमान व्यवहार में सर्वत्र देखा जाता है कि अपने को अधर्म पर स्थित कोई नहीं स्वीकार करता है। तात्कालिक जय या पराजय से भी यह निर्णय नहीं होता है कि कौन धर्म पर है और कौन अधर्म पर।बहुधा जीतनेवाले को ही धर्मसम्मत मान लिया जाता है किन्तु महिषासुर की विजय को धर्म की विजय नहीं मान सकते हैं। धर्म की सही व्याख्या, लोक में सुराज या अराजकता से स्पष्ट होती है। लोक में निष्पक्ष धर्मविद और परलोक में दैवी दण्डाधिकारी यमराज भी धर्माधर्म का निर्णय करते हैं।

जब धर्म को नकारने का वीटो अधिकार रखनेवाले सत्तासीन हो जाते हैं तब मनोरंजक और तात्कालिक सफलता देने वाली अधार्मिक बातों को, धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करना आरंभ हो जाता है।इसमें कुशल लोग बहुत हैं। वे ही अपने को धर्मसम्मत सिद्ध कररहे हैं। समाज पर इसका कुप्रभाव तथा सर्वत्र अशांति देखते हुये निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि यह अधर्म है।

धर्म का लक्षण सत्य और निष्पक्ष न्याय है। इसका विकल्प नहीं है।हृदय से पूछने पर सही धर्म का ज्ञान हो सकता है। इसके परिणाम समाज में परस्पर विश्वास, मानसिक शांति, व्यवस्था आदि हैं। इन बातों को दृष्टि में रखकर ही धर्म की सही व्याख्या संभव है।

## ( 36 )

## अनीति का विरोध

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्।।

अर्थात घमंडी और कार्याकार्य को न समझने वाला तथा कुमार्गी होने वाला गुरु (सम्मानित व्यक्ति) भी निग्रह व अनुशासन का पात्र होजाता है। यह श्लोक सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण, अयोध्या कांड,मे मिलता है।महाभारत तथा कई पुराणों ने भी इसको ले लिया है। यह नीति धर्मसम्मत मानी गई। ब्राह्मणों ने कुमार्गी राजा बेन को मारकर नया राजा प्रतिष्ठित किया था। राम को बनबास देते समय प्रजा ने सामने ही राजा को धिक्कार किया। अनीति होने पर राजाज्ञां की अवहेलना उचित है। यह काम तिलक आदि स्वतंत्रता सेनानियों ने किया।नमक कानून पर दण्डी यात्रा करके गांधी ने भी थोड़ा विरोध का प्रदर्शन किया था।

धर्म के विषय में मूढ़, लोभी और भयग्रस्त लोगों के सम्मति का कोई महत्व नहीं होता है। वे सदैव राजा को प्रिय लगने वाली बात बोलते हैं और विनाश में सहायक होते हैं। इनसे भिन्न सभी लोग एकमत होकर विरोध करने लगें या बुद्धिमान लोग अपने को तिरस्कृत समझने लगें, तो राजा को अहंकार छोड़कर, ईमानदारी पूर्वक आत्मचिंतन द्वारा, अपनी कमी को दूर करना चाहिए। आन्तरिक विरोध को सही ढ़ंग से सुलझाना उचित है।

बाहरी शक्तियों से लड़ते समय संकल्प और आन्तरिक एकता के बल पर, कोई भी लड़ाई जीतना संभव है। किन्तु आन्तरिक विरोध की स्थिति में वाह्य आक्रमण का भी भय हो जाता है। तब आन्तरिक विरोध और असहयोग को रोकना कठिन होने से, बाह्य मोर्चे पर पराजय निश्चित होजाती है। अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध में मराठों के हार का ऐसा ही कारण था।

हमारे शास्त्र और नीतिवाक्य अब भी आदरणीय हैं। उनकी उपेक्षा न करके धर्म की सही व्याख्या करना और तदनुसार कार्य करना शासक और शासित दोनों केलिए श्रेयस्कर है।

**( 37 )**

## चतुर सारथी

ईडी, आयकर, चुनाव आयोग और सीबीआई, इन चार प्रबल घोड़ों से सुसज्जित रथ पर आसीन रथी का सारथी उच्चतम न्यायालय है। सारथी ने ही, भीम को धराशायी करके पेट में वाण की नोक रखकर, पेटू कहकर प्राणदान करने वाले, कर्ण जैसे महारथी से अर्जुन की प्रणरक्षा किया था। सारथी के चतुराई की सफलता इसी में है कि चारों को नियंत्रित रखते हुये, समकालीन रथी को मर्यादित मार्ग पर रख सके। सारथी के चतुर और विश्वासनीय होने पर शुभत्व की आशा होती है।

**( 38 )**

## आसुरी शक्ति का दहन

फाल्गुन मास की पूर्णिमा एक विशेष सिद्धांत का स्मरण कराती है। पौराणिक कथा जो भी है, लोक में, होलिका आसुरी तपस्या से विकास करके विशाल काय असत्य के शक्ति का प्रतीक है। वह अपने शक्ति का प्रयोग सत्य के प्रतीक प्रह्लाद को जलाने में करना चाहे तो संभव नहीं है। वह स्वयं जल जाती है और प्रह्लाद सुरक्षित तथा सर्वमान्य रह जाते हैं।

पौराणिक गाथा से प्राप्त यह संदेश सदैव प्रासंगिक है। हम उत्सव मनाकर इस सत्य का स्मरण करें और आसुरी शक्ति के विरुद्ध अविचल रहें। हमारी सत्यनिष्ठा के प्रभाव से वह स्वयं जल मरेगी और हम सुरक्षित बने रहेंगे। उत्सव के साथ सत्यनिष्ठा का व्रत लेने की निर्धारित तिथि होलिका नहीं होलिकादहन का पर्व है।

इस अवसर पर सभी सत्यप्रेमियो को शुभकामनाएं।

## ( 39 )

## वर्णव्यवस्था की व्यापकता

इस समय सार्वजनिक व्यवहार में जातिप्रथा की कोई मान्यता नहीं है। सभी अपनी योग्यता और स्वाभाविक रुचि के अनुसार पेशा चुनने को स्वतंत्र हैं। ऐसी स्थिति में भी काम, अर्थ, धर्म या मोक्ष, इन चारों में से किसी एक पुरुषार्थ को मुख्य लक्ष्य बनाकर जीने वाले स्वाभाविक रूप से पैदा हो रहे हैं। जीवन-यापन का लक्ष्य और उसका प्रयास ही मनुष्य में ऊंचनीच, अच्छा-बुरा आदि भेद पैदा करता है। क्षुद्र लक्ष्य, योग्यता में हीनता और व्यवसाय के प्रभाव से देहव्यापार, लोभ, बेइमानी, भ्रष्टाचार, ईर्ष्या-द्वेष आदि दुर्गुण से आक्रांत व्यक्ति को छोटा, बुरा या निम्नस्तरीय कहना उचित है। बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे लोगों से घनिष्ठ संबंध नहीं बना सकता है। अतः व्यवसाय और स्वभाव ही व्यवहार और संबंध के लिए विश्व भर में प्रचलित आधार हैं।

इसके परिप्रेक्ष्य में मनुवाद को देखने पर लगता है कि इसका विरोध हठवादिता मात्र है। मनुस्मृति जलाना कुंठा का ज्ञापक है। इसका विरोध करने के बजाय अपनी योग्यता बढ़ाना अच्छी बात होगी। मानवीय स्वभाव की वैज्ञानिक व्यवस्था समाज के लिए आवश्यक है तो, चाहे जिस नाम से, मनुवाद के सिद्धांत को स्वीकार करने की वाध्यता है। जातिव्यवस्था के न होने पर भी वर्णव्यवस्था विश्वव्यापी है। इसका विधान भारत में अधिक वैज्ञानिक विधि से चला आ रहा है।

## ( 40 )

## व्यवसायीकरण

यह व्यवसायीकरण का युग चलरहा है। सत्य, पवित्रता और उच्च आदर्शों के अभाव में, जीवन के सभी लक्ष्य अर्थसाध्य होगये हैं। अर्थार्जन के लिए व्यवसाय आवश्यक है। व्यक्ति हो या कोई सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक संस्था, यहां तक की शासनव्यवस्था भी व्यवसाय के सहारे विकसित होरहे हैं। सड़क या पुल, मंदिर या तीर्थस्थल, इसी तरह जनहित का कोई कार्य पर्यटन के विकास और अर्थार्जन के साधनभूत व्यवसाय बन रहे हैं। जनकल्याण की पुरानी परंपरा थी –

अति अगाध जे सरित वर जो नृप सेतु कराहिं।

चढ़ि पिपीलिकहु परम लघु बिनु श्रम पारहिं जाहिं।।

अब यह आदर्श कहीं नहीं रह गया है। यहां तक कि अमूल्य शिक्षाव्यवस्था भी रोजगारपरक होती जारही है।मिथ्या प्रचार व प्रदर्शन हेतु प्रचार के साधन भी सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय हैं। पक्ष में आदेश दिलाने हेतु वकालत भी बहुत महत्वपूर्ण व्यवसाय पहले से प्रतिष्ठित है। मूल्यों का शीर्षासन स्पष्ट है। यह सब लक्षण कलि के चतुर्थ चरण में होना कहा गया है।

अस्वस्थ होने पर उपचार होने से मनुष्य की आयु बढ़ जाती है। चतुर्युग का विधान भी मनुष्य की तरह एक सृष्टि है। विनाश के सन्निकट दिखाई पड़ने, पर भी मनुष्य की तरह कलियुग की भी आयु बढ़ सकती है।प्रारंभिक शिक्षा में चरित्रनिर्माण और मूल्यबोध को प्राथमिकता देना तथा चार चरणों में होनेवाली न्यायव्यवस्था को,आदि से अन्त तक पारदर्शी बनाना इस युग केलिए संजीवनी बूटी है। व्यवसायीकरण का विष छोड़कर, यह ओषधि तत्काल सेवनीय है।

## ( 41 )

## प्रजातन्त्र या लोकतंत्र

जन समुदाय को लोक या जनता कहते हैं। इसके नियंत्रण में रहनेवाले एक या कई प्रतिनिधियों का शासन लोकतंत्र है। 'लोक की आवाज ईश्वर की आवाज' (vox populi vox dei) कहा जाता है। राजतंत्र में भी ऐसी स्थिति बनने पर उसे भी लोकतंत्र कहा जासकता है।आदर्श राजाओं के समय ऐसा था। पाश्चात्य देशों में, लोक के प्रबुद्ध और प्रबल होने के कारण, लोकतंत्र या जनतंत्र (डेमोक्रेसी) सफल है। इस व्यवस्था के कुछ लक्षण हैं – समानता का अधिकार हो, सब का पोषण हो और किसी का शोषण संभव न हो, योग्यता का आदर हो और प्रत्येक व्यक्ति को गरिमा के साथ यथासंभव विकास का अवसर रहे, लोग गुलामी की भावना से मुक्त रहकर स्वतंत्र रहें, अंधभक्ति के प्रकोप से मुक्त समाज रहने से तर्कसंगत वातें मान्य हों, जनता को धर्म के अफीम का शिकार न बनाया जाता हो, अपनी प्राचीन संस्कृति सुरक्षित रहे, आदि।

प्रजातंत्र शब्द में राजा और प्रजा, शासक और शासित, स्वामी और सेवक, दाता और याचक, उपकारक और उपकृत आदि अर्थ व्यंजित होते हैं। लोकतंत्र के जो लक्षण ऊपर बताए गये हैं, उनका होना इस व्यवस्था में संभव नहीं है।

अंग्रेजों के गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट से जो शासन था वह भी प्रजातंत्र का एक रूप था।उसमे शोषण के अनेक रास्ते खुले थे। व्यक्तिवाद और जनमत की उपेक्षा उसमें संभव थी। इस समय भी भारत में इसी तरह का प्रजातंत्र है जो लोकतंत्र का उपहास है। अतः परिवर्तन आवश्यक है।

यहां वास्तविक स्वतंत्रता का मिलना अपेक्षित है। इसके लिए उपर्युक्त तरह के आदर्श लोकतंत्र की स्थापना के अनुरूप संविधान में संशोधन हो। शासन सत्ता ने लोक के जो अधिकार छीन रक्खा है, उन्हें वापस करके लोक को प्रबल बनाया जाय जिससे उसका तंत्र (शासन) हो सके और उसके प्रतिनिधि नियंत्रण में रहें। जनमत को खरीदने और प्रभावित करने के रास्ते बन्द किये जाय। भारत की अपनी विशेष समस्या है, उसके अनुसार संविधान और नियमों के द्वारा यह सब संभव है। भारत में चल रहे प्रजातंत्र की जगह लोकतंत्र के स्थापना की सदिच्छा होनी चाहिए।

## ( 42 )

## आरक्षण से मुख्य हानि

आरक्षण की व्यवस्था के कारण प्रमुख हानि हैं कि –

1- समाज जातियों के परस्पर विरोधी वर्गों में बंट गया है।

2- जातिव्यवस्था कैंसर के रूप मे असाध्य और स्थाई होगई है।

3- आरक्षित लोग़ सदैव दलित बने रहेंगे।वे स्वयं अपना स्वरूप नहीं बदलना चाहते हैं।

4- जातीय वर्ग के हित केलिए आरक्षित लोग राष्ट्रीय भावना और देश के हित को गौड़ समझते हैं।

5- देश की संस्कृति,बौद्धिक और आध्यात्मिक सम्पदा,विशाल साहित्यिक भंडार का अनादर हो रहा है।

नौकरी और पद-प्रतिष्ठा में, मध्यम कोटि की योग्यता वाले सवर्णों का हक छीनलेना बहुत आपत्तिजनक नहीं है किन्तु उनकी जगह अयोग्य लोगों द्वारा प्रशानिक अकुशलता का प्रसार हानिकारक है। प्रोन्नति में भी आरक्षण तो अनर्थ है

जो सवर्णों को चिढ़ाने वाला है। आरक्षण की व्यवस्था अदूरदर्शितापूर्ण है। इससे समाज, देश और दलित वर्ग को लाभ की जगह हानि ही हो रही है।

उपर्युक्त बातें सर्वविदित हैं। सोते को जगाया जाता है, जगते को नहीं। शासन को दल का हित गौड़ करके, देश के हित को प्राथमिकता देनी चाहिए। आरक्षित वर्ग के स्वाभिमान को जाग्रत करना, उनकी जातिगत दलित की पदवी को समाप्त करना, उनकी आर्थिक स्थिति, शिक्षा और सामाजीकरण में सुधार के लिए उचित व्यवस्था करना आवश्यक है। इसके लिए आरक्षण की व्यवस्था को हटाना प्रथम कार्य है।

## ( 43 )

## मनुस्मृति का अमृत

अपनी संस्कृति के लिए अमृत मनुस्मृति है। इसे नकारना विषपान और आत्महत्या है। इस बात को दृढ़ करने के लिए मनुस्मृति के कुछ श्लोकों द्वारा, धर्म के विधान का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है –

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागभि।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत।।2/1

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।2/12

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किंचित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्।।2/4

तेषु सम्यग्वर्तमानो गच्छत्यमरलोकताम्।
यथा संकल्पितांश्चैव सर्वान्कामान्समश्नुते।।2/5

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्य सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षम्।।6/92

प्रथम दो श्लोकों में धर्मज्ञान के स्रोत निर्धारित किये गये हैं। रागद्वेष से रहित ज्ञानीजनो द्वारा सेवित और सत्यान्वेषी आत्मा द्वारा स्वीकार्य धर्म जानना चाहिए।इस धर्म का ज्ञान वेद, स्मृति, सज्जनों के आचार-व्यवहार और आत्मा के

लिए अनुकूलता से होता है।

तीसरे और चौथे श्लोकों में बताया है कि इस धर्मज्ञान का सम्यक् आचरण करते हुये व्यक्ति सभी कामनाओं की पूर्ति करने में सफल होता है और अन्त में अमरत्व प्राप्त कर लेता है। जीवन के प्रथम तीन भाग के लिए धर्माचरण का विस्तार स्मृति में है।

जीवन का चतुर्थ भाग, विशेष रूप से, आत्मकल्याण और अमरत्व की प्राप्ति की साधना के लिए होता है। इसके लिए दशविध धर्मों का निर्धारण पांचवें श्लोक में है।

लोक-परलोक दोनों के साधनभूत इस व्यवस्था को त्यागकर अन्यत्र भटकना, कामधेनु को छोड़कर बकरी दुहने की तरह है। इस धर्म में विवादास्पद अंश साम्प्रदायिक पाखंडियों द्वारा प्रक्षिप्त हैं। मनुस्मृति में निहित सनातन धर्म से शुद्ध मानव धर्म का कहीं विरोध नहीं है। यह विश्व भर के लिए अमृत है।

## ( 44 )

## धैर्य और क्षमा

क्षमा करने केलिए भी धैर्य चाहिए।धैर्य का लक्षण शांत बैठे रहना नहीं है वल्कि मन को अविचल रखते हुये स्वधर्म का पालन करना है। अतः धैर्य का प्रदर्शन करने के लिए सर्वत्र क्षमाशीलता का व्रत लेना कायरता है। क्षमा की सीमा है, धैर्य असीम शक्ति है। यह व्यवहार के क्षेत्र में सुनीति है।

सीता का अपमान करने पर राम ने जयंत को क्षमा नहीं किया। उन्होंने धैर्य के साथ, उचित अस्त्र का प्रयोग किया। मानस में शिव ने कहा –

जौ नहिं दण करौं सठ तोरा।<br>
नष्ट होइ श्रुति मारग मोरा।।

दंड देने में अक्षम होने पर, क्षमा का प्रदर्शन करते हुए, धैर्य और कुशलतापूर्वक भेदनीति का प्रयोग करना उचित है। सुन्दविसुन्द न्याय (दो प्रबल लोगों को दुर्लभ वस्तु केलिए लड़ादेना) परमास्त्र है।धैर्य और क्षमा लोक की समस्या में नीति और भवरोग की समस्या में व्रत के रूप में रामबाण हैं।

## ( 45 )

## सात्विक सुख

लखि सुवेस जगवंचक जेऊ।
वेस प्रताप पूजियत तेऊ।।
उघरहिं अंत न होइ निबाहू।
कालनेमि जिमि रावण राहू।।

पाखंड का पर्दाफाश (राहु, रावण और मारीच आदि की तरह,) होना निश्चित है। ऐसा होने पर अपार कष्ट झेलना पड़ता है। अतः दूरदर्शी व्यक्ति इससे दूर रहता है।

गीता में कहा है कि सात्विक सुख आरंभ में कष्टकर किन्तु परिणाम में अमृततुल्य होता है। (यत्त्वग्रे विषमिव परणामे अमृतोपम्। तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तं)। इसकी कामना करनी चाहिए।

## ( 46 )

## विचार बिन्दु

1- ब्राह्मण से ईर्ष्या और द्वेष करना नकारात्मक सोच है। पुराने समय से ही, सबसे बड़ा मित्र या शत्रु ब्राह्मण ही मान लिया जाता है क्योंकि वह प्रबल होता है। प्रज्वलित में तेज तो है ही बुझी आग में भी उष्णता रहती है। अतः ब्राह्मणत्व सीखने का प्रयास सकारात्मक सोच है।

2- अपनी बुराई को मजबूरी समझने वाले को सुधारना साध्य है। बुराई को ही अच्छाई सिद्ध करना पतन की पराकाष्ठा है। ऐसा व्यक्ति समाज के लिए असाध्य समस्या है और बेहया कहा जाता है। वह बहिष्कार योग्य है।

3-भेंड की तरह गड़ेरिया के पीछे चलना मूर्खता है। गड़ेरिया भेंड को बेचकर धन कमाता है। जो किसी दल का अवसरवादी कार्यकर्ता है उसकी बात भिन्न है, अन्यथा अंधभक्त होना भेंड बनना है। अपनी बुद्धि को स्ववश रखना मनुष्यत्व है।

## ( 47 )

## राम नवमी

धन्य जनम जगतीतल तासू।
पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू।।
सीताहरण तात जनि कहेहु पिता सन जाइ।
जौ मैं राम त कुल सहित कहिहिं दसानन जाइ।।

प्रथम चौपाई मे प्रतिपादित है-पिता को संतुष्ट रखना पुत्र का सर्वोपरि कर्तव्य है। द्वितीय छंद में ,जटायू से कहते हुए, राम ने प्रदर्शित किया है कि – पिता को अल्पकाल के लिए भी चिन्तित न होने दिया जाय। पिता के माध्यम से ही परम पिता का आशीर्वाद मिलता है। इसके लिए ही अपने पराक्रम के अनुसार प्रतिज्ञा करके आत्मविश्वास को प्रदर्शित किया है।

मर्यदा पुरुषोत्तम राम के बहुआयामी चरित्र के यह कुछ अंश हैं। उनके आदर्शों को जीवनशैली बनाना ही आज का सन्देश है।

## ( 48 )

## सनातन धर्म की रक्षा–1

आहार, निद्रा, भय और मैथुन यह चारों सभी प्रणियों में स्वाभाविक हैं। मनुष्य में धर्म ही एक विशिष्टता है। बुद्धिबल से, प्रकृति से संदेश लेकर, धर्म की व्यवस्था मानव द्वारा की गई है। धर्म की गुणवत्ता के आधार पर ही सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के रूप में युगपरिवर्तन होता है। आज के समय में धर्म शब्द असत्य, अन्याय और पाखंड का पर्याय होता जा रहा है। इसीलिये मार्क्स ने धर्म को अफीम कहा तथा अब्राहम लिंकन ने माना है कि झूठ बहुत दिनों तक नहीं छिप सकता है किन्तु धर्म के नाम पर झूठ का शासन सदियों चल सकता है। मनुष्य जाति के लिए विडम्बना है कि बिना धर्म के वह पशुतुल्य ही नहीं अस्तित्वविहीन हो जायेगा और धर्म को मानने पर धोखा खाकर मूर्ख बनता रहेगा। इस विषम परिस्थिति से उबरने का मार्ग खोजना कठिन नहीं है। धर्म को अफीम नहीं, ओषधि बनाना और झूठ का आवरण नहीं, सत्य का प्रकाशक बनाना संभव है। इसके लिये निष्ठापूर्वक विशाल मानव बुद्धि की शरण में जाना

आवश्यक है। सनातन धर्म, जो भारत को विश्वगुरु बनाने का एकमात्र साधन है, उसके आधार पर, इस विषय का विचार किया जाना सार्थक है।

क्रमशः

## ( 49 )

## सनातन धर्म की रक्षा-2

सनातन धर्म की उत्पत्ति वेद से है। बुद्धिसम्पन्न मानव की सृष्टि के साथ ही उसके लिए धार्मिक नियम भी बनाये गये। ऋषियों ने चिंतन करके ,सबके लिए उपयोगी धर्मों को स्मृतियों के रूप में प्रकाशित किया। मनु भगवान प्रथम स्मृतिकर्ता हैं। उन्होंने मानव जाति के कल्याण के लिए, स्मृति को सर्वत्र प्रचारित करने का आदेश भी दिया है। सर्वप्रथम भारत में प्रचलित होकर, विश्वव्यापी होने के कारण, भारत विश्वगुरु माना गया था।

मनुस्मृति में वेद, स्मृति, सज्जनों का आचरण और आत्मा का आदेश, इन चारों को सनातन धर्म का स्रोत बताया है। प्रथम तीन तो सार्वजनिक हैं किन्तु चतुर्थ में व्यक्ति की योग्यता के अनुसार भेद संभव है। वेद, स्मृति और सदाचार के अनुसार रहते हुये, स्वभाव के अनुकूल कर्म करने का आदेश देकर, मनु भगवान ने स्वधर्म के पालन को ही धर्म कहा है। इस तरह सामान्य और विशेष दो प्रकार के धर्मों को परिभाषित कर दिया गया है।

सनातन धर्म में आचारव्यवहार की शिक्षा से व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवस्था के विधान हैं। इसमें राजधर्म का भी निरूपण है जो राजनीति का नियामक है। इस धर्म के बिना राजनीति निरंकुश और छलप्रपंच बन जाती है। लोक संबंधी धर्मों के साथ ही परलोक के लिए पाथेय हेतु रहस्यमय धर्मों का विधान मनु जी ने दिया है। इस तरह, मनुस्मृति में अभ्युदय और निःश्रेयस् के लिये उपयोगी सारे मंत्र एक स्थान पर उपलब्ध हैं।

हिन्दू संस्कृति धर्मप्राण रही है। इसी कारण से यहां के प्रमुख सनातन धर्म को हिन्दू धर्म भी कहते हैं, यद्यपि दोनों में भेद है। यहां ईसाई, इस्लाम, पारसी तथा अन्य कोई संप्रदाय, जिनका उद्भव विदेशों में हुआ है, उनको छोड़कर सभी सम्प्रदाय अपने मूल सनातन धर्म से जुड़े हुए हैं क्योंकि सभी इसके ऋणी हैं।

अतः सभी हिन्दू संस्कृति के अंग हैं। यहां के संप्रदायों में, धर्म, अर्थ ,काम व मोक्ष मानवमात्र के लिए पुरुषार्थ मान्य हैं। जीवन के मूल्यों तथा परंपराओं में भी समानता होने के कारण सभी हिन्दू हैं। मूल होने के कारण सनातन धर्म ही प्रधान है। इसकी रक्षा ही हिंदू संस्कृति की भी रक्षा है।

क्रमशः-

## ( 50 )

## सनातन धर्म की रक्षा-3

सनातन वैदिक धर्म की रक्षा केलिए इसका इतिहास और वर्तमान धार्मिक स्थिति जानना आवश्यक है। यहां चिरकाल तक एक सनातन धर्म ही था। विभिन्न कारणों से, इसके विरोध में,जैन और बौद्ध धर्मों का उदय लगभग ढाई हजार वर्ष पहले हुआ। इसके बाद बाह्य संस्कृतियों और धर्मों का आना और उनके साथ सम्मिश्रण आरंभ हुआ। फलतः यहां की धार्मिक स्थिति विकृत होती गई।

इसके उद्धार केलिए,आठवीं सदी में आचार्य शंकर का आविर्भाव हुआ। अपनी अद्भुत प्रतिभा से उन्होंने सनातन वैदिक धर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया। सभी विखरे सम्प्रदायों को एक किया। भविष्य केलिए सुदृढ़ व्यवस्था बनाया। शंकराचार्य ने चार पीठों तथा दशनामी संप्रदाय के मठों को स्थापित किया। इनके संचालन के लिए मठाम्नाय बनाया। यह संस्थायें अब भी हैं किन्तु इनका अनुशासन शिथिल हो चुका है। फिर भी, अब तक सनातन धर्म के बने रहने का श्रेय शंकराचार्य को ही है।

दशवीं शताब्दी से पौराणिक युग का आरंभ हुआ। इसमें वाह्य आक्रमण बढ़ने लगे, कई विद्वान धर्माचार्य भी हुये जिन्होंने धर्म का सरलीकरण करके उसमें द्वैतवादी सगुण भक्ति के प्रचार को आरंभ किया। मंदिर निर्माण और अवतारवादी विग्रहों की स्थापना होने लगी। साथ ही तंत्र और योग के सहारे सिद्धियों को प्राप्त करने की होड़ भी होने लगी। इसमें पंडापुजारी, अंधविश्वास औरं पाखंड के बढ़ने का अवसर मिला। ज्योतिष और कर्मकांड का प्रयोग यज्ञ की जगह अर्थार्जन में होने लगा। पाखंड की प्रबलता होने पर, सतसंग और योगतंत्र के सहारे कुछ सिद्धि पाकर, अनपढ़ सन्तो ने भी हिन्दू धर्म की निन्दा करना आरंभ किया। कई नये-नये संप्रदाय बनने लगे। अंधविश्वास की बाढ़ में आचार्य शंकर द्वारा स्थापित

परंपरा बनी रह गई किन्तु भक्तिमार्गी प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकी। हिन्दू धर्म पाखंड और सनातन धर्म का सम्मिश्रण बनकर रह गया है।

रूढ़िवादी पाखंडों के विरोधी और सुधारक भी हुये। दयानंद सरस्वती ने आर्यसमाज नामक नया धर्म ही प्रवर्तित किया। इसमें रहस्यात्मक कर्मकांड का अनावश्यक विरोध होने के कारण हिन्दू धर्म धरातलीय स्तर पर आ गया। परलोक का पाथेय कुछ नहीं रह गया। शुष्क तर्क से श्रद्धा की तृप्ति नहीं होती है, इससे आकांक्षा की पूर्ति संभव नहीं है, अतः जनमानस ने इसे स्वीकार नहीं किया। वर्तमान में आनंद मार्ग, रामकृष्णा मिशन, कृष्णा कांसेस, अक्षर धामी, सहज योग आदि धार्मिक संस्थायें कार्य कर रही हैं। इनमें अधिकांश विदेशों में सक्रिय हैं। सनातन धर्म अपनी दुर्दशाग्रस्त अवस्था में, अब भी करोड़ों लोगों का आश्रय बना है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की रक्षा के लिए स्मृतियों के आधार पर इसका उद्धार आवश्यक है।

क्रमशः

## ( 51 )

## सनातन धर्म की रक्षा-4

सनातन धर्म का, प्राचीन काल से अब तक का, इतिहास देखने से स्पष्ट है कि इसमें उत्तरोत्तर गुणात्मक ह्रास होता आ रहा है। इस धर्म से उत्पन्न होने वाला वर्चस्व दुर्बल होते रहने से हमारी आक्रामक शक्ति कम होती गई। यह राष्ट्र रामायण और महाभारत काल का नहीं रह गया जब इसे विश्वगुरु और सारी पृथ्वी का अनुशासक स्वीकार किया जाता था। बाद के काल में विदेशी धर्मों और संस्कृतियों का आक्रमण रोकने में भी असमर्थता आ गई और समझौता करने को मजबूर होना पड़ा। पतन का यह बाह्य कारण था। आन्तरिक कारण भी ज्ञातव्य हैं जिनके कारण बाह्य कारण प्रभावी हो गये।

आंतरिक कारणों में सर्वप्रथम - बौद्ध और जैन धर्मों के प्रभाव से अहिंसा आदि व्यक्तिगत गुणों को राजकीय धर्म मानने से राजसत्ता दुर्बल होती गई। हिंसा की निन्दा करने पर भी बौद्धों में मांस-भक्षण की अनुमति एक पाखंड है क्योंकि बिना हिंसा के मांस नहीं मिलता है। बौद्ध मठों के व्यभिचार भी कुख्यात होने लगे। जैन धर्म में नारी की मुक्ति संभव नहीं है, अतःतपस्या और संयम को महत्व

देने पर भी यह धर्म भी एकांगी और व्यक्तिपरक रह गया। फलतः राष्ट्र की रक्षा और समाज की व्यवस्था के लिए सक्षम राजसत्ता का अभाव स्वाभाविक था। इस स्थिति के विरोध में कई शताब्दी तक क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रही। इसका समापन सन्निकट लगता था किन्तु विषम आन्तरिक परिस्थितियां पुनः उत्पन्न होने लगीं।

द्वितीय स्तर - धर्म का सरलीकरण करने केलिए नये-नये पुराणों की रचना और योगतंत्र के सहारे नये-नये सम्प्रदायों का उदय विघटनकारी हुआ। दक्षिण भारत से चलकर महाराष्ट्र, वृंदावन होते हुये पूरे देश में व्याप्त होने वाले, विशेषरूप से, अवतारवादी भक्ति के आंदोलन से सनातन धर्म के मौलिक सिद्धांत लुप्त होने लगे। अंधभक्ति और पाखंड ही प्रधान धर्म बन गये। मन्वादि स्मृतिकारों, व्यास, वसिष्ठ, शंकराचार्य आदि महापुरुषों को भूलकर, छोटे-छोटे व्यक्तियों और मनगढ़न्त देवताओं के मंदिरों और तीर्थों की भरमार में ही लोकव्यवस्था का प्रकाश लुप्त हो गया।

तृतीय स्तर - विदेशी शासकों के अधीन रहने और सनातन धर्म के निःशक्त होने के कारण समाज गुलामी की मानसिकता से ग्रस्त होता गया। पाखंड के कारण, धर्म का निष्प्राण बाह्य ढांच ही वास्तविक धर्म मान लिया गया है। उसके सहारे, अब भी मंदिरों और भगवानों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। स्वतंत्रता के बाद भी सुधार का कोई लक्षण नहीं है।

यदि हम, सनातन धर्म की इस दशा से संतुष्ट हैं तो यह हमारी मानसिकता का अधोपतन है। यह अंधभक्ति, पाखंड और स्वार्थपरता का लक्षण है। राष्ट्र और समाज के स्वाभिमान के लिए सनातन धर्म का पुनरुद्धार ही विकल्प है।

क्रमशः

## ( 52 )

## सनातन धर्म की रक्षा-5

मनुस्मृति और भारत के सनातन धर्म की महिमा जानने पर उसमें श्रद्धा होना स्वाभाविक है। इसके उत्कर्ष एवं पतन का इतिहास तथा वर्तमान स्थिति का ज्ञान, वर्तमान में भारतीय चिंतकों के लिए महत्वपूर्ण विषय है। पतन के विषय में विभिन्न कारणों को जानने के बाद, इनके प्रभाव को इस देश से समाप्त करके,

सनातन धर्म की प्रतिष्ठा पुनः करने पर ही हिन्दू धर्म को कोई खतरा नहीं रह जायेगा। यह कार्य भारतीय ही नहीं विश्व समाज केलिए हितकर होगा। इस कार्य के लिए भारतीय संस्कृति का आदर करने वाले विद्वानों का सम्मिलित प्रयास अधिक प्रभावी होगा। अपने मौलिक मूल्यों को सुरक्षित रखते हुये, स्मृतियों में समयानुकूल संशोधन किया जासकता है। नीचे दिये जा रहे, विभिन्न स्तरों से संभव, कुछ अन्य सुधार भी अपेक्षित हैं।

समाज पर नियंत्रण लोकनीति का होना चाहिए। सुरक्षा के अतिरिक्त अन्य राजनैतिक हस्तक्षेप या विशेष संप्रदाय के लिये क्रिया-कलाप करना समाज, संस्कृति और धर्म पर राज्य का अनुचित हस्तक्षेप है। यह सनातन धर्म के पतन का कारण रहा है और अब भी है। राजधर्म से राजनीति नियंत्रित रहनी चाहिए। समभाव, सत्य, न्याय, सुनीति आदि राजधर्म के प्रमुख अंग हैं।

यहां, सारी सुविधाओं को देने के साथ ही, नारी का भारतीय स्वरूप सुरक्षित रखना आवश्यक है। सनातन धर्म में नारी का विशेष महत्व है। गृहिणी बनकर वह धर्म की संरक्षिका है।

शिक्षा के क्षेत्र में विशेष सुधार किये जायें। मनुस्मृति में लिखित आचार-व्यवहार की नैतिक शिक्षा अनपढ़ को भी दी जाय। इससे मनुष्य होने की योग्यता मिलती है। सदाचार के बिना सारे धर्मकर्म विपरीत फल देने लगते हैं। इसे ही मनुस्मृति में परम धर्म कहा है। यह सर्वमान्य धर्म है। इससे किसी का विरोध नहीं है।

सामान्य और सांप्रदायिक क्रियाकलापों के आधार पर धर्म के दो भेद स्पष्ट हैं। मनुस्मृति के सामान्य धर्म को मानना अनिवार्यता है और विशेष के करने से पूर्णता मिलती है। यथासंभव प्रयास ही पर्याप्त है।

अपनी संस्कृति से उत्पन्न इस्कॉन आदि कई संप्रदाय विदेशों में अधिक सक्रिय हैं। वे अपने धन को विदेशों की आय का स्त्रोत बनाते हैं तथा उनकी पूरी क्षमता का उपयोग देशहित में नहीं होता है। यहां चरित्र निर्माण में उनका योगदान और अधिक हो सकता है।

हमारे देश के धार्मिक पीठ, मठ और साधुसंत राजनीति से अधिक प्रभावित होगये हैं। अधिकांशतः प्रवचन करने वाले सामान्य धर्म का प्रचार न करके,

अंधभक्त बनाने में लगे हैं। ज्योतिषी और तांत्रिक भयादोहन करते हैं। यह सनातन धर्म के प्रचार की जगह पाखंड का प्रचार कर रहे हैं। इनकी गतिविधियों से सचेत रहने और दूरी बनाने की शिक्षा समाज को मिलनी चाहिए। इसके लिए योग्यता से अधिक पाने का लोभ और अप्रत्याशित भय को छोड़ना और कर्मवाद के सिद्धांत को सभी को, समझाना उपयोगी होगा।

सुझाव तो अनेक हैं जिनको सत्संग के द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। बड़े-बूढ़ों के साथ बैठने और उन्हें आदर देने पर अच्छे संस्कार स्वतः जाग्रत होते हैं।

अन्त में, यह ज्ञातव्य है कि धर्म की रक्षा का उपदेश यह नहीं है कि धर्म गाय की तरह मनुष्य के अधीन या परवश है। धर्म की रक्षा करने का अर्थ है स्वधर्म का पालन करना।स्वधर्म का अंग अन्याय और पाखंड का विरोध भी होसकता है। स्वधर्म को न जानने और उसका पलन न करने पर धर्म ही दंडित करने मे सक्षम है। धर्म सनातन और प्रबल है,इसमें दृढ़ विश्वास रखकर उसका पालन करना ही धर्म की रक्षा है। 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।' ऐसा स्मरण बनाये रहने में कल्याण है।

## ( 53 )

## राजधर्म का उदाहरण

रामराज्य अभीष्ट है तो मनुस्मृति के सातवें अध्याय में लिखित राजधर्म के सिद्धांत शिरोधार्य मानने पड़ेगें। राजा केलिए ऐसी शिक्षा विश्व के किसी धर्मशास्त्र में नहीं मिलेगी। प्रस्तुत कुछ उदाहरण देखें –

दुष्येयुः सर्ववर्णांश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्।
तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम्।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम्।।

प्रथम श्लोक का भावार्थ है कि न्याय की व्यवस्था के दूषित होने पर वर्णव्यवस्था तथा लोकव्यवहार की सभी मर्यादाएं नष्ट हो जाती हैं। तब भ्रष्टाचार तथा अत्याचार से जनता क्षुब्ध हो जाती है।

दूसरे श्लोक में न्याय की व्यवस्था का उपाय बताया है। इसके लिए राजा या

शासक होना चाहिए। राजा की प्रथम योग्यता बताया है कि उसे सत्यनिष्ठ होना आवश्यक है। राजा विवेक बुद्धि से काम करने वाला, बुद्धिमान् और धर्म, अर्थ तथा काम तीनों का अनुभवी होना चाहिए। अर्थ और काम से अभिप्राय यह भी है कि सन्यासी या फकीर राजा होने के योग्य नहीं होता है। उसे परिवार और सामाजिक व्यवहार का अनुभव होना चाहिए। इसको प्लेटो ने प्रमाणित किया है। विचारकुशल राजा होने पर भी, एक वर्ष तक राज्य करके, प्लेटो ने अपने को सफल नहीं पाया और राज्य लौटा दिया। प्रयोग से भी यह सिद्ध हुआ है। इसीलिए ऋषियों ने स्मृति बनाकर क्षत्रियों को उसके प्रवर्तन का कार्य दिया।

सुशासन तथा संस्कृति की रक्षा केलिए मनुस्मृति का आदर और राजधर्म का पालन अमृत है।

## राजधर्म का परिहास

संप्रदायवाद, नस्लवाद और जातिवाद को प्राथमिकता देने वाले विचारक या इनके आधार पर राजनीति और शासन करने वाले राजनेता देशप्रेमी और राष्ट्रवादी कभी नहीं हो सकते हैं। वे संकीर्ण मानसिकता से ग्रस्त, पाखंडी और स्वार्थी होते हैं। ऐसे देश में सामाजिक सुरक्षा, न्यायिक व्यवस्था और नैतिकता की सारी सीमाएं ध्वस्त होजाती हैं।वहां मिथ्या प्रचार द्वारा, राजधर्म का परिहास (हंसी) किया जाता है। अपने देश में यह परिहास, स्वतंत्रता के पहले से आरंभ होकर, उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। इसकी नितनई घटनाएं सामने आ रही हैं। इसका दूरगामी परिणाम भयानक हो सकता है। चरइ हरित तृण बलिपशु जैसे - यह चरितार्थ नहीं होना चाहिए।

राजधर्म का प्रमुख लक्षण मानवता, नैतिकता, संस्कृति और न्याय की सुरक्षा है। इसमें कोई व्यक्ति नहीं, समाज को धारण करने में समर्थ मानव धर्म ही सर्वोपरि होता है।

## राजधर्म और रामराज्य

रामराज्य एक उद्देश्य है और राजधर्म उसे पाने का साधन है। राम की सर्वोपरि प्रतिष्ठा, राजधर्म के प्रवर्तक एक आदर्श राजा, की तरह रही है, और अब भी, इसी रूप में स्वीकार करना देशहित में है। रामराज्य स्वतंत्रता का समानार्थक शब्द हो गया है। धर्म और न्याय की प्रतिष्ठा के लिए अपने निकटतम

भक्त को भी दंड देने वाले राम थे। सीता जैसी पत्नी और लक्ष्मण जैसे भाई का भी त्याग करके, राम ने राजधर्म का आदर्श स्थापित किया। अन्य विवादकारी प्रदर्शन छोडकर, उनके चरित्र का अनुकरण करना ही उनको मर्यादा पुरुषोत्तम मानना है। इतनी समृद्ध संस्कृति और महापुरुषों के इतिहास के उपलब्ध होने पर भी, क्षुद्र स्वार्थ में देशहित व मानवता का बलिदान करना स्वार्थांध अविवेक है। संस्कृति को बदलकर पाश्चात्य अनुकरण करना राष्ट्रीयता की हत्या है।

रामराज्य की स्थापना के लिए राजनीति में संम्प्रदाय, जाति, देश, लिंग आदि का भेद समाप्त करके, निष्पक्षतापूर्वक मानव धर्म, सत्य और न्याय को सर्वोपरि मानना होगा। सभी सम्प्रदायों को विकसित और सुरक्षित रहने तथा संगठन बनाने की स्वतंत्रता देने के साथ ही सबको निष्पक्ष कठोर न्याय के शासन में रखने पर सबका साथ, सबका विकास और सबका सहयोग बना रहेगा। यही राजधर्म और रामराज्य है।

## हनुमानजी का स्वरूप

अग्नि प्रत्यक्ष देवता हैं। विश्वरूप शिव के आठ प्रत्यक्ष रूपों में अग्नि भी हैं। वे देवताओं के पुरोहित, मुखस्वरूप हैं। ऋग्वेद में सर्वप्रथम मंत्र में अग्नि की ही स्तुति है। अग्नि के तेज से उत्पन्न होनेवाले ऋषि या देवता भी तेजस्वी, विद्या व बुद्धि के सागर तथा अपराजेय हैं। बृहस्पति व गणेश जी भी उसी कोटि के (आग्नेय) देवता हैं।अग्नि की तरह ही, आग्नेय देवता या उनके आशीर्वाद से उत्पन्न महासत्व प्राणी भी विरूप होते हैं। ये तथ्य हनुमानजी के स्वरूप को समझने में सहायक हैं।

हनुमानजी जी को पवनपुत्र माना जाता है। शंकरसुवन, केशरीनंदन भी उनको कहते हैं। उनके लिए यह सारे नाम सार्थक हैं। वायु देवता भी शंकर जी के आठ प्रत्यक्ष रूपों में एक है। वायु से ही अग्नि की उत्पत्ति वर्णित है - तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी।। यह सृष्टिक्रम तैत्तिरीय उपनिषद् में है। वायु से अग्नि की उत्पत्ति होना इससे प्रमाणित है। वायु देवता हैं तथा शिव के प्रत्यक्ष स्वरूप भी हैं। उनसे अग्नि की उत्पत्ति शास्त्रीय मान्यता है। अतः हनुमानजी को पवन स्वरूप शंकर से उत्पन्न मानना शास्त्र सम्मत है। उनके आशीर्वाद से, केसरी की पत्नी अंजना से बालक

रूप मे उत्पन्न हनुमानजी का अग्निमय स्वरूप है। विरूप शारीरिक रचना भी अग्निप्रधान होना प्रमाणित करती है।

अग्नि की आराधना बल-बुधि-विद्या तीनों को देने वाली है। रामायण में वर्णित हनुमानजी में अग्नितत्व की प्रधानता देखते हुये, साकार रूप में उनकी उपासना आज से लगभग सात-आठ सौ वर्ष पहले आरंभ की गई है। पवित्रता और सात्विकता के साथ, अग्निरूप के प्रतीक स्वरूप में हनुमानजी जी की उपासना फलदायी है।

## ( 54 )

## हार की जीत,जीत की हार

अपने ऐतिहासिक ग्रंथ रामायण और महाभारत में दो महासमर वर्णित हैं। रामायण में, रावण स्वयं शक्तिशाली था और उसके अनेक अपराजेय सहायक थे। राम भी पराक्रमी थे किन्तु असहाय थे। वे अकेले भाई की सहायता से रावण को मारने का प्रयास किये। सामान्य दृष्टि से राम की हार और रावण की विजय अवश्यंभावी थी किन्तु धर्म और नीति के बल पर राम विजयी हुये। अन्तिम समय में रावण के सहायक भी अन्यमनस्क और राम के सहायक हो गये। यह हार की जीत है। उन्होंने प्रमाणित किया कि-सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीत न कहं न कतहुँ ऋपु ताके।। महाभारत में देखते हैं कि दुर्योधन के पक्ष में अपराजेय सेना थी। इसके अभिमान में वह आक्रामक बनकर पांडवों को पराजित भी करता रहा। उसकी सारी जीत, महासमर के समय, हार में बदल गई। उसके सहायक भी अन्यमनस्क और पांडवों के सहायक हो गये। अधर्म और अनीति से यही परिणति होती है। यह जीत की हार है। इतिहास से शिक्षा लेकर, अनीति से सफल होने का प्रयास नहीं करना चाहिए। आज इस शिक्षा की विशेष आवश्यकता है।

देश के स्वतंत्रता संग्राम के आरंभ में पवित्र संकल्प थे। उसी उत्साह में सेनानियों ने आत्माहुति दिया। अंग्रेजों ने नीति और सैन्यबल के सहारे सत्ता लिया था। सत्ता मांगी नहीं जाती है, छीन ली जाती है। बीर भोग्या वसुंधरा। इसी को समझते हुये बलिदानियों ने अंग्रेजों को आक्रमण द्वारा भागने के लिए मजबूर कर दिया था। अन्तिम समय में इस सिद्धांत का परित्याग करके, स्वतंत्रता संग्राम की

दिशा बदलना हानिकर रहा। बलिदनियों का असम्मान, स्वार्थसिद्धि, सत्ता और सम्मान के लोभ के कारण हमारे नेता अंग्रेजों की कूटनीति से पराजित हो गये। अनीति का सहारा लेने के कारण जीत की हार हो गई जिसका परिणाम अब भी देश भोग रहा है। स्वतंत्रता मिलना बाकी ही रह गई है।

वर्तमान स्थिति में शासन के तीनों अंगों में तालमेल का अभाव, भ्रष्टाचार, समाचार पत्रों की गुलामी, समाज में असंतोष, लोकनीति और संस्कृति की दुर्दशा, सर्वत्र अनीति और भयदायक स्थिति, आदि को देखते हुये, सत्ता पक्ष के अलावा कोई संतुष्ट और स्वतंत्र नहीं है। तात्कालिक लाभ के लिए अनीति का सहारा लेने से यह दुर्दशा है।

पुराने समय में राजा की जीत के बाद लूटने की छूट होने के कारण सेना में सेवा करने केलिए सैनिक स्वतः भर्ती होते थे। इतिहास में ऐसी घटनाएं भी हैं कि जीत के बाद लूटने में व्यस्त सेना पर दुश्मनों ने लौटकर आक्रमण कर दिया और दुश्मन की जीत को हार में बदल दिया। दुरुपयोग करने पर सेना ही शत्रु बनजाती है। पिंडारी भी प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक थे। लूटपाट में लगने पर उनका दमन करना पड़ा। अग्निवीरों से को भी सुमार्ग पर बने रहने की व्यवस्था करनी होगी। तात्कालिक व्यवस्था केलिए अनीति का आश्रय लेना अपूरणीय क्षति का कारण है। विद्यार्थियों को राजनीति में ढकेलने से शिक्षा और उसकी संस्थाओं की दुर्गति सभी देख रहे हैं।

इतिहास और वर्तमान को देखते हुये, हार को जीत में बदलने के लिए प्रयास वांछित है। देश को स्वतंत्र करने का प्रयास नये स्तर से, नैतिकता और दूरदृष्टि के आधार पर, करने की आवश्यकता है। भूमाता उद्धारक सपूत की प्रतीक्षा में है। तब तक हम सन्मार्ग पर रहने का प्रयास करें। यह रास्ता संकीर्ण है किन्तु सीधा और सुरक्षित है।

## ( 55 )

## अक्षय तृतीया

राम नाम को सर्वप्रथम अलंकृत करने वाले, साक्षात शंकर जी से अस्त्र-शस्त्र की विद्या पाकर परशुराम बनने वाले, पितृभक्ति का कीर्तिमान स्थापित करने वाले, ब्राह्मणत्व का आपत्कालीन स्वरूप प्रदर्शित करने वाले, ब्राह्मणों द्वारा अस्त्र-शस्त्र

की विद्या के प्रचार से अपने राष्ट्र को धर्म के विरोधियों से सुरक्षित करने की शुरुआत करने केलिए वसिष्ठ, विस्वामित्र, अगस्त्य, भरद्वाज, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य आदि अपराजेय आचार्यों की परंपरा को पैदा करके क्षत्रियों को संयमित और सशक्त बनाने वाले भगवान परशुरामजी को श्रद्धा के साथ प्रणाम करता हूँ। उनका स्मरण प्रेरणादायक रहे –

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्मं इदं क्षात्रं शापादपि शरादपि ।।

## ( 56 )

## हितकारी ओषधि

वैद्य का मुख्य उद्देश्य रोगी का हित करना होता है। इसके लिए मीठी ही नहीं कड़वी दवा भी देनी पड़ती है। चौपाई सभी जानते हैं--

कुपथ मांग रुज व्याकुल रोगी।
वैद न देइ सुनहु मुनि योगी।।

धन कमाना या अफीमची बनाकर प्रशंसा सुनना नहीं रोगी को नीरोग करना वैद्य का कर्तव्य है।

रुग्ण समाज व समस्याग्रस्त देश के हित केलिए नीति-निर्धारण में भी वैद्य की तरह आचरण अपेक्षित है। जनता की मनचाही या अपने मन की बातों को गौड़ करके, समाज और देश का वास्तविक हित करना उद्देश्य होना चाहिए। इसके लिए स्वार्थ, सम्मान आदि का मोह छोड़ना पड़ता है। कहने के बजाय करके दिखाना पड़ता है।

इस समय रुग्ण भारतीय समाज और समस्याओं से आक्रांत देश के विषय में उपर्युक्त बातें ध्यान देने योग्य हैं। व्यक्ति, दल और सत्ता सभी चले जायेंगे। देश तथा इतिहास स्थाई हैं जिनमें कीर्ति और अपकीर्ति बनी रहेंगी। तात्कालिक हित को शिथिल करके भविष्य को अधिक महत्व देना बुद्धिमानी है।

देश में मंदिर, बुलेट ट्रेन, बड़ी-बड़ी रैली, प्रतिदिन छोटी-छोटी योजनाओं का शिलान्यास और उद्घाटन, योग्यता सिद्ध करने वाले लोगों को नियुक्ति-पत्र बांटकर डाकिया का काम करना, मुफ्तखोरी की आदत डालना और सस्ती

लोकप्रियता हेतु चलने वाले सैकड़ों प्रदर्शनकारी कार्यक्रमों में राजकीय कोष का उपयोग आदि आवश्यक नहीं हैं। करोड़ों बर्बाद हो रहे हाथों को रोजगार चाहिए। बहुत भाषण, अपनी बड़ाई और प्रचार करके जनता को बहकाने से वोट मिल सकता है किन्तु इससे वास्तविक निदान या विकास नहीं संभव है। संप्रदाय और जाति के कारण भेदभाव से लाभ कम और अविश्वसनीयता अधिक होती है।

अतः यहां चरित्रनिर्माण संबंधी शिक्षा और कार्यक्रम, राजकीय क्षेत्र में या राज्य की सहायता से लघु उद्योगों की स्थापना द्वारा औद्योगिक क्रांति तथा युवाशक्ति का सदुपयोग, विदेशी सामानों के स्तर के सामान बनाने के लिए इंजीनियरों को प्रोत्साहन, प्रतिभा पलायन को रोकना, संस्कृति के आधार पर स्वाभिमान और स्वावलंबन रखने वाले समाज की स्थापना, सामाजिक समरसता के द्वारा जाति और वर्ग में बंट रहे समाज का संगठन, ईमानदारी को आधार बनाने पर सत्ता और विपक्ष दोनों के लिए देश और राष्ट्रीयता का सर्वोपरि सम्मान देना आदि सुधारों की आवश्यकता है। इस रुग्ण देश के लिए उपर्युक्त ओषधियों की व्यवस्था करना राजधर्म है।

## ( 57 )

## आसन और प्राणायाम

आजकल आसन और प्राणायाम को योगा कहा जाता है।यह दोनों भी योग की साधना के बाह्य अंग हैं। इनके अभ्यास से तन और मन स्वस्थ और प्रबल बनते हैं। प्रबल तन और मन होने पर, संयम की साधना के अभाव की स्थिति में शक्ति का दुरुपयोग, फलतः दुराचार, अन्याय, असत्य और पतन के मार्ग पर जाने की संभावना भी प्रबल हो जाती है। इसमें सन्देश नहीं है। यह बात आज के योगियों, साधकों, बाबा लोगों, धर्माचार्यों, नेताओं और उपदेश देने के व्यवसायियों के आचरण से व्यवहार-सिद्ध है। इस समय योगा ही अंधभक्त बनाने और चतुर्दिक समस्याओं की जड़ है। लाभ की जगह व्यक्ति और समाज दोनों को हानि हो रही है। अतः हितकर योग की साधना में रुचि है तो निम्नलिखित सुरक्षाकवच धारण करना अनिवार्य है।

सुरक्षित रहने के लिए पहले यम और नियम की शिक्षा और उनका अभ्यास आवश्यक है।यह विषय में प्रवेश के लिए प्राथमिक योग्यता है। इसके बाद

आसन और प्राणायाम आरंभ हो सकते हैं। इनसे तन और मन योग के लिए समर्थ बनते हैं। इनके साथ ही इन्द्रियों को उनके विषयों में संलग्न होने से बचाने का उपाय करते रहना है। इसे प्रत्याहार कहते हैं। मन इन्द्रियों के सहारे तुच्छ आनन्द लेने का आदी होता है। उस आनंद को छोड़कर उच्च विषय में मन को आधार देना और उसमें प्रवेश कराना भी आवश्यक अंग है। इसके लिए कोई उदार संकल्प लेना पड़ता है। इसे धारणा कहते हैं। सन्मार्ग से विचलन की स्थिति उत्पन्न होने पर इसी धारणा के सहारे साधक सुरक्षित रहता है। इतना करते रहने पर, पूर्णता के लिए, ध्यान और समाधि की स्थिति समय आने पर पैदा होती है।

योगशास्त्र पूर्ण वैज्ञानिक है। भारतीय मेधा का सही प्रचार विदेशों में होने से शास्त्रों की विश्वसनीयता सुरक्षित रहेगी। अपने यहां योगाचार्यों को केवल आसन और प्राणायाम सिखाने की आदत छोड़ना चाहिए। वे स्वयं सिद्ध बनें तब दूसरों को भी शिक्षा दें।

## ( 58 )

## यम-नियम

आज के समय में, यम-नियम पातंजल योगशास्त्र का ही विषय माना जाता है। किन्तु वैदिक धर्मशास्त्रों में सर्वत्र इनको प्राथमिकता दी गई है। यह आचार, व्यवहार और धर्मपालन की प्राथमिक शिक्षा के रूप में मान्य हैं। जैन, बौद्ध तथा सन्तो द्वारा प्रवर्तित धर्मों में, किसी न किसी रूप में, इनको आदर दिया गया है। विश्व के सभी संप्रदायों में भी, विभिन्न रूप में, इन्हें धर्म का अंग माना गया है। अतः यह विषय सम्यक् ज्ञातव्य है।

याज्ञवल्क्य स्मृति (3/312-313) में ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, ध्यान, सत्य, अकुटिलता, अहिंसा, अचौर्य, मधुरता और इंद्रियदमन ये दश यम तथा स्नान, मौन, उपवास, यज्ञ, स्वाध्याय, इन्द्रिय-निग्रह, गुरुसेवा, पवित्रता, अक्रोध और अप्रमाद यह दश नियम बताये गये हैं। मन्वर्थ मुक्तावली में, लगभग उपर्युक्त में से ही, पांच यम, पांच उपयम तथा पांच नियम और पांच उपनियम बताये गये हैं। विभिन्न आचार्यों ने सामान्यतया, इन्हीं बातों को यमनियम बताया है। महर्षि पतंजलि ने सबका समन्वय करके, सरलतम वर्गीकरण करते हुए - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह यह पांच यम और शौच संतोष, तप,

स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान यह पांच नियम बताया है। विश्लेषण करने पर सभी अंग इन्हीं में समझे जा सकते हैं।पातंजल योग में यम को सार्वभौम धर्म कहा है।

यमनियम को जानने की सार्थकता, इनका वरीयता क्रम जानकर, विधिवत सेवन करने में है। इस विषय में मनुस्मृति का निम्नलिखित श्लोक महत्वपूर्ण है-

यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः।

यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन्।।

तात्पर्य है कि यमों का सेवन अनवरत करना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में, उनमें शिथिलता होने पर व्यक्ति धर्म से च्युत, पतित व असामाजिक प्राणी हो जाता है। परिस्थिति के अनुसार नियमों के पालन में कमी की जा सकती है। यम छोड़कर केवल नियमों के पालन करने वाले पाखंडी हो जाते हैं। अतः दोनों का पालन करने पर ही निर्विघ्न उत्थान होता है।

यम नियम का विधिवत ज्ञान और आचरण आज के समय में बहुत उपयोगी है। धर्मपरिवर्तन करने ,जातिवाद और ब्राह्मणों की निन्दा करने आदि विवदों को छोड़कर, जाति नहीं, यमनियम के पालन को ही श्रेष्ठता का आधार मान लेने पर सभी को समान अवसर तथा समानता की मांग पूरी हो सकती है। सब अपनी योग्यता को बढ़ाने में समान अधिकार पा सकते हैं। इसके बाद चरित्र और बौद्धिक योग्यता के आधार पर पद-प्रतिष्ठा मिलने से सामाजिक और राजनैतिक सभी समस्याएं स्वतः समाप्त हो जायेंगी। शिक्षा में नैतिकता को प्रमुखता देने के लिए, यमनियम का ज्ञान करा देना उपयोगी होगा।

**( 59 )**

## गीता में कर्मवाद

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया।।

इस श्लोक के आधार पर गीता में नियतिवाद का सिद्धांत मान्य होना कहा जाता है। कर्मयोग के शास्त्र से ऐसा अर्थ निकालना सही नहीं है। ध्यान देने पर स्पष्ट है कि माया (अविद्या) के यंत्र (झूले) पर आरूढ़ लोग ही संसार चक्र में

नाच रहे हैं। कर्म ही अविद्या (बंधन) के कारण हैं। ईश्वर माया के यंत्र का संचालक है। प्राणियों का संचालक ईश्वर नहीं माया है। जो व्यक्ति अविद्या के वश में रह कर यंत्रारूढ़ नहीं है, उसे ईश्वर नहीं नचाता है।

इसके ठीक बाद का श्लोक है -

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

इसमें भक्तिमार्ग के शरण में जाने का उपदेश है। भक्ति भी एक तरह की क्रिया है। इसका कर्मवाद से विरोध नहीं है।

गीता में ही अन्य बहुत से स्थलों पर स्पष्ट रूप से कर्मवाद ही प्रतिपादित है। पांचवें अध्याय के श्लोक 14 व 15 हैं -

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।।
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।

इन श्लोकों में ईश्वरेच्छा नहीं अपना स्वभाव ही मूल कारक बताया गया है। स्वभाव और कर्म एकदूसरे से मिले हैं। अतः इनमें कर्मवाद स्पष्ट है।

तात्पर्य के निर्णय में लिंगों का निर्धारण शास्त्र विहित है। पुनः-पुनः जो बात दुहराई गई है और मुख्य कथ्य के अनुकूल है, उसे सिद्धांत मानना उचित लगता है।कर्मवाद भारतीय संस्कृति की प्रमुख देन है।

## ( 60 )

## गीता में परमसत्ता

गीता में अवतार शब्द नहीं है।विशिष्ट सृष्टि केलिए विभूति शब्द का प्रयोग मिलता है।चतुर्थ अध्याय में प्राप्त 'यदायदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति--तदात्मानं सृजाम्यहम्'श्लोक को अवतारवाद का समर्थक माना जाता है।इसमें 'आत्मानं सृजाम्यहम् 'कहा है।अगले श्लोक में संभवामि युगेयुगे'कहा है ।इन श्लोकों में अवतार नहीं सृष्टि या कुक्षि से पैदाहोना ही सिद्ध होता है।गीता में अहम्, मम,

तत्,त्वम्, आत्मा,ईश्वर यह सभी शब्द परमेश्वर को ही इंगित करके प्रयुक्त हैं।वह ईश्वर समस्त सृष्टि और हृदय में व्याप्त बताया है।माया से उस अदृष्ट परमेश्वर का अवतार यह सृष्टि ही है।ईश्वर की माया ही हृदयस्थ जीव की अविद्या है।

विभूतियों के पैदा होने का वर्णन गीता के दशवें अध्याय में है।विभूतियों को बताते समय 'रामः शस्त्रभृतां', 'वृष्णीनां वासुदेवः', 'रुद्राणां शंकरः' 'आदित्यानामहं विष्णुः' आदि को गिनाया गया है। अन्त में -

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।।

ऐसा लिखकर राम, कृष्ण ही नहीं विष्णु और शंकर को भी उसी परमेश्वर के तेज का अंश या विभूति ही बताया गया है। अपरिमित शक्ति संपन्न महामानवों तथा संसार के व्यवस्थापक ब्रह्मा विष्णु महेश को भी विभूति बताकर उस परमात्मा की अनन्तता का बोध कराया गया है।ईश्वर का सही ज्ञान न होने से हम छोटे-छोटे लोगों की करिश्मा से ही सम्मोहित होकर उसे ईश्वर मान लेते हैं। यथार्थ ज्ञान के लिए गीता में अनंतता को समझाया गया है। इसको समझने पर स्पष्ट हो जायेगा कि परमेश्वर के अवतार की कल्पना करना वैसी है जैसे कोई आकाश को कपड़े की तरह लपेटकर, झोले में रखने का प्रयास करे।

भारतीय संस्कृति और सनातन वैदिक धर्म एकदूसरे के पूरक हैं। धर्म में परमसत्ता का निर्धारण आवश्यक है।मनमानी परम सत्ता की कल्पना से धर्म और संस्कृति की अपूरणीय क्षति हो रही है। महापुरुषों के प्रति श्रद्धा और उनका अनुकरण होना चाहिए। उस परमसत्ता की विभूति भी यथोचित रूप से सम्माननीय है। वह विभूति भी अपने आराध्य की ही आराधना करने को कहती है। हनुमानजी अपनी नहीं राम की सेवा करने की शिक्षा देते हैं। राम अपनी नहीं ब्रह्मस्वरूप ऋषियों की ही सेवा करने का संदेश दिये हैं। सेवनीय एक ही तत्व है। नानात्व नहीं है। यही हमारी मौलिक मान्यता रही है। अनेक प्रकार के देवताओं के मंदिर नानात्व में फंसानेवाले हैं। मंदिर और धर्मस्थलों का होना सात्विकता का स्रोत है। उनको पर्यटन स्थल नहीं, पीठ और लिंग के माध्यम से एक परम सत्ता का बोध करानेवाला बनाना निर्विवाद धर्म है। उस धर्म को मानने या न मानने के अनुसार आस्तिकता या नास्तिकता का निर्णय उचित है।

इन सब बातों को समझने के बाद ही गीता में बताई गई परमसत्ता की आराधना करना संभव है। 'तमेव शरणं गच्छ' 'मामेकं शरणं ब्रज', 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे' आदि वाक्यों का विनियोग परमसत्ता या आत्मतत्व की उपासना में करना श्रेयस्कर है। इसी के लिए आचार-व्यवहार तथा स्वधर्मपालन के विधान हैं।

## ( 61 )

## गीता में भक्ति

कुछ लोगों की मान्यता है कि गीता में एक से लेकर छठें अध्याय तक कर्मयोग, सात से बारह तक भक्तियोग और तेरह से अठारह तक ज्ञानयोग है। इस तरह गीता में तीन योगों की शिक्षा है। यह मान्यता गीता के निम्न श्लोक (3/3) से मेल नहीं रखती है--

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।

ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।

ईशादि उपनिषदों में भी दो ही निष्ठा हैं। अन्तिम लक्ष्य या वहां तक पहुंचाने के संकल्प/मार्ग को निष्ठा कहते हैं, अतःनिष्ठा के रूप में दो ही मार्ग शास्त्रसम्मत हैं। ईश्वरप्रणिधान से योगसिद्धि मे सहायता पातंजल योग में है। 'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज' तथा इसी अर्थ के अनेक वाक्य गीता में हैं। इनके आधार पर ईश्वर की आराधना को एक स्वतंत्र योग के रूप मान लिया जाता है। भक्ति संप्रदाय एक स्वतंत्र साधना पद्धति हो गई है। यह वैदिक मान्यता के अनुरूप नहीं है। गीता में द्विविधा के निवारणार्थ सम्यक् विचार अपेक्षित है।

वेदों में भी ज्ञानकांड,उपासना कांड और कर्मकांड,तीन भाग बताये जाते हैं। वहां उपासना, ज्ञान और कर्म के प्रयोग की विधि के रूप में है। उद्देश्य दो ही हैं- स्वर्गादि लोक या मुक्ति। इसी तरह कर्म या ज्ञान मार्ग की साधना में ईश्वरार्पण सहायक है। इससे अहंकार का भार साधक के ऊपर नहीं रह जाता है। भक्ति स्वतंत्र योग न होकर दोनों योगों में सहायक के रूप में गीता में मान्य है।

गीता मे विषयानुसार छः- छः अध्यायों का विभाजन नहीं है। उदाहरण के लिए देखें - अध्याय सात में परा, अपरा और उनके मूलस्वरूप ईश्वर का वर्णन

है। यही तत्व अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ के रूप में अध्याय आठ मे, उसी तरह क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ और परमेश्वर के रूप में अध्याय तेरह में तथा क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम के रूप में अध्याय पन्द्रह में वर्णित हैं। मुख्यरूप से जीव, प्रकृति और ईश्वर के स्वरूप को विविध प्रकार से पूरे ग्रंथ में समझाया गया है।

चतुर्थ अध्याय के आरंभ, श्लोक (4/1) में है बताया गया है कि कर्मयोग मुख्यरुप से राजर्षियों, क्षत्रियों केलिए उपदिष्ट है। इसका पालन अन्य कोई भी करके कृतकृत्य हो सकता है। गीता के श्लोक (9/32 व 9/33) देखें -

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परां गतिम् ।।

किं पुनः ब्राह्मणाः पुण्याः भक्ता राजर्षयस्तथा।

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम।।

ध्यान देने पर इन श्लोकों से स्पष्ट होता है कि ईश्वर को समर्पित करते हुये, कर्म करना ही कर्मयोग है। यहाँ राजर्षियों को अधिकांशतः कर्मयोगी होने के कारण भक्त और ब्राह्मणों को अधिकांशतः ज्ञानमार्गी होने के कारण पुण्यस्वरूप कहा है। ईश्वरार्पण के साथ सभी मनुष्य कर्मयोग की साधना के अधिकारी हैं। यही समझाया गया है।

गीता में, अनेक विद्वानों ने अपने संप्रदाय की बातों को प्रतिष्ठित करने के लिए, बहुत से अंश प्रक्षिप्त किया है। अपना सिद्धांत भगवान व्यास के द्वारा समर्थित दिखाने के लिए यह काम दो-तीन हजार वर्ष पहले किया गया होगा। व्यासकृत मूल जयकाव्य और भारत ग्रंथ को विशाल महाभारत के रूप मे बनाते समय गीता में भी प्रक्षिप्तांश होना तर्कसंगत है। ऐसा होने पर भी गीता की शिक्षा को सही ढंग से समझा जासकता है।

अन्त में निष्कर्ष यही है कि गीता में ईश्वरार्पण को ही भक्ति कहा गया है। इससे कर्मयोगी या ज्ञानयोगी को निरहंकार रहकर साधना का अवसर मिलता है। यह साध्य नहीं है किन्तु साधन के रूप मे बहुत सहायक है।

## ( 62 )

## दीक्षांत अनुशासन

महाभारत में एक विशाल वृक्ष का किस्सा है। वह वृक्ष दशों दिशाओं में अपनी मोटी शाखाओं को फैलाकर बहुत गर्वान्वित रहता था। नारद मुनि से भी उसने अपना अभिमान व्यक्त कर दिया। यहां तक कह दिया की वायु देवता से भी उसे भय नहीं है। नारद ने वायु से यह बात कह दिया। वायु देवता उसे सबक सिखाने के लिए उद्यत हुए। यह सूचना पाकर वृक्ष डर गया। वह अपनी पत्तियां और डालें स्वतः गिराकर नंगा हो गया। वायु देवता वेग से आये किन्तु उसे शुष्कवत नंगा देखकर चले गये। इस किस्से से सबक मिलते हैं कि बड़-बोला नहीं होना चाहिए, अनुभवी व्यक्ति की सलाह माननी चाहिए, यदि बड़े से विरोध हो जाय तो स्वतः दयनीय होजाना चाहिए।

उपर्युक्त शिक्षायें तात्कालिक रक्षा के लिए हैं। बड़बोला और अहंकारी होने के दूरगामी परिणाम से बचने का कोई उपाय नहीं है। बेहयाई मे लाभ देखकर, एक बार नंगा होने वाले की आदत वैसा ही रहने की हो जाती है। तब मूर्ख को मूर्ख बनाना, झूठे को झूठा बनाना, अपराधी को अपराधी बनाना, पतित को पतित बनाना, काले कपड़े पर रंग चढ़ाना आदि कार्य नहीं किये जाते हैं। स्वतः उसी दिशा में जाने की विवशता हो जाती है। तब ईश्वर की झूठी शपथ लेना, अनाचार आदि दुर्गुणों से परहेज नहीं रह जाता है। इससे लौटने का मार्ग नहीं रह जाता है। अतः ऐसे व्यक्ति प्रारब्ध का भोग करके, निकृष्ट गति को प्राप्त करते हैं। कर्मवाद के सिद्धांत और ईश्वरीय व्यवस्था सुदृढ़ हैं।

इस दुर्गति से बचने के लिए, जीवन के कार्यक्षेत्र में आते समय, पितामाता, श्रेष्ठ व सदाचरी पुरषों की सम्मति लेनी चाहिए। परंपरा का पालन देखने पर पिता को प्रसन्नता होती है। इससे सब तरह से सुरक्षा रहती है। यही दीक्षांत संदेश है जिसका बहुत बड़ा महत्व है।

मातुपिता अरु गुरु सिख माने।

चलेहु कुमग पग परइ न खाले।। -तुलसीदास।

## ( 63 )

## एक जिज्ञासा

वेदाध्ययन के आरंभ और अन्त में ओंकार के उच्चारण का विधान है। गीता में भी 'प्रणवः सर्ववेदेषु,' 'तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः' जैसे स्थल हैं जहां ओंकार को सर्वोच्च प्राथमिकता, दी गई है। योगशास्त्र में 'प्रणवःतस्य वाचकः' कहकर उसे ईश्वर का नाम कहा है। ऐसा होने पर भी, रुद्राष्टाध्यायी आदि ग्रंथों में हरिःओम् से आरंभ किया जाता है। यह विधान कब से आरंभ हुआ और इसका शास्त्रीय आधार जानने की जिज्ञासा है। विद्वान् व्यक्ति इस विषय पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

बी.एच.यू. के एक प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् ने पूछने पर बताया था कि 'याज्ञवल्क्य शिक्षा' में यह है – 'हरिः सर्वत्र ईयते' यानी हरि शब्द सर्वत्र व्याप्त, गतिशील मान्य है। इसके आधार पर शुक्ल यजुर्वेदीय शाखा में ऐसा मान्य है। उक्त पुस्तक चौखंबा प्रकाशन आदि में बनारस में नहीं मिली। आर्य समाज से यह पुस्तक प्रकाशित है किन्तु उसमें 'हरिः सर्वत्र ईचतेरा नहीं है। इस पुस्तक की प्राणामिकता तथा प्रसंग समातनी प्रकाशन से ज्ञात करने के लिए इसे देखने की जिज्ञासा बनी है। कहां मिलना संभव है, इसे ही बताने का कष्ट करने का भी अनुरोध है।

## ( 64 )

## त्रिरत्न

परिवार बनाना व्यक्ति का सहज स्वभाव है। यह प्रथम संगठन है। समाज और शासन की व्यवस्था के मूल में परिवार और व्यक्ति का हितसाधन है। इन सबको अपनी सीमा में सुदृढ़ रखने केलिए धर्मशास्त्र बनाया जाता है। इससे सहयोग, सदाशयता, सदाचार तथा सुरक्षा का वातावरण बनता है। ऐसे देश में मानव प्रतिभा का अनन्त विकास संभव होता है। इस व्यवस्था में मार्गदर्शन हेतु तीन सूक्तियां प्रस्तुत हैं -

1-धर्मं यो वाधते धर्मो न स धर्मः अधर्म तत।(म.भा,वनपर्व)

धर्म के नाम पर किसी स्थापित धर्म का उल्लंघन करना अधर्म है।

यह, मुख्यरूप से, शासन के लिए शिक्षा है।

2-समुन्नयन्भूतिमनार्यसंगमात्, वरं विरोधोत्रपि समं महात्मभिः। (किरातार्जुनीयम्)

दुष्टों के साथ रहकर वैभवशाली होना अनिष्टकारक है। उनसे संपर्क रखने से अच्छा है कि महात्माओं से बैरभाव का संपर्क रक्खें। महात्मा शाप देकर भी कल्याण करता है।

यह सामाजिक व्यवहार की शिक्षा है।

3-तं यथायथोपासते तथैव भवति। तस्माद् ब्राह्मणः पुरुषरूपं परब्रह्मैवाहमिति भावयेत। तद्रूपो भवति। य एवं वेद। (ऋग्वेदीय, मुद्गलोनिषद्)

अद्वैत आत्मरूप स्वरूप में परब्रह्म की अविचल भावना करते हुये योगी स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है। ईश्वर या ब्रह्म की सिद्धि भावना के अनुसार होती है। इसलिए भावशुद्धि ही तपस्या है।

लोक से लेकर, परलोक तक की सिद्धि हेतु यह साधक व्यक्ति के लिए शिक्षा है।

सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति ऐसी शिक्षाओं का आगार है।

## ( 65 )

## हिन्दुत्व खतरे में

हिन्दू कोई सम्प्रदाय या धर्म नहीं है। यह भारतीय संस्कृति में प्राप्य जीवन के उच्च मूल्यों, परम्पराओं, व्यावहारिक आदर्शों आदि का संवाहक एक चिरजीवी समाज है। विश्व भर में व्याप्त हिन्दू, अपना मौलिक स्वरूप देखने के लिए यहां आते हैं। यहां परिवार, विवाह, नारी, अतिथि आदि की मर्यादा अनुकरणीय रही है। उसे न पाकर, यहां भी पश्चिम की संस्कृति, तथा निष्प्राण हिन्दुत्व का ढांचा देखने पर उन्हें सही प्रेरणा या स्वाभिमान की अनुभूति नहीं मिलती है। लोग हिन्दू तो कहने के लिए बने ही रहेंगे किन्तु देश तथा विदेश में भी हिन्दू नहीं, हिन्दुत्व खतरे में है।

पराधीनता में हिन्दू को खतरा बाहरी शासकों से था। उस समय हम हिन्दुत्व के सहारे ही हिन्दू बने रह गये। अब हिन्दू को खतरा तथाकथित हिन्दू से ही है। अर्धनग्न और मर्यादाविहीन नारी को सशक्त कहना, झूठे, पाखंडी और अनाचारी व्यक्ति को, धनबल और बाहुबल के नाते देशप्रेमी कहना आदि विपरीत मान्यताओं से हिन्दू की संख्या बढ़ सकती है किन्तु हिन्दुत्व समाप्त हो जायेगा। हिन्दुत्व नहीं रहेगा तो हिन्दू निर्गंध कागज का फूल बनकर रह जायेगा।

इस समस्या के निराकरण के लिए गांवों में अवशिष्ट प्राचीन संस्कृति को सुरक्षित रखना चाहिए। गांवों को वर्तमान राजनीति से मुक्त रखकर समाज को स्वतंत्र बनायें। इसके साथ हिन्दुत्व की आधारभूत अपनी प्राचीन संस्कृति के अनुसार संविधान तथा कानून प्रवर्तित किये जांय। हम स्वाभिमानी बनेंगे तभी हिन्दुत्व के साथ वास्तविक हिन्दू भी सुरक्षित रहेंगे।

## ( 66 )

## लोकतंत्र का आधार

आधार पर ही महल बनता है। पेड़ के आधार पर ही फलोत्पादन होता है। इसी तरह लोक आधार है और लोकतंत्र उस पर बना महल या उसका फल है। जब लोक ही नहीं होगा तो उसका तंत्र नहीं रहेगा।

लोक शब्द, विशिष्ट स्वरूप के, समाज या जनता का द्योतक है। विशिष्टता के लिए जनता को शिक्षित, सभ्य, स्वाभिमानी, आत्मनिर्भर, स्वतंत्र, और भयमुक्त होना चाहिए। आपसी सहयोग और विश्वास की भावना हो। इनके अभाव में सहनशीलता नहीं रहती है और प्रत्येक बात और पग-पग पर परस्पर मानहानि का आरोप होने लगता है। विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। फलतः लोक अशक्त और कुंठित लोगों का समूह होजता है। तभी शासक वर्ग की तानाशाही चलती है। प्रचारतंत्र इतना अविश्वसनीय हो जाता है कि उसे सुनने या पढ़ने पर झूठी सूचना मिलने लगती है। राजकीय जांच-पड़ताल के तंत्र तथा कभी-कभी न्यायालय से होने वाले आदेश आदि का पूर्व अंदाज होने से नेता और शासन पर विश्वास समाप्त हो जाता है। सजीवलोक के अभाव से उत्पन्न आधारहीनता होने पर, ऐसे देश मे लोकतंत्र संभव नहीं है।

लोकतंत्र के लिए जनता में जिन विशिष्टताओं को ऊपर बताया गया है, उनका अभाव जिस देश में है वहां लोकतंत्र का ढ़ोंग ही है। पहले समर्थ जनता रूपी आधार की रचना के लिए किसी मिश्रित शासन प्रणाली का प्रयोग होना चाहिए या सदोष संविधान में उचित परिवर्तन करके किसी समय लोकतंत्र की नींव सुदृढ़ की जा सकती है। इसके द्वारा लोकनीति को राजनीति से ऊपर स्थापित करना पड़ता है। तभी देश की जनता की आकांक्षा के अनुरूप संविधान तथा कानून बनते हैं। ऐसे आदेशों का पालन सहज ढंग से कराया जा सकता है। सुदृढ़ आधार पर बना लोकतंत्र सफल होता है।

## ( 67 )

## इतिहास से शिक्षा

उक्तियाँ बहुत सी हैं जिनमें से यहां दो को प्रस्तुत किया जारहा है।

1- 'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः'। जब विनाश होना होता है तो बुराई में ही अच्छाई दिखाई पड़ती है। महाभारत में दुर्योधन इसका उदाहरण है।

2- इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधिबल लेसा।।

सीताहरण करते समय रावण के लिए यह चौपाई लिखी है।

पृथ्वीराज चौहान की पराजय के प्रसंग में यह उक्तियां द्रष्टव्य हैं। पृथ्वीराज महान योद्धा थे। भारत भूमि में प्रवेश का मुख्य द्वार दिल्ली है, जहां के सम्राट वे थे। गोरी को कई बार पराजित करने पर भी उसे वापस भागने में सफल होने देना उनमें सतर्कता, नीतिगत कुशलता और आक्रामकता का अभाव प्रगट करता है। राजा के लिए यह विपरीत बुद्धि है।

जयचंद भी एक मानिन्द सम्राट था। पृथ्वीराज का मौसेरा भाई था। विरोध होने पर भी, उसकी पुत्री पृथ्वीराज के लिए भी पुत्री तुल्य थी। उस पुत्री का अपहरण करके पत्नी बनाना कुपंथ पर चलना था। सीता का अपहरण करने मात्र से ही रावण बल और बुद्धि से हीन हो गया। पृथ्वीराज की उससे भी बुरी गति रही और उनके पतन का कारण बन गया, उनकी प्रतिभा नष्ट हो गई।

मानिन्द सम्राट होने के कारण, जयचंद ने बदला लेने के लिए जो कुछ किया, वह स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। उसने प्रचलित राजनीति का प्रयोग किया।

पुत्री को सुरक्षित नहीं रख सकने की निन्दा उसकी रह ही गई। अन्य दोषारोपण इतिहासकार जानें।

इतिहास से शिक्षा लेते हुये, उक्त दोनों वाक्यों का स्मरण रक्खें। बुद्धि को सही दिशा में रखने के लिए बुद्धिमान् लोगों की सम्मति स्वीकार करें। कुमार्ग पर पहला पैर भी न रक्खें क्योंकि उसे वापस लेने में बड़ी कठिनाई होती है।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।

सत्यपूतां बदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्।। - मनुस्मृति

**( 68 )**

## भविष्य का ज्ञान

गीता के एक श्लोक और उसकी सम्यक् व्याख्या से भविष्य के ज्ञान का सूत्र मिलता है। श्लोक है-

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।

कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करोष्यवसोत्रपि तत।।

यहां स्वभाव और कर्मफल इन दोनों को प्रबल कहा है। इनके प्रभाव से व्यक्ति को कोई कार्य हठात् करना पड़ता है। स्वभाव और कर्म ही ईश्वर और नियंता का कार्य करते हैं। स्वभाव सात्विकी राजसी, तामसी या मिश्रित कुछ भी होसकता है। उसी के अनुसार कार्य करने की दक्षता मनुष्य में होती है। दक्षता का उपयोग करके कार्य करना और उसी के अनुसार दृढ़ स्वभाव का फल भोगना स्वाभाविक प्रक्रिया बन जाती है।

अग्नि की लपट ऊपर को, जल का प्रवाह नीचे को और वायु का प्रवाह रिक्त स्थान की ओर होना स्वाभाविक है। यह तीन प्रकृति के सक्रिय तत्व हैं।पृथ्वी आधार है और आकाश अवकाश, विस्तार का साधक है। सूर्य और चन्द्र की प्रदूषणरहित रश्मियां पोषक तत्व देती हैं। यह सात प्रकृति के प्रत्यक्ष उपकरण हैं जो आठवें अमरतत्व जीव के लिए हैं।

मनुष्य के लिए जन्मजन्मांतर का कर्मफल ही आधार (पृथ्वीतत्व) है। आकाश ही अनन्त भविष्य है। अन्य छः तत्वों की स्थिति और क्रियाकलाप के द्वारा मनुष्य

का स्वभाव और आचरण दोनों नियंत्रित होते हैं। व्यक्ति स्वयं ही आत्मानवेषण द्वारा अपना स्वभाव और भविष्य जान सकता है। दूसरे व्यक्ति के भी क्रियाकलाप को देख कर, उसके भविष्य का अन्दाज लगाया जा सकता है। यह मनोवैज्ञानिक और पूर्ण वैज्ञानिक ज्ञान है। किसी व्यक्ति ने रमण महर्षि से अपना भविष्य पूछा तो उन्होंने यही कहा कि अपने वर्तमान से ही भविष्य को जान सकते हैं।

मायावी धर्मगुरुओं, फकीरों, ज्योतिषियों और धूर्तों से स्वर्ग का टिकट लेने की मूर्खता छोड़कर, कर्मफल पर विश्वास करें। लोक में विख्यात उक्ति है - कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा।।

## ( 69 )

## उपास्य देवता का तारतम्य

आजकल उपास्य देवता और उपासना-स्थल के विषय में बड़ा सामाजिक कलह है। शासन व सत्ता के लोग इस कलह से लाभ लेकर अपना वोट बैंक तैयार करते हैं। सामयिक उपयोगिता की दृष्टि से,पहले उपास्यों का निर्णय और उनका तारतम्य बताया जारहा है। उपासनास्थल के विषय में बाद में लिखा जायेगा।

देवता की उपासना का एक उद्देश्य होता है। कोई देवता अपने भक्त को वही दे सकता जो उसके पास है। जो स्वयं सीमित है वह असीम नहीं दे सकता है, अतः असीम को जानें। उपास्य के निर्णय के लिए गीता के कुछ श्लोक द्रष्टव्य हैं -

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया।।7/20

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपिः।7/23

येऽप्यन्यदेवता भक्त्या यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपी मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।9/23

यजन्ते सात्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः।।17/4

इनके साथ ही 'यो यत्छ्रद्धः स एव सः', 'रजसस्तु फलं दुखं अज्ञानं तमसः फलम्' आदि अनेक स्थलों से गीता में समझाया गया है कि सात्विक श्रद्धा के साथ केवल ईश्वर ही उपास्य है।अन्य सात्विक देवता की उपासना भी फलवती होती है। राजस और तामस देवता की उपासना वर्जित है क्योंकि उनसे दुख और अज्ञान मिलता है।

लोग आध्यात्मिक अनुभूति या लौकिक उन्नति के लिए उपास्य ईश्वर की शरण में जाते हैं। ईश्वर की सिद्धि तर्क, अंधविश्वास या करिश्मा दिखाने से नहीं होती है। भावना के बल पर ईश्वर की अनुभूति होती है। इस अनुभूति के फलदायिनी होने पर विश्वास होने से ईश्वर सिद्ध होता है। भावना और विश्वास से रहित व्यक्ति केलिए वह असिद्ध रहता है। जैसी भावना हो वैसा ईश्वर होता है। मनुष्य ही नहीं अन्य कोई भी रूप में वह उपास्य होसकता है। घर की चकिया से तो काम लेते हैं।उसकी पूजा सभी कर सकते हैं। भावना के बल पर ईश्वर सर्वव्यापक हो जाता है। तब सर्वत्र उपास्य ही रह जाता है।

सकल राममय की दृष्टि उत्पन्न होने पर, ऐतिहासिक और शरीरधारी महापुरुषों की भी उपासना करने में कोई दोष नहीं है किन्तु यह दृष्टि उत्पन्न होना कठिन है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक, रविदास आदि सैकड़ों लोगों को उपास्य बनाया जा चुका है। अब प्रत्येक जाति के अलग अलग तथा प्रेत भी उपास्य बन रहे हैं। इनके उपासकों में आपसी विवाद बढ़ रहा। इससे समाज विघटित हो रहा है। निदान आवश्यक है।

विवादों को विराम देने केलिए देहधारी महापुरुषों को उपास्य नहीं,आदरणीय और अनुकरणीय श्रेणी में रक्खा जाय। प्रेतों की उपासना निन्दनीय मानी जाय। वेदादि शास्त्रों में वर्णित, अनुभूति का विषय होने योग्य, देवताओं और परमेश्वर को उपास्य माना जाय। सही उपास्य की पहचान होने और उसकी उपासना करने पर ईश्वर भारत भूमि के लिए वरदायी होगा।

## ( 70 )

## राजदंड और धर्मदंड

जनादेश, सिंहासन और ताज के रूप में शासक को राजदंड मिलता है। इस दंडधारी को जनता के ऊपर शासन करने का अधिकार प्राप्त होता है। इस अधिकार का प्रयोग जनहित और देश की सुरक्षा में ही किया जाय, इसके लिए शासक के ऊपर धर्मदंड रखने की शास्त्रीय परंपरा रही है। शासक अनुशानहीन और स्वच्छंद नहीं होना चाहिए। अतः राज्याभिषेक के समय 'धर्मदण्डोऽसि' कहते हुये, राजपुरोहित द्वारा, धर्मदंड को राजा के शिर पर तीन बार रखते हुये, उसे धर्म के अनुशासन में रहने की शिक्षा दी ााती थी।

धर्मदंड ही स्वर्णिम सेंगोल के नाम से दक्षिण भारतीय नरेशों के यहाँ प्रयोग में आता था। इसमें नीचे दंड और ऊपर बृषभ बना है। बृषभ धर्म के प्रतीक के रूप में विख्यात है। इस सेंगोल या धर्मदंड को, संसद भवन में, वर्तमान शासक के बगल में नहीं, उसके शिर के ऊपर स्थापित करना उचित है। धर्मदंड से शासक को धर्म पर भी शासन करने का अधिकार न मिल जाय। यह धर्मदंड राजदंड का मार्गदर्शक बना रहे, इस स्वर्णिम दंड से शासक अनुशासित रहे, यही ईश्वर से कामना है।

## ( 71 )

## परिवर्तन क्यों?

परिवर्तन प्रकृति का स्वभाव है।इससे संजीवनी शक्ति बनी रहती है। लेकिन, प्रकृति भी अपने मूल तत्वों का स्वभाव सुरक्षित रखती है। आवश्यक परिवर्तन में हिचक नहीं, अनावश्यक और हानिकारक परिवर्तन कदापि नहीं, यही प्रकृतिसिद्ध औचित्य है।

गंदी नाली की सफाई करना ही चाहिए चाहे पुनः-पुनः गंदगी ही आती रहे। ऐसा करते रहने पर नाली साफ रहने लगती है। लौकिक या मानसिक प्रदूषण को दूर करने की भावना से, नवीन सामग्री द्वारा बदलते रहना उपयोगी है। अतः शुद्ध भावना से परिवर्तन की इच्छा उचित है।

आजकल आवश्यक परिवर्तन से परहेज और औचित्य के विरुद्ध परिवर्तन

करना खूब देखा जा रहा है। प्रकृति के विपरीत व्यवस्थाओं द्वारा ,विश्व भर में यह रोग व्याप्त है किन्तु भारत में असाध्य स्थिति में पहुंच गया है। शासन प्रणाली व सामाजिक व्यवस्था को अशांति और अधोपतन के गर्त से बचाने के लिए परिवर्तन अनिवार्य है। देश के सपूतों का बलिदान व्यर्थ न जाय। अतः अनुकूल व्यवस्था होने तक इनमें परिवर्तन करते रहना उचित उपाय है। यह हितकर परिवर्तन है।

अहितकर परिवर्तन को रोकना भी बहुत आवश्यक है। विदेश के अनुकरण से सांस्कृतिक क्षेत्र में परिवर्तन यहां का मौलिक स्वरूप बदल रहा है। अपनी परंपरा, पारिवारिक व्यवस्था, सामाजिक मान्यता, जीवन के आदर्श, हिन्दुत्व का स्थापित स्वरूप आदि में तेजी से, योजनाबद्ध रूप से परिवर्तन करना अनिष्टकारी है। प्रकृति से शिक्षा लेकर, मौलिक भारतीय गुणों को अपरिवर्तित रक्खें, यही हितकर है।

## ( 72 )

## समाज का नकली दर्पण

आदि काल से साहित्य, समाज का दर्पण माना जाता है। इसी के आधार पर वैदिक काल से लेकर अब तक के समाज का वर्णन मिलता है। संस्कृत साहित्य के बाद हिन्दी साहित्य में चार काल निर्धारित किये गये हैं। वीरगाथा, भक्ति, रीति और आधुनिक नाम से बने प्रथम तीन भागों के साहित्य में तत्कालीन समाज दिखाई पड़ता है। आधुनिक काल मे छायावाद प्रगतिवाद, रहस्यवाद आदि अनेक वाद प्रचलित हैं जिनमें विदेशी अनुकरण से तथा अपनी प्रतिबद्धता के अनुसार ही समाज, मानवमूल्य तथा इतिहास-भूगोल आदि लिखना आरंभ हुआ। आत्मकथा लिखने तथा धन देकर जीवनी लिखाने और अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित कराने की भी प्रथा का आरंभ स्वतंत्रता से पहले हुआ है। अब, यह प्रथा उत्तरोत्तर बढ़कर चरम पर पहुंच गई है। प्रचारतंत्र के सहारे बुरे या सामान्य व्यक्ति को उत्कृष्ट और योग्य व्यक्ति को उपेक्षणीय बनाना आसान होग ाया है। अधर्म को धर्म तथा अंधेर नगरी में रामराज्य प्रचारित किया जाता है। इस स्थिति को देखते हुये, इस नई विधा के साहित्य को पाखंडवाद कहा जा सकता है।

इस स्थिति में साहित्य में समाज का दर्शन करना असंभव है।आजकल दर्पण और फोटो भी मनोरंजन के लिए बनते हैं जिनमें असली चेहरा नहीं दिखाई पड़ता

है। अब साहित्य भी इसीतरह का दर्पण है। इस दर्पण में सही रूप देखने केलिए नये चश्मे का आविष्कार आवश्यक है।

समाज की प्रकृति किस तरह के मनोरंजन, कैसी जीवनशैली, किन परंपराओं, सिद्धांतों, मूल्यों, आश्वासनों को आदर मिल रहा है, आदि के द्वारा जानी जासकती है। मानसिक स्थिति के अनुसार ही समाज का आचरण होता है। शांतिव्यवस्था, परस्पर सहयोग, विश्वास आदि का अध्ययन करके समाज का सही स्वरूप देखा जा सकता है। अंधभक्तों को यह दृष्टि दुर्लभ है। विवेकशील और निष्पक्ष व्यक्ति के लिए समाज में पाखंडवाद का युग स्पष्ट है। इसके स्थाई प्रभाव को देखकर, इतिहास में इसका यथोचित आकलन होगा।

( 73 )

## उपासना स्थल का तारतम्य

उपासना स्थल प्रयोजन होते हैं। इससे सात्विकता/आध्यात्मिक लाभ, लौकिक लाभ, भय-शोक-हानि-चिंता से मुक्ति, सामाजिक और धार्मिक संगठन की सिद्धि हो सकती है। इसके ही लिए बहुत से उपासना-स्थल प्रसिद्ध हैं। इन स्थलों के प्रबंध और नये स्थलों की स्थापना का उद्देश्य दूषित होने पर यह सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक प्रदूषण के स्रोत बन रहे हैं। व्यवसायीकरण, राजनैतिक प्रचार व पर्यटन केन्द्र बनाने के प्रयास से यह स्थल पवित्रता तथा अपने मूल उद्देश्य से दूर हो रहे हैं। वर्तमान में उपलब्ध उत्तम, मध्यम, विवादित तथा त्याज्य श्रेणी के इन उपासना स्थलों के स्वरूप का तारतम्य (अच्छे-बुरे का क्रम) बनाने का प्रयास प्रस्तुत है।

1-मनमंदिर, हृदय या निर्मल अंतःकरण निर्विवाद, उत्तम उपासना स्थल है।

2-अपने घर या परिसर में विधिवत प्रतिष्ठित लिंग या शालिग्राम का मंदिर अपनी आस्था को तृप्त करता है। यह भी निर्विवाद स्थल है।

3-गृहदेवता, कुलदेवता, ग्रामदेवता की चौरी या इनके निर्धारित स्थल पर उपासना से परंपरा का पालन और विशेष सुरक्षा की भावना का पोषण होता है। यह स्थल भी अविवादित हैं। आस्था के अनुसार इनसे मनोवैज्ञानिक बल और उद्देश्यों की पूर्ति होती है।

4-सार्वजनिक स्थान पर पीठ, लिंग आदि प्रतीक से मंदिर में किसी देवता की प्रतिष्ठा। इसमें रूप नहीं नाम का महत्व होता है। यह संप्रदाय के लोगों केलिए श्रद्धास्पद तथा अन्य लोगों केलिए अविवादास्पद स्थल होता है।

5-सार्वजनिक स्थल पर किसी शास्त्रीय देवता के काल्पनिक मूर्ति की मंदिर में प्रतिष्ठा करने पर नाम और रूप दोनों का महत्व होता है। स्थूल पदार्थ-रूप का महत्व अधिक होने से सांप्रदायिक विवाद संभव होता है।

6-किसी ऐतिहासिक महापुरुष की मूर्ति की स्थापना के स्थल या मंदिर में संप्रदाय के आधार पर मान्यता देने के कारण, महापुरुष और मध्यम या सामान्य व्यक्तियों के मंदिर समान स्तर के हो जाते हैं। सभी के भगवान हो जाने से सैकड़ों भगवान और उतने ही वर्ग समाज के लिए विघटनकारी हैं। ईश्वर का स्वरूप ही विवादास्पद बनाना अहितकर है।

7-बीरबाबा, मजार, हत्या या आत्महत्या करने वाले अनेक प्रकार के प्रेतयोनि में पड़े जीव, भैरव, हनुमानजी आदि नामों से प्रगट होकर उपासना स्थल बनवाकर पूजे जाते हैं। यह स्थल थोड़ा लाभ दिखाकर अधिक दिनों के लिये तामसी प्रवृत्ति पैदा करते हैं अतः सर्वथा त्याज्य हैं।

8-करिश्माई व पाखंडी धर्मगुरु, संत, समाज- सेवक या जननेता भी आजकल मंदिरों में स्थापित होरहे हैं। यहां अंधभक्त जनता का हरतरह से शोषण होता है। इनको स्थापित करने वाले अनुयायी शिष्य लोग होते हैं।

9-जातीय नेता के नाते मान्य, उनके द्वारा महापुरुष समझे गये सामान्य लोगों के भी मंदिर और स्मारक बन रहे हैं। स्मारक को भी उपासना स्थल का रूप दिया जा रहा है।यह जातीय वर्ग बनाने और सामाजिक विघटन तथा कलह का कारण बन रहा है।

10-व्यावसायिक उपासनस्थल खोलने की भी परंपरा प्रचलित है। उपेक्षित पड़े स्थलों का नवनिर्माण और प्रचारतंत्र के द्वारा उन्हें सिद्धपीठ घोषित करके भारी मात्रा में अर्थार्जन के स्रोत उपासना स्थल के रूप में बन रहे हैं। यह धर्म और आस्था का दोहन है।

यहां उत्तम से निकृष्टतम तक के उपासना स्थलों का तारतम्य देने का प्रयास किया गया है। उनके गुण-दोष भी संक्षेप में लिखा गया। इसके आधार पर

निर्धारित हो सकता है कि कौन से उपासना स्थल संरक्षण योग्य हैं और कौन उद्देश्य से उलटे काम करने से हानिकारक और अंकुश लगाने योग्य हैं।

ज्ञातव्य है कि उपासना स्थल का महत्व बड़े और शानदार मंदिर, प्रचार और पर्यटनकेन्द्र का स्वरूप देने से नहीं होता है। उसके संस्थापक के भावना की पवित्रता, उसकी सत्यनिष्ठा, उसके व्यक्तित्व का सत्व ही मंदिर में प्रतिष्ठित होता है। रामेश्वरम में मर्यादा पुरषोत्तम राम का सत्व है। छोटा सा काशी विश्वनाथ मंदिर विश्वविख्यात रहा है। मीनाक्षी मंदिर राजा की पुत्री के नाम, मीनाक्षी देवी की प्रतिमा के साथ है। वहां उपासनास्थल नहीं, विशेषकर विशाल मंदिर और वास्तुकला का महत्व पर्यटकों के लिए आकर्षक है। बड़े-बड़े मंदिरों में भी, पवित्रता और भावना के अभाव में, प्रेत पूजा ही संभव है। ऐसा होने पर अपना धर्म, अपनी संस्कृति, अपना समाज, अपने देश की प्रतिष्ठा आदि सभी संकटग्रस्त बने रहेंगे।

इस संदेश का उद्देश्य है कि उपासनस्थलों को व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और देश सबके लिया उपयोगी रखा जाय। वृहद आकार और पर्यटनकेन्द्र तथा व्यवसायीकरण का मोह छोड़कर इनको पवित्र और धार्मिक भावना का पोषक रखा जाय बड़े बड़े मेला और यात्रा के आयोजन की जगह, गांव और मुहल्ले में सामाजिक सहयोग से साप्ताहिक धर्मगोष्ठी, प्रार्थना भवन आदि की व्यवस्था से जनता को ईश्वर की उपस्थिति का ज्ञान उपासना स्थल का तारतम्य उपासना स्थल का प्रयोजन होता है। इससे सात्विकता/आध्यात्मिक लाभ, लौकिक लाभ, भय-शोक-हानि-चिंता से मुक्ति, सामाजिक और धार्मिक संगठन की सिद्धि हो सकती है। इसके ही लिए बहुत से उपासना स्थल प्रसिद्ध हैं। इन स्थलों के प्रबंध और नये स्थलों की स्थापना का उद्देश्य दूषित होने पर यह सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक प्रदूषण के स्रोत बनरहे हैं। व्यवसायीकरण, राजनैतक व पर्यटनकेन्द्र बनाने जाय। आवश्यक नियंत्रणक के लिए उचित राजकीय नियम बनाकर, समाज का सक्रिय सहयोग लेने से सामाजिक जागृति और परिवर्तन का भी कार्य सिद्ध होगा। उपासनस्थल और धर्म के मौलिक स्वरूप को सुरक्षित रखना श्रेयस्कर है। विदित हो-'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।'

## ( 74 )

## अविद्या और विद्या

उपासना केलिए अविद्या ही स्वभाविक रूप से उपस्थित होती है। अविद्या रूपी सत, रज, तम तीन गुणों वाली प्रकृति सभी प्राणियों केलिए सहजरूप से उपास्य (आश्रय) बनजाती है। भौतिक सुख इसका लक्ष्य होता है। इसे स्थूल से सूक्ष्म होते हुए अलिंग पर्यंत परिवर्तनशील बताया गया है। अतः, मृगमरीचिका की तरह अस्तित्वहीन पदार्थ होने के कारण इसमें रमण करने वाले असत् अंधकार) में फंसे रहते हैं। यह दुखदायी और बंधनकारी है।

विद्या की उपासना में ज्ञान और वैराग्य लक्ष्य हैं।इसमें अस्पष्ट से स्पष्टतर होते हुए, शुद्ध सत् प्रकाशित हो जाता है। यह आनंद का स्रोत और मुक्तिदायी है। सा विद्या या विमुक्तये।

अविद्या और विद्या दोनों के सेवन का सामंजस्य कर्मयोग की साधना में होता है। स्वधर्म रूपी कर्म से आरंभ करके, कर्मफल से वैराग्य होने पर, अकर्म की स्थिति में पहुंचना, अविद्या से चलकर विद्या के उपासना की यात्रा है। जीवनकाल में ही अंतःकरण के मल स्पष्ट रहते हैं। मृतात्मा को अपनी अस्पष्ट मानसिक गंदगी के प्रच्छालन की शक्ति नहीं रहती है। अतः यह शरीर, जीवन और कर्म बहुत उपयोगी हैं। तनु बिनु वेद भजन नहिं बरना-तुलसीदास।

कर्मयोग का बीज ईशोपनिषद् में उपलब्ध है - अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते। पूर्व जन्म में ही मृत्यु के भय से मुक्त होनेवाले ज्ञानयोगी विरले होते हैं। अतः संसार रूपी मृत्यु से मुक्त होकर परवैराग्य और ज्ञाननिष्ठा की स्थिति तक पहुंचने के लिये सर्वसुलभ साधना कर्मयोग है।

## ( 75 )

## सार्वजनिक क्षेत्र में जीवन -यात्रा

मां की गोदी से बाहर आने पर, सामान्यतया, बालक खेलकूल तथा पढ़ाई लिखाई, में लगता है। इस अवस्था के बाद शादी विवाह, रोजी-रोटी आदि की व्यवस्था होती है। तब अधिकांश लोग व्यक्तिगत और पारिवारिक समस्याओं तथा संसाधनों के लिए जीवनदान कर देते हैं। व्यक्तिगत समस्या के रूप में स्वास्थ्य,

अभिरुचि और आध्यात्मिक साधना प्रमुख हैं। इस दिशा में जाने के साथ ही,कुछ लोगों में समाज तथा देश-दुनियां के विषय में भी सोचने व स्वभाव के अनुसार कुछ करने की इच्छा होती है। अपवाद तो कई हैं, किन्तु एक मान्यता है कि जीवन के चालीस वर्ष बाद ऐसी परिस्थिति बनती है। तब अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जीवन की दूसरी पाली आरंभ होती है।

किसी व्यक्ति में दैवी और आसुरी प्रकृति के लक्षण पहले से रहते हैं। द्वितीय पाली के जीवन में दैवी प्रकृति के लोग संवेदना, दया, न्याय, सत्य, परोपकार आदि दैवी गुणों के अस्त्र से संघर्ष करके धर्म, संस्कृति, समाज तथा देश में व्याप्त अपवित्रता को दूर करने का प्रयास करते हैं। संवेदना आदि जो गुण दैवी लोगों की शक्ति हैं, उनके ठीक विपरीत असंवेदना, अन्याय आदि आसुरी लोगों की शक्ति हैं। सरल और तुरन्त लाभकर रास्ते के सहयोगी बहुत मिलते हैं अतः उस पर संघर्षशील रहना आसान है। आसुरी लोगों से दैवी लोग बहुधा पराजित होते हैं। आसुरी व्यवस्था से सृष्टि के नाश की स्थिति उत्पन्न होने पर प्रकृति की कोख से कोई विभूति पैदा होती है और पुनः दैवी शक्ति के लोग विजई होते हैं। दैवी शक्ति का लोप धीरे-धीरे होता है जबकि आसुरी शक्ति एकाएक लुप्त होती है। दैवी मार्ग परलोक में चिर सुखदायी होता है और आसुरी मार्ग अनन्त दुखदायी बनता है। अतः दूसरी पाली के जीवन में दैवी गुणों के सहारे संघर्ष करते रहना सर्वोत्तम मार्ग है। 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं,जित्वा वा भोक्षसे महिमा - गीता से शिक्षा लेकर संघर्ष करना धर्मसम्मत है।

अपने देश में आसुरी प्रकृति का प्रकोप चरम पर है। इस समय सत्ता का सहयोगी असुर ही सर्वोपरि है। वैज्ञानिक,विद्वान्, समाजसेवी, बलिदानी, खिलाड़ी, किसान, सैनिक, कलाकार तथा भारतरत्न आदि उसके सामने हेय हैं। सभी राजनैतिक दल जातिवाद, संप्रदायवाद तथा क्षेत्रवाद और धनबल तथा बाहुबल के सहारे खड़े हैं। दैवी प्रकृति के लोगों को संघर्ष करते रहना इस समय बहुत आवश्यक है। धार्मिक,सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक मान्यताएं उलटी होगई हैं। इन सब में सुधार का उपाय नहीं है क्योंकि सब राजनीति के शिकार होचुके हैं। मैं भी एक सामाजिक संस्था चलाकर अनुभव कररहा हूं। कुछ दिन पहले, राजनीति के शोधन का उदाहरण प्रस्तुत करने हेतु, एक नैतिक राजनैतिक संगठन के लिए भी प्रयास किया किन्तु धन एवं जनसहयोग की कमी देखते हुये इसे

स्थगित कर दिया है। समान उद्देश्य के व्यक्तियों का साथ मिलने पर आगे बढ़ा जायेगा। सामाजिक सुधार के प्रयास के साथ, प्रदूषित राजनीति में भी सुधार करने के लिए संघर्ष करना समय की मांग है।

न्यायालय के द्वारा, जनता के संघर्ष या किसी आकस्मिक कारण से समस्याओं पर अंकुश लगसकता है। कर्मयोगी आशा या निराशा का शिकार नहीं होता है। उसके लिए स्वधर्म का पालन ही कर्तव्य है। तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।

## ( 76 )

## संत की भविष्यवाणी

रामचरित मानस में तुलसीदास ने कलियुग के वर्णन के बहाने भविष्य के समाज का दर्पण दिया है। थोड़ा सा अंश प्रस्तुत है ।

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।।

मारग सोइ जाकहुं जो भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।।

मनक्रमबचन लबार तेइ बकता कलिकाल महं।।

सौभागिनी विभूषण हीना। विधवन के सिंगार नवीना।।

मातुपिता बालकन बोलावहिं। उदर भरइ सोइ धरम सिखावहिं।।

सब नर कलपित करहिं अचारा। बरनि न जाइ अनीति अपारा।।

तपसी धनवन्त गरीब गृही। कलि कौतुक तात न जात कही।।

नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड विदंड प्रजा नितही।।

नहिं तोष विचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भये मंगता।।

पांच सौ वर्ष पहले का वर्णन इस समय केलिए भविष्यवाणी के रूप में प्रत्यक्ष है।ब्राह्मण वेद वेंच रहा है, धर्म विहीन राजा प्रजा को ही खा रहा है, नारी मर्यादा विहीन है, गृहस्थ गरीब हैं और योगी तपस्वी धनाढ्य हैं, बालक को केवल रोजगारपरक शिक्षा दी जाती है, मनसावाचाकर्मणा लबार लोग ही प्रमुख वक्ता हैं, धर्म कल्पना पर आधारित है अतः मूर्ख ही धर्मप्रवर्तक बने हैं, आदि

बातें सब के सामने स्पष्ट है। इनको पढ़कर और प्रत्यक्ष देखकर कुछ विचार करना व शिक्षा लेना भी संभव है।

युग के वारे में विभिन्न विचार हैं। महाभारत में राजा को ही युग कहा है – 'राजा हि युग उच्यते।'' राजा कालस्य कारणम्।। यथा राजा तथा प्रजा जैसी मान्यताएं विख्यात हैं। युगपरिवर्तन का कारण भौतिक और मानसिक प्रदूषण है। यह बात चरकसंहिता, धर्मग्रंथों तथा विज्ञान से प्रमाणित है। शुंभ-निशुंभ, रावण, बेन जैसे राजाओं के मारे जाने के बाद आकाश और दिशाएं निर्मल हो गईं, नदियां स्वच्छ हो गईं आदि लक्षणों से प्रकृति प्रदूषण से मुक्त हो गई, ब्राह्मण, संत, और सन्मार्गी सुखी हो गये ,ऐसी बातें लिखी हैं। युगपरिवर्तन तत्काल भी हो सकता है। मानसिक प्रदूषण ही भौतिक बन जाता है।

पृथ्वी, जल और अग्नि तथा जल और अग्नि को प्रभावित करने वाली चंद्र और सूर्य की किरणों के प्रदूषित होने, से एकदेशीय प्रदूषण होता है। तब उसी देश में बुरा युग आता है। वायु की सर्वत्र गति है और आकाश व्यापक है। इनमें प्रदूषण से पूरे विश्व में अनिष्टकारी युगपरिवर्तन होता है। भारत में सर्वांगीण प्रदूषण है।तन, मन, धन, जन आदि की बतों से सत्य, न्याय आदि की बातें उपेक्षित हैं। यहां कलि का पूर्ण प्रकोप है। विश्व भर में, कहीं कम कहीं अधिक, प्रदूषण की समस्या है, और बढ़ रही है। इसे रोकने का उपाय होना अत्यावश्यक है।

तुलसीदास ने कलि के प्रभाव को रोकने के लिए, 'भजिय राम सब काम विहाई' जैसे संदेशों से, भगवान के नाम और उनकी शरण को ही उपाय बताया है। यह व्यक्ति के लिए हितकर हो सकता है। समाज, देश और विश्व के स्तर पर कुछ ठोस कार्यक्रम अपेक्षित हैं। गीता का कर्मयोग स्वधर्मपालन और संघर्ष की शिक्षा देकर, सुरक्षित रहने का भी ज्ञान कराता है। जाति और समाज को जीवित रहने के लिए संघर्षशील होना चाहिए। संघर्ष के लिए अस्त्र धर्मसम्मत हों तभी वह स्थाई विजय देते हैं। सदाचार, सत्य, नैतिकता आदि की शिक्षा और व्यवस्था से मानसिक प्रदूषण दूर करना प्रारंभिक कार्य है। ऐसा करने पर सभी तरह के प्रदूषण समाप्त होंगें। तब युगपरिवर्तन होगा।

## भारत में प्रजातंत्र और न्याय

भारत के इतिहास में राजतंत्र में लोकतंत्र की व्यवस्था मिलती है। तब लोकनीति का आदर था। यह धर्म का राज्य था, न्याय शीघ्र मिलता था। अब लोकतंत्र में राजतंत्र का शासन है, लोकनीति तिरस्कृत है। यह अधर्म का शासन है, न्याय दुर्लभ है। न्याय न मिलना ही अधर्म का शासन है।

लोकतंत्र बुरा नहीं है किन्तु देश-काल, समाज की उपयुक्तता और इतिहास तथा संस्कृति को दृष्टि में रखकर इसका स्वरूप न बनाने के कारण, यहां असफल है। अंग्रेजों ने जानबूझकर यहां अनुपयुक्त लोकतंत्र स्थापित कराया। यहां लगभग पचास प्रतिशत वोट पड़ते हैं। इनमें से लगभग असी प्रतिशत वोट जाति, संप्रदाय, दबाव या प्रलोभन के आधार पर डाले जाते हैं। दस प्रतिशत से भी कम निष्पक्ष वोट बचते हैं जो बहुमत के लिए नगण्य हो जाते हैं। चुने हुये लोग किसके और किस तरह के नेता होते हैं, यह स्पष्ट है। ऐसी स्थिति में उचित लोकतंत्र और न्याय दुराशामात्र हैं।

गांधी के नेतृत्व के समय में बहुमत का महत्व नहीं था। गांधी ने नेहरू का पक्ष लिया और नेताजी सुभाष को खोया, राजा जी और पटेल जैसे योग्यतर भारतीय विचार के नेताओं को पीछे ढ़केलकर, पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित नेहरु को अपना उत्तराधिकारी बनाया। व्यक्तिवाद ही प्रधान रहा। नेहरू में भी वही गुण था। आकस्मिक मृत्यु के कारण पुत्री को गद्दी नहीं दे पाये, जो बाद में पूरा हुआ। कांग्रेस अब तक परिवार और व्यक्ति का दल बना है।

कांग्रेस के पतन के बाद जितने दल बने हैं, सब में जातिवाद, संप्रदायवाद और क्षेत्रवाद में ही व्यक्तिवाद और परिवारवाद स्पष्ट हैं। जहां यह सब वाद नहीं होने की बात कही जाती है, वहां व्यक्तिवाद का नग्ननृत्य है। वहां निकट प्रतिद्वंदी भी नहीं रहने या पनपने पाता है। अपने दल में ही नहीं, विपक्षी दलों का भी विरोध समाप्त करने का हर संभव प्रयास होता है। इस तरह लोकतंत्र के बहाने राजतंत्र और तानाशाही की स्थिति बनती है। इस परिवेश में निष्पक्षता और न्याय की आशा मूर्खता है।

न्यायलय को स्वतंत्र रखना प्रजातंत्र का मौलिक गुण है। यहां ऐसा नहीं है। हमारे यहां न्यायालय मजबूर दिखाई पड़ते रहे हैं। न्यायालय उसी वाद का निर्णय कर पाता है जिसे सरकार चाहती है। चिरकाल से लंबित जन्मभूमि का मामला सरकार के चाहने पर निर्णीत हुआ। अपराधियों और अपराधी नेताओं के ऊपर दर्जनों गंभीर वाद लंबित हैं लेकिन कई दशकों में भी उनका निर्णय नहीं हो पा रहा है। सरकार के चाहने पर सप्ताह भर में जांच पूरी होते देखा जाता है।न चाहने पर समय की सीमा नहीं है। यहां के प्रजातंत्र में न्यायालय परवश हैं। साक्ष्य और जांच आख्या लेना न्यायालय के वश में होना चाहिए। विलंब करना न्याय को नकारना है। भारत में कार्यपालिका और न्यायपालिका में वर्चस्व की लड़ाई उच्चस्तर पर होना दुनिया देखती है। प्रजातंत्र को बचाने के लिए इस हालात को बदलकर, न्यायालय को स्वतंत्र करना होगा। कुछ परिवर्तन सहायक होसकते हैं।

1-अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए न्यायालय को निष्पक्ष रहना तथा अपनी सत्यनिष्ठा और निर्भय होकर स्वधर्म का पालन करने की क्षमता का प्रदर्शन करना आवश्यक है। सेवाकाल या बाद में, न्यायाधीश का आचरण प्राथमिक दृष्टि से संदिग्ध है, तो न्यायिक जांच करके दंडित किये जायें।

2-इस समय ईश्वर और सत्यनिष्ठा में विश्वास बहुत कम हो गया है। अतः साक्षी के शपथ का कोई महत्व नहीं है। मौखिक साक्ष्य की अपेक्षा तर्क और परिस्थिति को अधिक महत्व देना उचित है। साक्ष्य के कानूनों का पुनरीक्षण हो। सर्वविदित बातों को भी न्यायालय ,साक्ष्य के अभाव में, नहीं जान पाता है। ऐसे समय, स्वतः संज्ञान लेने का विशेष अधिकार भी उसे होना चाहिए।

3-जो अभियुक्त संदेह के लाभ पर पहले भी कई बार छूटे हों, उनके लिए कुछ नये नियम बनाकर उन्हें उचित दंड दिया जाय।

4-वादों की श्रेणी बनाकर, उसके अनुसार उनमें जांच और उनका निर्णय करने की तर्कसंगत अवधि निर्धारित की जाय।बयान बदलने के लिए दबाव और साक्ष्य गायब करने के प्रयास को रोकने के लिए शीघ्र निर्णय लेना भी उपाय है। प्राथमिक रिपोर्ट और बयान को अधिक महत्व देना भी कारगर होगा।

5-प्रजातांत्रिक व्यवस्था को राजतंत्र और तानाशाही के रूप में बदलने से बचाने के लिए शासन के प्रभावशाली अंग,चुनाव आयोग, ईडी, सीबीआई, आयकर आदि तथा मंत्रियों के आचरण संबधी वादों को प्राथमिकता से निपटाने के नियम होने चाहिए। यह सब नियम न्यायपालिका स्वयं बनाये जिससे वह भी संयमित रूप से कार्य करने को बाध्य रहे। अब न्यायपालिका से ही कुछ आशा की जा सकती है।

गुलामी की मानसिकता से मुक्त होने तक भारतीय समाज को संघर्ष करना पड़ेगा। उपयुक्त संवैधानिक व्यवस्था होने पर ही लोकतंत्र और न्याय की प्रतिष्ठा होगी।

## ( 78 )

## भारत में गुलामी की मानसिकता

एक बार स्वामी रामतीर्थ अमेरिका में भारतीय दर्शन और आध्यात्मिक ज्ञान पर व्याख्यान दे रहे थे। एक व्यक्ति ने पूछा कि क्या यही ज्ञान भारत की गुलामी का कारण है? स्वामी जी उचित उत्तर नहीं दे सके। भारत आकर सन्यासी हो गये। यह प्रश्न प्रत्येक चिंतक केलिए पहेली है। पहेली को बूझने का एक प्रयास यह भी है।

हम वर्तमान से व्यथित और निराश होकर, भूतकाल की चर्चा से गौरवान्वित होते हैं। कहा है -

थोथे बादल क्वार के ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये करहिं पाछली बात।।

जगद्गुरु होने की पिछली बात करते हैं किन्तु उस समय के सद्गुणों का आदर नहीं करते हैं। यही नहीं प्राचीन परंपराओं, मूल्यों और व्यवस्था को ही वर्तमान दुर्दशा का कारण मानते हैं, उनका विरोध करते हैं। कथनी और करनी में विरोध हमें हास्यास्पद बनाता है।

गुलामी के कारण को जानने में प्राचीन काल से लेकर अबतक के इतिहास का ज्ञान सहायक है।यहां वर्णाश्रम व्यवस्था थी। ब्राह्मण इस व्यवस्था का मेरुदंड था। तपस्या और त्याग के द्वारा प्रबल क्षत्रियों को पैदा करना ब्राह्मण का काम

था। यज्ञ यागादि ही नहीं अस्त्र शस्त्र का निर्माण और ज्ञान देना भी ब्राह्मण ही करते थे। रामायण से लेकर महाभारतकाल तक का इतिहास इसका साक्षी है। सभी राजकुमार ब्राह्मणों से ही आस्त्रज्ञान पाये थे। ये ब्राह्मण अपराजेय होने पर भी कभी राजा बनने के इच्छुक नहीं हुये। जीतने पर परशुराम सब दान दे देते थे।द्रोणाचार्य द्रुपद का आधा राज्य छीनने के बाद भी राजा नहीं बने। ब्राह्मण ही सशक्त क्षत्री, ईमानदार वैश्य और कुशल शूद्र बनाते थे। ब्राह्मण और क्षत्री मिलकर अग्नि और वायु के योग की तरह अपराजेय राष्ट्र और सुखी समाज की व्यवस्था करते थे। इस अवस्था तक ,यहां गुलामी की गंध भी नहीं थी। सभी भारत के गुलाम थे। आवश्यक होने पर ब्राह्मण अमोघ अस्त्र बनाते थे। अण्वास्त्र भी बनाना उनके लिए संभव था।

महाभारत युद्ध में हिंसा को देखकर, और इसके लिए ब्राह्मण को उत्तरदायी मानते हुये, भारत में ब्राह्मण विरोधी युग का आरंभ महाभारत के कुछ काल बाद आरंभ हुआ। जैन और बौद्ध धर्म ब्राह्मणवादी व्यवस्था के धुर विरोधी पैदा हुए।चाणक्य ने, जातिव्यवस्था नहीं वर्णव्यवस्था के आधार पर, क्षत्री पैदा करके मौर्यवंश का शासन चलाया।वर्ण के निर्धारण में संदेह होने पर ही जाति को आधार बनाया जाता था अन्यथा वर्ण ही व्यवस्था का आधार था। तब तक प्राचीन व्यवस्था बची थी। बाद में, राजाश्रय पाकर बौद्ध धर्म ने, अहिंसावादी नीति का प्रचार किया। भारत के गुलामी का बीजारोपण और संवर्धन इसी समय हुआ। यही विशवृक्ष अनेक समस्याओं का कारण बना।

बौद्धों में अहिंसावाद के साथ पाखंड व दुराचार का भी प्रवेश होने के कारण राजा और समाज दोनों निर्बल हो गये। फलतः बाह्य आक्रमण आरंभ हुये। मजबूर होकर, शुंगवंश के ब्राह्मण ने राजसत्ता छीन लिया। ब्राह्मण पहली बार राजा हुआ। इसके साथ ही ब्राह्मण और क्षत्री का परस्पर विरोध और प्रबल होने लगा। न ब्राह्मण रह गये न ही क्षत्री। बौद्ध धर्म ने दोनों को निर्बल बनाया। इस लड़ाई ने भारतीय संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था की रीढ़ तोड़ दिया। गुलामी का रास्ता पूरी तरह खुल गया। समस्या बढ़ती गई।

धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक उठा-पटक मे कई सदियों बाद आचार्य शंकर का जन्म हुआ। उन्होंने अपनी संस्कृति, धर्म और दर्शन के मूल को समझने के लिए ग्रंथ लिखा और एक संगठन द्वारा किला बनाकर उसमें सुरक्षित

करदिया। यह किलेबंदी, पन्द्रह सौ वर्ष वाद, अब भी बहुत कुछ बची है।

इसके बाद में निःशक्त समाज में भक्तिकाल का आगमन हुआ। लोग अपने नाम के साथ दास शब्द को जोड़कर स्वयं को गुलाम घोषित करना आरंभ किया। सामाजिक चिंतन छोड़कर अपने में संतुष्ट रहने की परंपरा चल पड़ी। विदेशियों का शासन पूरे देश पर हो गया। बहुत कम लोग ही स्वतंत्र और सामाजिक चिंतक होने लगे। लंबी अवधि में गुलामी की मानसिकता दृढ़ हो गई है।

अब अंधभक्ति का प्रकोप है। इससे बाहर आना भी लोगों को पसंद नहीं है। महाभारत युद्ध, बौद्ध धर्म का राजाश्रय, ब्राह्मणक्षत्री कलह, कर्मकांड की उपेक्षा के साथ केवल ज्ञानकांड की प्रतिष्ठा, व्यक्तिवादी भक्तिमार्ग, लंबा विदेशी शासन, और अब विशिष्टता को हानिकर कहकर समानता की अंधी मांग, यह सब मिलकर भारत की गुलामी के कारण होना संगत लगता है। संस्कृति की रक्षा के लिए संघर्ष का बन्द होना गुलामी की दृढ़ता का लक्षण है। इसको जानने का लाभ तभी होगा जब समाज को रोगमुक्त करके स्वतंत्र करने का उपाय हो सके।

भारत में गुलामी की बद्धमूल मानसिकता को हटाना बड़ा कठिन है। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए प्राणपण से प्रयास करना ही पड़ेगा। सुझाव के रूप में कुछ उपाय प्रस्तुत हैं।

1-ब्राह्मण का विरोध भले किया जाय किन्तु ब्राह्मणत्व का आदर हो। ब्राह्मणत्व दुर्लभ है।यह गुण किसी ब्राह्मण में हैं तो उसकी बातों का सम्मान हो। ईर्ष्या-द्वेष की दृष्टि हानिकर है। जाति विवादित हो सकती है, वर्णव्यवस्था की बात सर्वमान्य रहे। समानता का मार्ग खुला रहे किन्तु विशिष्ट होने का मार्ग भी प्रशस्त होना चाहिए।

2- ब्राह्मण स्वयं तपस्वी और त्यागी रहकर सक्षम क्षत्री पैदा करता रहाहै।ब्राह्मण और क्षत्री का परस्पर सहयोग पूरे समाज को व्यवस्थित और उन्नत बनाता है। शक्तिशाली क्षत्री को नियंत्रित रखने के लिए ब्राह्मण को शक्तिसम्पन्न रहना होगा। ब्राह्मण तपोधन होता है।निग्रह और अनुग्रह में सक्षम सौ ब्राह्मण भी राष्ट्र का उद्धार कर सकते हैं ।

3-वेदविद्या की उपासना, वैदिक यज्ञों को पुनः आरंभ करना, यज्ञ पूरी विधि से करना, वेद विहित बलिप्रथा के विषय में, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति को

मानना आदि मान्यताओं से समाज में हीन भावना का त्याग, वर्चस्व और आक्रामकता का संचार करने वाले कार्यक्रम करना उपादेय हैं। कर्मकांड के बिना ज्ञानकांड निःशक्त है। कुछ लोगों का ही कार्य पूरे राष्ट्र को संजीवनी शक्ति देता है। यज्ञ की यही विशेषता है।

4-भक्त अपने में केंद्रित होता है।उससे समाज को लाभ नहीं तो हानि भी नहीं होती है। मठ बनाकर निठल्लों का आश्रय बनाने पर ही उससे हानि संभव है।अंधभक्त बड़ा खतरनाक होता है। जातिवाद, संप्रदायवाद और राजनैतिक दल में व्यक्ति व परिवारवाद अंधभक्त पैदा कररहे हैं। ऐसा व्यक्ति अपने अज्ञान को दूसरे पर लादने के लिए आक्रामक होजता है। वह मानसिक गुलामी का नग्न उदाहरण, मनुष्य नहीं भेंड़ की तरह होता है। ऐसे लोगों को अंधभक्ति छोड़कर कर स्वतंत्र चिंतक बनाने के लिए स्वाभिमान और तर्कशक्ति की शिक्षा प्रदान कीजाय।

5-राजाश्रय में किसी संप्रदाय के कार्यक्रम न किये जायें। मानव धर्म और भारतभूमि की मौलिक संस्कृति को सुरक्षित रखना और प्रवर्तित करना ही राजधर्म है।

इन सब कार्यों के लिए सामाजिक संघर्ष समिति और राजनैतिक संगठन बनाना आवश्यक है। सक्रियता बनाये रखने के लिए समाज के नायकों को विदुरनीति (महाभारत) की यह शिक्षा स्मरणीय है। ''जैसे, बिल में बैठे जन्तु को सांप निगल जाता है उसी तरह प्रताप का प्रदर्शन न करने वाले राजा और भ्रमण न करने वाले ब्राह्मण की प्रतिभा को भूमि ही निगल जाती है।'' संदर्भित श्लोक -

द्वाविमौ ग्रसते भूमिःसर्पः बिलशयानिव।
राजानमविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्।।

## ( 79 )

## सत्यमेव जयते

आचार्य शंकर ने लिखा है – 'सत्यानृते मिथुनीकृत्य नैसर्गकोऽयं लोकव्यवहारः।' अर्थात लोकव्यवहार सत्य और असत्य दोनों का सम्मिश्रण करके चलने वाली स्वाभाविक प्रक्रिया है।

मुण्डकोपनिषद् में है – 'सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पंथा विततो देवयानः।' अर्थात सत्य ही सिद्धि (विजय) देता है, असत्य नहीं। सत्य की उपासना से ही सत्यलोक तक पहुंचने का देवयान मार्ग प्रशस्त होता है।

प्रस्तुत किये गये दोनों वाक्य परम विश्वासनीय हैं। एक में सत्य के साथ असत्य का भी प्रचलन स्वाभाविक बताया है। यह मिश्रित फलवाला, आवागमन का मार्ग है। दूसरे में केवल सत्य को ही सहायक बताया है। यह अनन्त तक पहुंचने का मुक्तिमार्ग है। सत्य दोनों मार्गों केलिए अनिवार्य है।केवल असत् का अस्तित्व ही नहीं है। पंडित मदन मोहन मालवीय ने स्वतंत्रता संग्राम केलिए 'सत्यमेव जयते' का नारा, कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में, दिया था। यह विजय को पवित्र, स्थाई रखने और विकासशील बनाने का मंत्र रहा है।

लोकव्यवहार में देखते हैं कि अधर्म करन ेवाले भी धर्म का ही बहाना बनाते हैं। अपने को अधार्मिक, झूठा, नकली, पाखंडी आदि कह कर कोई नहीं सफल होता है। सब जानते हैं कि विजय सत्य की ही होती है। शुद्ध असत्य नहीं टिक सकता है अतः प्रदर्शन के लिए सत्य का अंश पाखंडियों में भी होता है। देवयान मार्ग के पथिक में असत्य का अल्पांश भी नहीं होता है।

सत्यमेव जयते का अभिप्राय यह नहीं लेना चाहिए कि जो जीतता है वही सत्य पर है। तात्कालिक जीत का परिणाम और विजित की मनोदशा भी किसी विजय के साथ विचारणीय होती है। इसी आधार पर महाभारत युद्ध में कौरव और पांडव दोनों हारे हुए कहे जाते हैं। जयतु, विजयतां आदि शब्द विजय पाने या पराजित होने के बाद भी कहे जाते हैं। आशीर्वाद में भी 'जय हो' कहने का प्रचलन है। इससे स्पष्ट है कि केवल विजयी होने के लिए ही जयकार नहीं है। आगे बढ़ते रहने के लिये शुभकामना भी इसका अर्थ है। लोक में ही नहीं, साहित्य में भी जय शब्द का प्रयोग बढ़ने व स्थिर रहने के अर्थ मे बहुधा हुआ है। शब्दकोश में भी ऐसा अर्थ मिलता है।

सत्यमेव जयते का सही तात्पर्य समझना और समझाना चाहिए। सही ज्ञान होने पर ईश्वर और सत्य पर आस्था दृढ होगी। सत्य ही ईश्वर है। लोक-परलोक दोनों के लिए सत्य का विकल्प नहीं है।

## ( ८० )

## आस्तिकता के लक्षण

सनातन परंपरा में आस्तिकता का लक्षण वैदिक धर्म का पालन है। धर्म का स्रोत वेद, स्मृति, और सज्जनों का आचरण है। कहीं आचरण में विरोधाभास लगता हो तो जो अपने के लिए अनुकूल हो वही स्वीकार्य है, वही धर्म है। विद्वान, सदाचारी, रागद्वेष से रहित व शुद्ध हृदय वाले (निरहंकारी) व्यक्ति को सज्जन कहा जाता है। यह बातें मनुस्मृति के अनुसार लिखी गई हैं।। श्लोक-2/1,2/12।। लक्षणों के निर्धारण का यही आधार मानते हुए आगे विचार किया जायेगा। अपने को भारतीय संस्कृति के अनुसार आस्तिक हिंन्दू मानने वालों के ही लक्षण यहां विवेचनीय हैं।

स्मृतियों में वेद का ज्ञान, ऋषियों की अंतर्दृष्टि और आचार्यों के आचरण का समन्वित स्वरूप मिलता है। इनको जानने से धर्मशास्त्र का ज्ञान होता है। इनके द्वारा ईश्वर की सत्ता, कर्मवाद का सिद्धांत, पुनर्जन्म, देवता, ऋषि व पितर संबंधी कर्मकांड, वर्णाश्रम व्यवस्था तथा मुक्ति और बंधन के मार्गों का ज्ञान होता है। तब कुटिल मार्ग को छोड़ने तथा सत्य, नैतिकता, संतोष, क्षमा, दया, अहिंसा, संवेदनशीलता आदि सदाचार के अंगों के पालन में श्रद्धा होती है। संक्षेप में, कर्मकांड की विशिष्टता के साथ, सार्वभौमिक मानव धर्म ही वैदिक धर्म है। यही आस्तिकता के मुख्य लक्षण रहे हैं। इन लक्षणों को गौड़ करके धर्म के बाह्य कलेवर को मुख्य बनाने का प्रयास देखा जा रहा है। वर्तमान की मान्यताएं भी विवेचनीय हैं।

अब मंदिर, मेला, पर्यटन, औद्योगिकीकरण आदि को धर्म के साथ एक में जोड़कर विकास का नाम दिया जा रहा है। उपयोगितावाद और तात्कालिक प्रदर्शन की आंधी में सत्य और नैतिकता आदि धर्म और आस्तिकता के मौलिक लक्षणों का महत्व समाप्त है। भक्ति संप्रदाय के स्थूल अंगों के प्रचार से सब को अंधभक्त बनाया जा रहा है। मनुष्य को ही ईश्वर बनाकर उसके प्रति भी अंधभक्ति को आस्तिकता कही जाने लगी है। पाखंड के लिए भारतीय संस्कृति और वेद का नाम भी लिया जाता है। यह आस्तिकता नहीं घोर नास्तिकता के लक्षण हैं। इससे हिन्दू खतरे में है। धर्म एव हतो हन्ति - धर्म का नाश करने पर धर्म ही विनाशक होता है। अतः सावधान!

वैदिक धर्म और संस्कृति का स्वरूप तथा उसके अनुसार आस्तिकता के लक्षण, जो प्रारंभ में लिखे गये हैं, उनका कोई विकल्प नहीं है। मौलिक स्वरूप के साथ हिन्दू बने रहने के लिए उनका आदर और पालन अनिवार्य है।लोकनीति और राजनीति में सुधार केलिए मार्गदर्शक शास्त्र हमारे पास हैं। गुलामी की मानसिकता छोड़कर, उन शास्त्रों को पुनः प्रतिष्ठित करें। इतिहास अपने को दुहराता है। अपने को आस्तिक हिन्दू कहने और सिद्ध करने में गर्व का भाव जाग्रत होना चाहिए।

## ( 81 )

## गुलामी का तीसरा आघात

आज के लगभग एक सहस्त्र पहले तक में ही अपनी संस्कृति में क्षत्री का तेज और ब्राह्मण का वर्चस्व दुर्बल हो चुके थे। इस दुर्दशा केलिए विभिन्न आंतरिक आघात ही कारण थे। अपने देश में क्षत्रियों को एक सूत्र में बांधने केलिए, आजकल ब्राह्मणसंस्कृति कही जानेवाली भारतीय संस्कृति ही, मुख्य आधार रही है।वह संस्कृति सर्वमान्य नहीं रह गई तब क्षत्रियों के आदर्श भिन्न-भिन्न हो गये तथा जाति के आधार पर अपमान और शोषण होना व भारतीय समाज का असंगठित होना आरंभ हो गया। इसके बाद बाहरी लोगों की गुलामी के आघात आरंभ हुए। जिनमें स्थाई प्रभाव को छोड़ने वाले दो आघात प्रमुख रहे हैं।

मुसलमानों नें लूटने-पाटने तथा अपने धर्म का प्रचार करने के लिए सांप्रदायिकता के आधार पर, आक्रमण द्वारा देश को गुलाम बनाया। उनकी गुलामी के प्रभाव से देश के तीन भाग हो गये। आगे भी सांप्रदायिक समस्या प्रबल बनी है।

अंग्रेजों ने अपनी सभ्यता, वैज्ञानिकता, उच्च धार्मिकता और संस्कृति के द्वारा, उपकार का प्रदर्शन करते हुए, देश को गुलाम बनाने के लिए व्यापार को साधन बनाया। हिन्दुओं में आपसी फूट तथा देश में हिन्दू-मुसलमान की भावना पैदा करके, भेद-नीति के सहारे, वे गुलाम बनाने व आर्थिक शोषण करने में सफल हो गये। साथ ही भारत की शिक्षानीति, संस्कृति, सामाजिक संरचना, शासनप्रणाली आदि को समाप्त करने के साथ यहां के साहित्य, धर्मग्रंथ,

इतिहास, भूगोल आदि में भी यथासंभव प्रक्षेप और परिवर्तन किया। भेदनीति के प्रभाव से हमारे बड़े बड़े कवि उनको विधाता मानने लगे तथा सर्वमान्य नेता ही उनके दलाल बन गये। स्वतंत्रता केलिए बलिदानियों को देशद्रोही बताना आरंभ हो गया। इसके परिणाम से देश का विभाजन हुआ। प्रभाव यहां तक है कि उनके जाने के पचहत्तर वर्ष बाद भी हमारा समाज उन्हीं के अनुकरण की ओर बढ़ रहा है।

गुलामी के उपर्युक्त दोनों आघात समाज व देश के लिए नासूर बने हैं। तब तक तीसरे आघात के भी लक्षण प्रगट हो चुके हैं। जिन कारणों से हम गुलामी झेलते रहे हैं, वे अब भी हैं। उनके अतिरिक्त नए कारण भी उत्पन्न हो गये हैं। हमारे यहां गांधी के समय में भी व्यक्तिवाद था। उनके बाद नेहरू का समय तथा उनसे पैदा हुआ नवीन गांधीयुग भी व्यक्तिवादी रहा है। इन समयों में विरोधी भी रहे हैं। विपक्ष की आवाज समाप्त नहीं हुई थी। अब नया युग चल पड़ा है जिसमें विपक्ष को सुनने के बजाय उसे समर्थन करने, मौन रहने या दंडित करने की व्यवस्था की जा रही है। व्यक्तिवाद प्रबलतर हो चला है। देश या विदेश से सम्मान का पात्र एक ही व्यक्ति होना बुरा है। इसके लिए विशेष प्रयास किया जाना अंधेर है। ऐसी ही स्थिति में तानाशाह पैदा होते हैं। वर्तमान वैश्विक स्थिति में, प्रत्येक विकसित देश में सक्षम विपक्ष है। वहां कोई व्यक्ति नहीं देश ही सम्मान का पात्र है। वैश्विक स्तर का नेता बनने के लिए देश को बेचने या हानि पहुंचाने वाला वहां नहीं पैदा हो सकता है। लेकिन भारत में एक व्यक्ति वैश्विक स्तर का नेता बनने के लिए देश को किसी स्तर तक की क्षति करने में स्वतंत्र हो सकता है। व्यक्ति नहीं, चुनाव में पार्टी की नीति का प्रचार होना चाहिए। महत्वाकांक्षी व्यक्ति अपने दल के भी निकट प्रतिद्वंदी की हत्या या राजनैतिक हत्या करा सकता है। अतः व्यक्तिवाद घातक है। हमारे यहां लोकनीति को राजनीति ने ग्रस लिया है। अतः विरोध करनेवाला कोई नहीं है। इस समय चीन का भय तथा उससे बचने का उपाय दिखाकर, देश को आर्थिक रूप मे पराधीन करने व नई गुलामी के आघात की संभावना स्पष्ट है। पाश्चात्य देश हमारी कमजोरी को अच्छी तरह जानते हैं। वे, सम्मान देकर, हमारे नेता और कलाकार को ही अपना समर्थक बनाते रहे हैं। नई गुलामी भी पाश्चात्य देशों की कूटनीति और हमारी दृढ़ गुलामी की मानसिकता का ही परिणाम होगी। इस आघात से बचने का प्रयास करना देशप्रेमियों का कर्तव्य है।

गुलामी के बढ़ते हुए स्वरूपों के निवारण के लिए जो कारगर उपाय हैं उनमें भारतीय संस्कृति की रक्षा प्रमुख है। इस संस्कृति का विरोध करना एक सुनियोजित दुरभिसंधि है। यह षडयंत्र हमारी स्वतंत्रता के पहले से आरंभ है और इसका प्रभाव बढ़ता जारहा है। ब्राह्मण और उसकी कही जाने वाली संस्कृति ही हिन्दू को धर्म परिवर्तन से बचाती रही। यह बात मुसलमान और अंग्रेज भी मानते हैं। अतः अब ब्राह्मण के विरोध का ही अभियान चलाया गया है। इससे बचने के लिए सत्य को जानें। जातिगत विरोध नहीं होना चाहिए। राजकीय और सार्वजनिक क्षेत्र में जाति से पहचान बंद करना चाहिए। केवल वर्णव्यवस्था के द्वारा संस्कृति की सुरक्षा की जाय। सामाजिक व्यवहार को स्वतंत्र रखा जाय। इस उपाय से तथा शिक्षा द्वारा गुलामी के पुराने प्रभावों को समाप्त करने के बाद ही आसन्न आर्थिक गुलामी के आघात से बचने के उपाय सफल होंगे।

आर्थिक क्षेत्र में देश की नीति निर्धारण करना विशेषज्ञों का कार्य है। दलगत भेद छोड़कर, डा. मनमोहन सिंह आदि विशेषज्ञों की राय को महत्व देना देशहित में है।कुछ स्थापित सिद्धांतों को भी मानना पड़ेगा।

1-बिना उचित कारण के, दान, सम्मान, सस्ता या मुफ्त सामान मिलनेवाले अवसर पर सतर्क रहें। बदले में भारी मूल्य देना पड़ता है। व्यक्तिवाद से यह खतरा और बढ़ता है। भूमि पर बिखरे अन्न को खाने पर जाल में कबूतरों के फंसने का किस्सा प्रसिद्ध है। अतः मुख्य रूप से अमेरिका, यूरोप, यूएनओ और वर्ल्डबैंक से विशेष सावधानी अपेक्षित है।

2-आजकल विकास ही बेरोजगारी और महंगाई का पर्याय बनगया है। अतः विकास की आंधी नहीं रोजगार, लघुउद्योग आदि के द्वारा नवयुवकों को काम देने को प्राथमिकता दी जाय। उन्हें मुफ्त में कुछ न देकर, उनके उत्पाद पर छूट द्वारा उसे सस्ता किया जाय। स्वदेशी की भावना का आदर हो। डिजिटल नहीं, फिजिकल को अवसर रहे, पश्चिम ही नहीं पूरब को विशेष महत्व दें, योग की अपेक्षा क्षेम को प्राथमिकता दें, प्रदर्शन नहीं वास्तविकता को आधार बनायें। ऐसी मौलिक मान्यताओं का आदर होना चाहिए।

3-यूज एंड थ्रो अमेरिकी नीति है। मरम्मत करके प्रयोग से रोजगार, पर्यावरण सुरक्षा आदि कई लाभ हैं।

4-प्रतिभा और युवाशक्ति का पलायन रोककर उनसे अपनी शक्ति व गुणवत्ता बढ़ायें।

5- विदेशी कर्ज लेकर विकास का प्रदर्शन घातक है। अत्यावश्यक स्थिति में विशेषज्ञ की राय लें।

6-कर्ज देकर माफ न करें। उसे वसूली योग्य न रह जाने पर उत्तरदायित्व निर्धारित हो।

7-स्वदेशी पूंजीपतियों को विदेश में कार्य आरंभ करने पर विशेष सतर्कता के नियम हों।

8-भ्रष्टाचार से कालाधन बढ़ता है। इसके लिए ऊपरी स्तर पर अंकुश लगाना परमावश्यक है।यद्यपि यह बात चोर के द्वारा चोर पकड़ने जैसी है। सरकारी कर्मचारी पर अंकुश लगना आसान है। उससे खतरा नहीं उत्पन्न नहीं होता है। इस तरह की और भी सावधानियां करनी पड़ सकती हैं।

देश को गुलामी के नये आघात से बचाने के लिए आवश्यक है कि हम मिथ्या प्रचार की प्रवंचना में न पड़ें। यह स्वीकार किया जाय कि संकट की संभावना प्रबल है। सत्य को स्वीकार करना व असत्यवादियों को नकारना आवश्यक है। तभी उपर्युक्त उपाय तथा विशेषज्ञों की सम्मति मानने से देश गुलामी की मानसिकता से मुक्त होकर, आत्मनिर्भर व पुरानी प्रतिष्ठा का पात्र हो सकता है।

## ( 82 )

## गुरुतत्व

समर्थ गुरु वही है जिसको आत्मसमर्पण करके कृतकृत्य हो सकें। शंकास्पद गुरु से दूर रहें। स्वयं असिद्धः कथं परान् साधयति। अतः,

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।

यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते।।

वन्दे शिवं गुरुं साक्षात् दक्षिणामूर्तिरूपिणम्।

सृष्टिस्थितिलयाः तूर्यः यस्मिन् स्वाभाविकी गतिः।।

जो कुटिल को सरल करदे ऐसे गुरु से कुछ मांगना उसके ऊपर शंका करना है। सन्निधि बनाये रखना ही उसकी कल्याणकारी उपासना है। मानसिक और हृदयगत सन्निधि सद्यः फलवती होसकती है। तथास्तु।

## ( 83 )

## अहंकार/स्वाभिमान

अहंकार ही जगत प्रपंच का मेरुदंड है।इसीसे रागद्वेष आदि का जंजाल फैलता है।इसका सदुपयोग और दुरुपयोग दोनो होता है।अहंकार तीन तरह का होता है - सात्विक, राजस और तामस। परिष्कृत रूप में, सात्विक अहंकार ही स्वाभिमान है। यह अहंकार को तुरीय (चतुर्थ) भाव में पहुंचाकर उसे समाप्त करते हुये, जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।यह त्याग, तपस्या, सत्यनिष्ठा, धर्मरक्षा आदि उच्च मूल्यों के आधार स्थिर होता है। राजस अहंकार अर्थ और काम की प्राप्ति पर तथा तामस अहंकार अन्याय, अधर्म, पाप कर्मों में सफलता पर आधारित होता है। सात्विक स्वरूप मुक्ति का मार्ग है, राजस चिंता व सुख-दुख के बंधन का और तामस मोहांधकार में पतन का हेतु है।

राणा प्रताप कुलधर्म की रक्षा में कष्ट उठाये। मानसिंह ने कुलधर्म को नष्ट करके सुख भोगा। दोनों अपने अहंकार में संतुष्ट थे। इतिहास में राणा को स्वाभिमानी और मानसिंह को गुलाम, पतित व दुरभिमानी माना गया। अन्याय व अधर्म करके या अर्थ और काम में ही लिप्त रहने पर स्वाभिमान सुरक्षित रखना असंभव है। स्वाभिमान की सुरक्षा और सद्गति केलिए ही ब्राह्मण निर्धनता का वरण स्वयं करते हुये, परोपकार और सन्मार्ग पर दृढ़ रहता था। तुलसीदास -

संभावित कहं अपजस लाहू। कोटि मरन सम दारुन दाहू।।

इसी को गीता में लिखा - संभावितस्य चाकीर्तिः मरणादतिरिच्यते।

निष्कर्षतः, स्वतंत्र रहने, संतुष्ट रहने, निर्भय रहने, सुयश द्वारा इतिहास में अमर रहने, स्व को व्यापक बनाकर सर्वात्मभूत होने तथा अहंकार को विगलित करके, अबाध ज्ञान द्वारा, जगत प्रपंच से मुक्त होने के लिए स्वाभिमान महौषधि, अमृत है।

## ( 84 )

## शहीदों को श्रद्धांजलि

एक समय था जब देश के लिए शहीद होने को आबालवृद्ध उतावले हो गये थे। हजारों की संख्या में सहर्ष आत्मोत्सर्ग करने वाले पैदा हुए। आज, देश का महत्व ही नहीं रह गया। बलिदान तो दूर, सत्ता व अन्यात के विरुद्ध बोलने वाले समाप्त होरहे हैं। केवल सत्ता, सम्मान, पद और धन के लिए ईमान और मानवता का बलिदान करने वाले पैदा हो रहे हैं। जिसकी लाठी उसकी भैंस की कहावत चरितार्थ हो रही है। ऐसा क्यों हो रहा है, यह विचारणीय है।

शहीदों के नाम का उपयोग सभी करते हैं। घड़ियाली आंसू के साथ श्रद्धांजलि भी दी जाती है। अब उनके प्रति तीन तरह की भावना वाले हैं। एक वे हैं जो मानते हैं कि स्वतंत्रता अहिंसावादी नरमदल वालों ने समझौता द्वारा दिलाई और शहीद लोग देशद्रोही थे। दूसरे वे हैं जो अवसरवादी और पाखंडी हैं। वे सत्ता पाने में सहायक सभी को भगवान मानने का नाटक करते हैं। तीसरे, वे लोग हैं जो उन बलिदनियों के प्रति वास्तविक श्रद्धा रखते हैं।स्वतंत्र भारत में, किसी न किसी कारण से श्रद्धांजलि सभी तरह के लोग देते हैं। इस स्थिति के परिप्रेक्ष्य में कुछ निर्णयात्मक तथ्य मिलते हैं।

शहदों के प्रति शंका पैदा करके, दृष्टिकोण में भेद सुनियोजित ढंग से पैदा किया गया है। यह पाश्चात्य जगत की कूटनीति का परिणाम है। इसके द्वारा अंग्रेजों के पक्षधर लोगों को सत्ता देना तथा इस देश में संघर्ष की क्षमता को हतोत्साहित करना, इन दो उद्देश्यों की पूर्ति की गई है। संघर्ष को अहितकर मान लेने का परिणाम अब भोगना पड़ रहा है। इसको पुनः अनिवार्य स्वीकार करना होगा।

'वीरभोग्या वसुंधरा' के स्थापित सिद्धांत को नहीं भूलना चाहिए। स्वतंत्रता के लिए सत्ता अंग्रेजों से छीननी पड़ी है। इसका पूरा श्रेय आजाद, शहीदे आजम, नेता जी आदि सहस्त्रों के संघर्ष और बलिदान को ही है। उनके नाम में आंसू बहा देना नकली श्रद्धांजलि है। सच्ची श्रद्धांजलि यही है कि उनके सपनों का भारत देश बनाया जाय। उनसे संघर्ष की प्रेरणा लेकर ही उन्हें श्रद्धार्पण करें।

## ( 85 )

## जाति व वर्ण की समस्या

वैदिक धर्म मे ह्रास होने तथा गुलामी के कारण भारत में जाति व वर्ण व्यवस्था विकृत हो गई थी जिससे गरीबों का शोषण होने लगा था। अब, सार्वजनिक और राजनीतिक क्षेत्र में समानता के कानून होने पर किसी का शोषण या अपमान नहीं होसकता है। तब भी जाति के आधार पर आरक्षण व संरक्षण देकर नई समस्याएं पैदा की गई हैं। पहले दलितों का शोषण हुआ, अब सवर्णों का शोषण हो रहा है जो देश की उन्नति में भी बाधक है। किसी को जाति का लाभ और उच्च वर्ण की प्रतिष्ठा, दोनों एकसाथ मिलना नहीं हो सकता है। इसे सवर्ण नहीं स्वीकार कररहा है। शोषण मुक्त न होने पर सामाजिक विघटन व प्रशासनिक समस्याएं बढ़ती रहेंगी। सवर्ण अब भी प्रबल हैं। वे संघर्ष के लिए एकत्रित होजायेंगे तो 'पुनर्मूषको भव' की बात आयेगी जो समाज व देश के लिए अहितकर होगी। इसका निदान होना चाहिये।

किसी जीव के जन्म के लिए देश, योनि, लिंग व जातिकुल सभी दैवाधीन हैं। केवल वर्ण का निर्धारण दैवी देन व मनुष्य के आकलन के मिश्रण से होता है। इन सब भेदों को छोड़ते हुए समानता की बात करना शुद्ध अद्वैत है जो व्यवहार में नहीं लिया जा सकता है। जाति के आधार पर विचार छोड़कर, केवल गुण, कर्म, स्वभाविक योग्यता और सामाजीकरण पर ध्यान देकर वर्ण का निर्धारण किया जा सकता है। सत्यकाम जाबाल, विश्वामित्र, चंद्रगुप्त आदि के उदाहरण हमारी संस्कृति में हैं। इसमें भी दैवी देन ही मुख्य होगी। सियारिन द्वारा पालित शेर के बच्चे तथा शेरिनी द्वारा पालित सियार के बच्चे के किस्से प्रसिद्ध हैं। दैवी देन को बढ़ाने में सत्कर्म और सत्संग सहायक हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर समस्या का समाधान यही है कि सार्वजनिक और राजनैतिक क्षेत्र में जाति नहीं केवल गरीबी को ही आरक्षण का आधार बनाया जाय। संरक्षण के लिए अनीति वाले कानून वापस हों। पात्रों को शिक्षा में सुविधा द्वारा स्वाभिमानी भी बनाया जाय तथा रोजगार एवं यथायोग्य आर्थिक सहायता दी जाय। सवर्णों को बाधित न करते हुये, गरीबों को योग्यता बढ़ाने की सुविधा और प्रेरणा द्वारा उन्हें योग्य लोगों के समकक्ष बनाना स्थायी निदान होगा।

सत्ता की जगह देश को प्राथमिकता देना राजनीति की शोभा है। ऐसी राजनीति ही निदान करने मे सक्षम होगी।

## ( 86 )

## राजनीति का दलदल।

अपने देश के राजनैतिक दलों का मूल्यांकन करने पर दलदल और काली कोठरी ही उपमा योग्य हैं। देश का हित साधन किसी दल का मुख्य उद्देश्य नहीं है। हित की परिभाषा में शांति-व्यवस्था, न्याय, जनता में देशहित केलिए सहभागिता की भावना तथा परस्पर सहयोग और विश्वास, देश की आर्थिक और सीमा संबंधी सुरक्षा, उत्तराधिकार में मिली संस्कृति का आदर होना आदि हैं। इन लक्षणों का सर्वथा अभाव हो गया है। संस्कृति का स्थान पर्यटन संस्कृति ले रही है। केदारनाथ मंदिर के सामने ही प्रेमी-युगल अपनी मनोकामना पूरी करते देखे जा रहे हैं। अन्यत्र भी प्रत्यक्ष है।

इस समय देश में भारतीय स्तर के दो दल हैं। प्रथम दल पाश्चात्य संस्कृति का पोषक तथा सांप्रदायिक समस्या को उत्पन्न करने वाले के रूप में प्रसिद्ध है। द्वितीय दल संप्रदायवाद के सहारे स्थापित और उसके द्वारा सत्ता में रहने के लिए विख्यात है। अन्य दल जातिवाद, क्षेत्रवाद, व्यक्तिवाद, भाषावाद जैसे संकीर्ण सिद्धांतो पर आधारित हैं। कुछ व्यापक दृष्टि रखने का भी प्रदर्शन करने वाले पैदा होरहे हैं किंतु उनमें भी गुलामी की मानसिकता है तथा समाज की आकांक्षाओं की पूर्ति एवं सांस्कृतिक पक्ष के संरक्षण की व्यवस्था का अभाव है। भ्रष्टाचार व अत्याचार सभी दलों में इतने व्यापक हैं कि सक्रिय राजनीति में केवल स्वार्थसाधक ही जाने का साहस कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में समाज, संस्कृति और देश को प्राथमिकता देने वाले एक राजनैतिक दल की आवश्यकता है। यह कार्य राजनीति में प्रवेश करने वाले ही नहीं सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक पक्ष के विचारकों और कार्यकर्ताओं के सम्मिलित सहयोग से भी हो सकता है।

इसी दृष्टि से एक नैतिक राजनैतिक संगठन के पंजीकरण हेतु हमने प्रयास आरंभ किया। दल के उद्देश्य निर्धारित करना, उस दल का संविधान बनाना, संभावित सहयोगियों के बीच बैठकें करना, कुछ सदस्य बनाना, पैंफलेट वितरण

करना जैसे कार्यों को करने पर पाया कि लोग या तो किसी दल से बंधे हैं या हतोत्साहित होकर राजनीति से एकदम उपेक्षा रखते हैं। देशसेवा के लिए सक्रिय कार्यकर्ता मिलना कठिन है। अपने पास आर्थिक संबल है नहीं। आयु भी बयासी के आगे है। फिर भी इस कार्यक्रम को बढ़ाने के लिए कुछ योजना है।

सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अभिरुचि रखने वाले साथी लोग भी जानते हैं कि अनुकूल राजनैतिक परिवर्तन के बिना कोई योजना नहीं सफल होगी। वे स्वयं राजनीति में न आकर, अभीष्ट नये संगठन को सहायता देसकते हैं। यदि आर्थिक रूप में समर्थ हैं तो धन और सम्मति देकर भी देशहित कर सकते हैं। मैं स्वयं यथासंभव व्यय करता ही हूं। शारीरक रूप से स्वयं नहीं, नवयुवकों को तैयार करके, यह कार्यक्रम बढ़ाया जा सकता है। नीति निर्धारण और अनुशासन की विशेष व्यवस्था होगी। एक जिला से आरंभ करके प्रदेश और देश भर में संगठन स्थापित करना लक्ष्य है। दलों के दलदल से राजनीति को मुक्त करने का यही उपाय है। उद्योग करने पर ईश्वरीय सहायता भी मिलेगी।

साथियों की सम्मति की आशा में संदेश प्रसारित किया जा रहा है।

## ( 87 )

## वाद/ विवाद

सुविचारित, तर्कसम्मत एवं व्यवहार में परीक्षित सिद्धांत को वाद कहते हैं। एक ही विषय पर कई तरह के वाद उपस्थित होने पर विवाद जैसी स्थिति आती है किन्तु उनका समन्वय हो जाने पर तत्वज्ञान होता है। 'वादेवादे जायते तत्वबोधः'। तत्वान्वेषण के लिए विवाद करना भी उचित है। इसी से योग्यता और उपयोगिता का सत्यापन होता है। केवल विरोध के लिए विवाद उत्पन्न करना अनुचित है।

योग्यता और उपयोगिता के होने पर जातिवाद, वर्णव्यवस्था, परिवारवाद, मनुवाद, कर्मवाद आदि में से कोई भी बुरा नहीं है। दोष पैदा होने पर इनका संशोधन किया जा सकता है जिसके लिए विवाद उचित है। संशोधन संभव हैं। अपने देश की परंपराओं में इनका विकल्प ढूंढना अत्यंत कठिन है। विकल्प के अभाव में समाज निराधार हो जायेगा। केवल विवाद द्वारा इनके समापन की बात करना पूर्वाग्रह का परिणाम है जो भयंकर रूप से अनिष्टकारी है।

व्यक्तिवाद भी एक वाद है जो परिवार से लेकर देश के स्तर तक पाया जाता है। व्यक्ति को मुखिया के रूप में बताते हुये कहा है -

मुखिया मुख सम चाहिए, खानपान में एक।
पालेपोषे सकल अंग तुलसी सहित विवेक।।

इस तरह के व्यक्ति द्वारा चलाया गया व्यक्तिवाद भी अच्छा है। अविवेकी का व्यक्तिवाद भयावह है। विवादग्रस्त और गुलाम मानसिकता वाले देश में व्यक्तिवाद तानाशाही का रूप पकड़ता है। तब सारा भोज्य-पदार्थ सुरसा के मुंह में ही समा जाता है। विवेक और योग्यता ही यहां भी परीक्षणीय है।

वाद-विवाद की सहायता से योग्यता का निर्धारण होता है। योग्य व्यक्ति को अधिकार देना फलदायक है। अधिकार होने पर कर्तव्य भी निर्धारित होता है। अनधिकार कार्य करना अनुचित है। कार्याकार्य के ज्ञान के लिए शास्त्र को प्रमाण माना गया है। शास्त्र का तात्पर्य जानने के लिए शास्त्रार्थ में वाद-विवाद का उपयोग होता है। शुष्क विवाद करना त्याज्य है और वाद उत्पन्न करने के लिए उपयोगी है। सभी वादों का रहस्य सत्य, न्याय, विश्वास, कल्याण आदि उच्च मूल्यों में समाहित है। यही मूल्य सब वादों के लिए निकष (कसौटी) हैं।

## ( 88 )

## वृद्धावस्था की सार्थकता

इसी जीवन में स्वर्ग या नर्क का दर्शन वृद्धावस्था कराती है। अकाम, असंग। निश्चिंत, कृतकृत्य, आत्मन्नेवात्मना तुष्टः की दशा जो, संक्षेप में, ज्ञान-वैराग्य के साथ आत्मचिंतन कहा जाता है, इस लोक में स्वर्ग है। यह सदाचार व सत्संग से साध्य है। रागद्वेष, अहंकार ,लोभ आदि उलटी बातें, वृद्धावस्था तक जीवित रहने पर, नर्क का दर्शन कराती हैं। यह दुराचार और कुसंग के परिणाम हैं। जैसे आचरण से जीवनयापन होता है वैसी, स्वर्गीय या नारकीय दशा, वृद्धावस्था में बनती है। मनुष्य योनि में उत्थान और पतन की संभावनाएं बहुत होती हैं। अतः बुद्धि-विवेक का आश्रय नहीं लिया तो मरने पर पशु-पक्षी से भी बुरी गति होती है। जो शास्त्रों में लिखी इन बातों को विश्वास करने वाले नहीं हैं, प्रत्यक्ष देखकर उन्हें भी मानना ही पड़ेगा।

वृद्धावस्था में रोग, वियोग, असहाय होना, अपमान आदि का भय सभी तरह के व्यक्तियों को होता है। इन्हें भोगने की मानसिकता में अंतर होता है। विवेकी पुरुष इसे कर्मगति जानकर, प्रायश्चित की भावना से सहन करते हुए निर्मल हो जाता है। अविवेकी दूसरे को या ईश्वर को ही दोषारोपित करके कुढ़ता है। अपनी गलती को न समझने वाले पापिष्ट का रोग बढ़कर असाध्य हो जाता है।

समर्थ रहने की अवस्था में ही वृद्धावस्था की तैयारी करना दूरदृष्टि है। पेंशन बन्द होने पर वृद्धावस्था के लिए व्यवस्था आवश्यक हो गई है। आज की शिक्षा और परिस्थिति में पुत्र से भी आशा कम है। आत्मनिर्भर व्यक्ति, काव्यशास्त्र या स्वांतःसुखाय मनोरंजन आदि में सुखी जीवन बिता सकता है। यदि आत्मनिर्भर रहने की व्यवस्था नहीं हो सके तो वृद्धाश्रम, एकांत, अनाथालय आदि के लिए तैयार रहने पर सुख और दुख में भेद समाप्त हो सकता है। क्षमा और सहनशीलता दुख रोकने के कवच हैं। यह एक जीवन के साधक के लिए ही संभव है।

मनोकामनाओं का अन्त नहीं है। 'मनोरथानामगतिर्न विद्यते'। वृद्धावस्था में आयु, बल, धन, सहायक आदि का आकलन करके कार्यारंभ हो। जैसे कच्छप अपने अंगों को समेटकर पिंड बन जाता है उसी तरह मनोरथों का संवरण करके मन को एक तत्व में प्रवेश कराने पर सभी कर्तव्य समाप्त हो जाते हैं। यदि कार्य आरंभ हो चुका है तो, असमर्थ होते समय, बाणभट्ट की तरह, उत्तराधिकारी की व्यवस्था करके आरंभ किये गये कार्य को पूरा कराने का प्रयास करना उचित है।

सफल वार्धक्य हेतु ही 'जीवेम शरदः शतम्' की कामना वेदविहित है। सर्वारंभ परित्यागी होने के लिए सन्यास की व्यवस्था है। मृत्युकाल में अपने सत्कर्मों का स्मरण सुखद हो इसीलिए ईशोपनिषद् में 'क्रतोस्मर कृतंस्मर' के संकल्प से उत्पन्न आत्मविश्वास के साथ अंतिम मंत्र में कामना है कि —

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।।

इसमें भस्मसात करनेवाले अग्नि देवता से प्रार्थना है कि - हे देव आप सर्वज्ञ हैं। हमारे कष्टकर पापों को जलाते हुये, सत्कर्मों के फलस्वरूप, आवागमन से रहित सन्मार्ग (मुक्ति मार्ग) पर ले चलें।

व्यवहार और शास्त्र दोनों के विवेचन से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि सदाचार, सन्मार्ग, विवेक आदि से आरंभ करके अपने जीवन का उच्चतम मूल्य निश्चित करना एक स्तर की उपलब्धि है। वृद्धावस्था में उसी निश्चय को दृढ़ करना दूसरा स्तर है। अगले जन्म में उच्चतर स्थिति को पाने या वर्तमान को सुरक्षित रखने में वृद्धावस्था की सार्थकता है। अतः, सुखद हो या दुखद, पूर्णायु होना भाग्य की बात है।

## ( 89 )

## राम मंदिर--औचित्य का निर्णय

अयोध्या में बन रहे विशाल राममंदिर में प्राण-प्रतिष्ठा किसे करना उचित है, यह गंभीर विचार का विषय है। राजनैतिक लाभ के लिए, राजकीय प्रयास से या पर्यटनस्थ के उद्देश्य से निर्माण हो रहा हो, तो प्रधानमंत्री को सम्मान लेने का औचित्य है। संतों के पांच सौ वर्ष के संघर्ष और सहस्त्रों के बलिदान का फल मानते हुए, और धार्मिक उद्देश्य से निर्माण है तो वरिष्ट संत को प्राण-प्रतिष्ठा करना उचित है। स्वतंत्रता संग्राम में बलिदानों की उपेक्षा करके राजनीतिज्ञ लोग मनमानी सत्ता-सुख ले रहे हैं। जन्मभूमि के बलिदानों की भी वही हालत न हो जाय। संतों की परंपरा किसी तरह जीवित है। उनके द्वारा राजनेता से किया गया आग्रह राजनैतिक प्रभाव से है। उनका आग्रह होने पर भी, औचित्य की रक्षा हेतु, अन्य कोई यह कार्य न करे। मर्यादा का उल्लंघन विनाशकारी सुनामी बन सकती है। अनधिकार कार्य या मर्यादा का उल्लंघन सब जगह हो रहा है, किन्तु धार्मिक आस्था के क्षेत्र में यह विशेष अनिष्टकारी है। औचित्य परीक्षण करने केलिए यह संदेश प्रसारित है। इस प्रस्ताव पर राय देने के लिए अंधभक्तों की बुद्धि कुंठित होचुकी है। अतः, धर्मप्राण भक्तों, चिंतकों और संतों को निर्भय होकर सम्मति देने का आग्रह है।

सचिव वैद गुरु तीन,प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीन कर होइ वेगिही नास।

## ( 90 )

## गुलामी के कारणों में वृद्धि

इतिहास में मुगलों और अंग्रेजों से हारने के लिए आपसी फूट, सामाजिक मानसिकता में देशहित और स्वभिमान का अभाव, व्यक्तिनिष्ट धर्माचरण, अपनी मौलिक संस्कृति का विस्मरण, विरोध करने के लिए मनोबल का अभाव आदि कारण जानने पर ऐसा लगता था कि अब हम जग जायेंगे और भविष्य सुरक्षित है। अच्छी शिक्षा और सुशासन से भविष्य में समाज को गुलामी की मानसिकता से मुक्त कर लेंगे। किन्तु देखने में आ रहा है कि वे पुराने कारण कई गुना बढ़ गये हैं। समाज में फूट डालकर सत्ता लेने के अंग्रेजी हथकंडे की नकल ऐसी होरही है कि समाज जाति और संप्रदाय के सैकड़ों दलों मे विभक्त होगया है।धर्म के रहस्य का अनादर और भ्रष्टाचार, असत्य, अनीति आदि ने देश को भी राजनीतिज्ञों के स्वार्थ सिद्धि का साधन बना दिया है। महाभारत में है कि देश ही नहीं पूरे विश्व की संपदा और सुन्दरियां अति महत्वाकांक्षी के लिए अपर्याप्त है। अतः संयमन का उपाय आवश्यक है।

यह कार्य समाज को जाग्रत करने पर ही होगा। आसन्न विभीषिका से अवगत कराने पर जागरण होगा। राजनीति में अंधभक्ति का निवारण तथा उचित हस्तक्षेप के साथ, समाज को वर्तमान राजनीति का बहिष्कार करना होगा। योग की अपेक्षा क्षेम को अधिक महत्व देना होगा। धार्मिक क्षेत्र में अंधभक्ति से मुक्ति और सदाचार का पाठ पढ़ाना प्राथमिक कार्य है। संपूर्ण क्रांति का शंखनाद ही उपाय रहगया है। नैतिकता की शिक्षा के द्वारा नवयुवकों में यह चेतना उत्पन्न होने पर युग परिवर्तन अवश्यंभावी है।

## ( 91 )

## उघरहिं अंत न होइ निबाहू

लखि सुवेष जगवंचक जेऊ,वेष प्रताप पूजियत तेऊ।

उघरहिं अंत न होइ निबाहू,कालनेमि जिमि रावण राहू।।

और भी -

विफल होहिं रावण सर कैसे।खल के सकल मनोरथ जैसे।।

संत तुलसी दास के ये विचार आदरणीय हैं। मायावी वेष से भी मनुष्य का पूज्य बन जाना देखा जाता है किन्तु, सत्य प्रगट होकर रहता है। छलने वाले राहु, रावण और कालनेमि का सही स्वरूप प्रगट हुआ और वे दंडित हुये तथा बदनाम हैं। दुष्टों का मनोरथ धराशायी होकर रहता है। सदाचरण और योग्यता से प्राप्त प्रतिष्ठा की स्थिरता होती है। राम कीर्ति बढ़ती जारही है। मुगल काल में मानसिंह की बड़ी प्रतिष्ठा थी। इतिहास में वह निन्दनीय है। उसके विषय में मैथिली शरण गुप्त ने लिखा - शूरत्व, बल, पौरूष, पराक्रम और रणचातुर्य भी। उस बीर के सब हा हुये, स्वाधीनता बाधक सभी।। इसी तरह, बीसवीं सदी में पाखंड से सम्मानित होने वाले भारत के नेताओं का सही स्वरूप अब उजागर होरहा है। इक्कीसवीं सदी में सुवेषधारी मायावी लोगों का चरित्र भी, शताब्दी के अंत तक विश्वविदित हो जायेगा। अच्छे और बुरे कर्मों का फल अलग-अलग मिलता है, यही कर्मवाद का नियम है। कुछ अच्छा कर देने से भारी कुकर्मों के फल समाप्त नहीं होते हैं। समय पाकर सामने आते हैं।

संत तुलसी दास ने कई स्थानों पर राम नाम की महिमा में लिखा है कि इससे सभी पाप कट जाते हैं। 'मेटत कठिन कुअंक भाल के' की मान्यता वाले संत ने भी विनय पत्रिका में स्वीकार किया है -

नाहिन नरक परत मोकंह डर यद्यपि हौं अति हारो।
यह अति त्रास दास तुलसी प्रभु नामहुं पाप न जारो।।

इसमें, अपने विश्वास पर आघात देखकर कवि की व्यथा प्रगट है। अनुभव के आधार पर हनुमान बाहुक में माना है कि 'बयो सो लुनिये' यानी जो बोया वह काटना पड़ेगा। राम चरित मानस में भी 'जो जस करइ सो तस फल चाखा' कहा गया है।

इस तरह व्यवहार तथा संतों के अनुभव दोनों बताते हैं कि कर्मवाद सत्य है। अनाचार व मिथ्याचार छिप नहीं सकते हैं। वे प्रकाशित होकर रहते हैं जिनसे, यथासमय, दंडित होना पड़ता है। पाखंड का सहारा लिए बिना असफल होने पर भी, बदनामी नहीं रहती है। अतः, 'सत्यमेव जयते' को आदर्श मानकर सन्मार्ग पर चलते रहें।

## ( 92 )

## कर्मनाशा नहीं गंगा

गंगा के नाम पर कर्मनाशा में गोता लगाने वाले राजनीतिज्ञ तो हैं ही, बहुतेरे धर्माचार्य भी उसी के घाट पर पंडागिरी कर रहे हैं। ईमानदारी की रोटी दुर्लभ है, सम्मान और प्रतिष्ठा सब की कमजोरी है, अतः जनता भी उन्हीं के पदचिह्नों पर चल रही है। नीति और नैतिकता की बात करने वाले हास्यास्पद या दंडनीय हैं। धर्म और धर्मशास्त्रों का बहिस्कार हो रहा है या उनकी भ्रष्ट व्याख्या हो रही है। किसी सदाचरी और सत्यनिष्ठ व्यक्ति या पतिव्रता स्त्री का दिखाई पड़ना रेगिस्तान में नखलिस्तान की तरह है। इस समय कलि के प्रकोप से सुरक्षित रहना और अन्य किसी की भी सहायता करना बड़ी तपस्या है। कलियुग में थोड़ा सत्कर्म भी बहुत बड़ा फल देता है। दुर्लभ वस्तु महंगी होती है। उसके लिए प्रयास करना भी पावनी गंगा में स्नान केलिए प्रयाण करना होगा।

## ( 93 )

## शिशु -पालन

बच्चे के पालन-पोषण में भावना-प्रधान और विवेक-प्रधान, दो तरह के माता-पिता देखे जाते हैं। बच्चे से भावनात्मक लगाव स्वाभाविक है। विवेक-प्रधान भी होना शिशु-पालन में कुशलता है। भावना और विवेक दोनों के साथ कुशलता पूर्वक पालन करना हितकर है। इस विषय में अनुभवी लोगों के उपदेश ध्यान देने योग्य हैं। नीचे उदाहरण प्रस्तुत हैं -

माता बैरी पिता शत्रुः येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये हंसमध्ये बको यथा।।
यदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर।
व्याधिनाश हित जननी गनइ न सो शिशुपीर।।

श्लोक में शिक्षा का महत्व बताया है। दोहा में स्वास्थ्य के रक्षा की शिक्षा है।

मोहवश बालबुद्धि को तुष्ट करके बैरी का काम नहीं करना चाहिए। मोबाइल, फास्टफूड, टीवी से बचाना, कुसंग आदि से सुरक्षा आजकल कठिन कार्य हैं। बालक का वर्तमान संवारने के लिए उसके स्वास्थ्य की रक्षा और

संस्कार के जागरण केलिये सभ्यता की शिक्षा देना सर्वोपरि महत्व की जिम्मेदारियां हैं।

बालक का भविष्य माता-पिता के हाथ में और माता-पिता का भविष्य बालक के हाथ में होता है।

## ( 94 )

## कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

ॐ इन्द्रं वर्धन्तो अप्सुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो अराव्णः।। ॠग्वेद।

ॠग्वेद के इस मंत्र में सबको श्रेष्ठ बनाने का आदेश है। ऐसा करने का उद्देश्य इन्द्र को बढ़ाना यानी पृथ्वी को स्वर्ग की तरह बनाना है। इसके लिए दैवी संपदा वाले लोगों को दुष्टों के दलन का भी आदेश इस मंत्र में है।

सब को समान बनाने की योजना वेदों में भी है किन्तु अनार्य (असंस्कृत) को आर्य (संस्कृत) बनाकर ऐसा किया जाय। समानता के लिए उलटा प्रयास आसुरी आचरण है जिसे रोकने के लिए दंड देना आवश्यक है।

आसुरी और दैवी प्रकृति के लोगों में संघर्ष प्रकृति की सनातन व्यवस्था है। इसी से संतुलन बनता है। किसी की अति होने पर प्रकृति करवट लेती है। अब आसुरी प्रकोप की अति हो रही है। परिवर्तन होना चाहिए। जनमानस में प्रवेश करके ही प्रकृति अपना शासन करती है।

इस समय प्रयास करने पर प्रकृति का भी सहयोग मिलेगा। तब विश्व को सन्मार्गगामी बनाने का प्रयास सफल हो सकता है।

## ( 95 )

## भारतीय समाज व वर्तमान शासन-एक विमर्श

लोकनीति और राजनीति दोनों के मिश्रण पर देश की स्थिति निर्भर करती है। इस समय लोकनीति के अभाव में समाज राजनीति का चरागाह बन गया है। प्रत्येक दिशा में अनेक समस्यायें उत्पन्न होरही हैं।वर्तमान सत्तादल का विकल्प नहीं रह गया है। कांग्रेस में परिवारवाद के कारण निकट भविष्य में भी संभावना कम है। आर्थिक नीति शंकास्पद दिशा में जा रही है। आन्तरिक शांति-व्यवस्था

और सामाजिक समरसता, न्याय, नैतिकता आदि का नितांत अभाव है। जंगल का राज्य कहा जा सकता है। अनेक जातीय वर्गों और मुसलमान संप्रदाय के लोगों का उपयोग देशहित में असंभव हो गया है। सांम्प्रदायिक और जातीय विवाद उत्पन्न किये जा रहे हैं। सांप्रदायिक दुष्प्रचार न करते हुए, ऐसी नीति बन सकती है जिससे उनकी शक्ति का उपयोग देशहित में होने लगे। देशहित में कोई भी कानून बने तो उसका आदर होता है किन्तु उसी को वोट का साधन बनाकर प्रचार किया जाता है तो विरोध होता है। वोट के लिए विषाक्त प्रचार करने से समस्याएं बढ़ रही हैं। इस दुर्दशा की ओर बढ़ती देश की स्थिति को सही दिशा देने के लिए उपाय होना चाहिए।

देश और प्रदेश में, वर्तमान सत्तादल के शीर्षस्थ नेताओं का आचरण ही समस्याओं का प्रधान कारण है। उनकी निन्दा के लिए यहां नहीं लिखा जा रहा है। इस समय वे व्यक्तिगत सत्ता का मोह छोड़कर अपने दल व देश का हित देखें तो उनका सहयोग माना जायेगा। देशहित के लिए उसीदल में विकल्प खोजा जा सकता है। उसी दल के अविवादित और योग्य व्यक्तियों को सत्ता देने पर सभी तरह की समस्याएं बढ़ने की जगह घटने लगेंगी।

## ( 96 )

## भक्तियोग

आध्यात्मिक साधना में भक्तियोग सरलतम मार्ग माना जाता है। इस साधना में पतन का भय नहीं रहता है। इसका आधार दृढ सदाचार, अंतःकरण की पवित्रता तथा ईश्वर के प्रति समर्पण है। ईश्वरप्रणिधान से योग-संसिद्धि होती है, यह योगशास्त्र भी कहता है। इस आधार पर आरूढ़ होकर जगत्प्रपंच को समझना और जीवन के उच्चतम मूल्य को प्राप्त करना भक्तियोग का भी लक्ष्य है। आधार के अभाव में अंधभक्ति का सेवन होने लगता है जो अधोपतन का कारण है। अतः भक्तियोग को सम्यक् जानना चाहिए।

गीता के अनुसार 'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः'। अर्थात ईश्वर को अपने से भिन्न मानकर समर्पण करना कर्मयोग की द्वैतभक्ति है। इससे ही सिद्धि मिलने पर 'तत्वमसि न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' की दृष्टि प्राप्त होती है और द्वैतभक्ति से अद्वैतभक्ति की साधना होने लगती है।भक्ति और ज्ञान

का क्रमसमुच्चय अद्वैत वेदांत की मान्यता है। इस तरह 'भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते' की मान्यता का पोषण होता है। भक्ति स्वयं मे कोई पुरुषार्थ नहीं है। यह ज्ञान प्राप्ति में सहायक है, यही गीता और अद्वैत वेदांत का मत मान्य लगता है।

भक्ति को स्वतंत्र पुरषार्थ माननेवलों के भी बहुत बड़े संप्रदाय हैं। मनुष्य ही ईश्वरत्व प्राप्त कर सकता है, यह उन्हें नहीं समझ में आता है। वे 'जनमजनम रति रामपद, यह वरदान न आन' इसी को परम पुरषार्थ मानते हैं। इसलिए 'सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं', उनका सिद्धांत है। अपने संप्रदाय के आदेश से बद्ध होने के कारण' जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई' को लिखने वाले तुलसी जैसे ज्ञानी संत भी द्वैत में ही आनंद लेते हैं।

वेदोपनिषद् आदि के तात्पर्य-निर्णय मे विवाद बना है। अपनी रुचि, क्षमता और संगति के अनुसार ही व्यक्ति अपना मार्ग निर्धारित करता है। उपास्य रूप में सर्वत्र ईश्वर को देखना द्वैतभक्ति और आत्मवत्सरवभूतेषु की भावना से सर्वत्र आत्मतत्व को देखना अद्वैतभक्ति है। एक में आवागमन है तो दूसरे में अमरत्व, द्रष्टाभाव, व्यापकता के साथ आवागमन से मुक्ति है।

**( 97 )**

## असफलता में भी शुभ

अपनी इच्छा होने के बाद ईश्वर की भी इच्छा हो जाने पर सफलता मिलती है। असफलता ईश्वर की इच्छा का परिणाम है। इसीलिए वेद में, ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि जो हम चाहते हैं उसे आप भी चाहें तथा जो हम नहीं सोच पारहे हैं वह भी आप चाहें – 'इष्णन्निषाणामुम्मऋषाण सर्वलोकम्मऋषाण'। यह प्रार्थना भी एक इच्छा है अतः सदिच्छा और संकल्प तथा उसके लिए प्रयत्न करना भी उचित है।हताश होकर, भरसक प्रयास न करना मानसिक पराजय है। पूरे प्रयत्न के बाद जो परिणाम हो उसे शिरोधार्य करें।

कभी कभी कोई प्रयत्न असफल होने पर बड़ा भारी संकट टलते देखा जाता है। इसका छोटा-बड़ा अनुभव सभी को होता है। सद्भावना से आरंभ किये गये कार्य का परिणाम शुभ ही होता है। भावना शुभ होने पर सफलता ही नहीं असफलता में भी शुभत्व है। कर्तव्य समझकर, स्वधर्म का पालन सदैव श्रेयस्कर है। अर्जुन के लिए यही उपदेश गीता में है-

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्षसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।

यही गीता का समत्वयोग है। समत्व की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर यथासमय, परम शुभ अकामता (पर वैराग्य, जीवनमुक्ति) की अवस्था प्राप्त होती है।

**( 98 )**

## भारत भाग्य विधाता

सृष्टि का रहस्य ऐसा विषय है जिस पर इदमित्थं (निश्चित रूप से) कोई बुद्धिमान आदमी नहीं कह सकता है किन्तु यह तर्कसम्मत है कि सृष्टि लावारिस नहीं है, न ही ईश्वर मनमानी रूप से इसका संचालन करता है। सृष्टि का विराट् स्वरूप पैदा करने वाले मनु-शतरूपा या प्रकृति -पुरुष के माध्यम से उनके कर्ता प्रजापति ने आरंभ में ही मनुष्य के लिए नियम बना दिया था जो गीता में निम्नवत लिखा है।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।
देवा भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।

यज्ञ के द्वारा देवताओं को संतुष्ट करने पर देवता भी हमें संतुष्ट रखेंगे। परस्पर आदान प्रदान करना यज्ञ है। यहां यज्ञ केलिए कर्म करने को ही कल्याण का मार्ग बताया है। देवता शब्द ऋषि, पितर, तथा समस्त प्राणियों का उपलक्षण है। इसीलिए गृहस्थ को नित्य पंचयज्ञ करने का विधान बनाया गया है। देवता का प्रत्यक्ष पंचभूतों, सूर्य, चन्द्र तथा भूतमात्र के माध्यम से होता है। वे अधिष्ठाता के रूप में नियामक होकर भी अप्रत्यक्ष रहते हैं। अतः दृश्य प्रकृति के तत्वों के पोषण से ही पंचयज्ञ भी होते है। हमारे धर्म धर्मशास्त्रों का यह विधान पर्यावरण की समस्या को देखने के बाद विज्ञान से भी अनुमोदित है।

वर्तमान समय में हम व्यक्ति के रूप में भारत भाग्य विधाता को खोज रहे हैं। किसी आदमी को 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' कहना गुलामी की मानसिकता है। ईश्वर को जनगणमन अधिनायक ही नहीं, भारत भाग्य विधाता मानना भी उसका

सही विशेषण नहीं है। वह सम्पूर्ण सृष्टि का संचालक है, पक्षपाती नहीं। अपने देश के राष्ट्रगान में व्यक्ति या ईश्वर की बड़ाई नहीं राष्ट्र के गौरव और स्वाभिमान का प्रदर्शन करना यथास्थान उचित है।

यह ध्रुव सत्य है कि किसी कार्य का दूरगामी परिणाम कर्ता की प्रारंभिक भावना के अनुसार होता है। भावना का ज्ञान उस व्यक्ति के जीवन के कार्यकलापों, आचार में पवित्रता, नैतिकता, कृतज्ञता, वृद्धसेवा, आचरण में पारदर्शिता आदि के अध्ययन से स्पष्ट हो सकता है। यही गीता में है -

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।।

अति महत्वाकांक्षी और अहंकारी व्यक्ति में सद्भावना दुर्लभ है। उसे नैतिकता नहीं केवल अपना लक्ष्य दिखाई पड़ता है जिसके लिए वह जघन्य अपराध भी कर सकता है। ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति भी भारत भाग्य विधाता नहीं होसकता है। सक्षम व्यक्ति अविश्वसनीय और अक्षम व्यक्ति अनुपयोगी होता है। क्षमता के साथ विश्वासनीयता दुर्लभ है। ऐसा व्यक्ति ईश्वर ही भेजता है।

सारे विकल्पों को देखते हुये निश्चित होता है कि बकरी से आशा छोड़कर घर में उपलब्ध कामधेनु की सेवा करना निरापद है। अपनी पूर्व परीक्षित अमृतौषधि ही परम विश्वासनीय लगती है। ईश्वर के आदेश का पालन करते हुए, यज्ञ की भावना से कर्म करें। सत्य और सदाचार का पालन करे। पंचयज्ञों के विधान से पर्यावरण, समस्त प्राणी तथा अप्रत्यक्ष देवताओं को तृप्त करने पर, उनके प्रसाद से हम स्वयं भारत भाग्य विधाता बन सकते हैं।

## ( 99 )

## गोदान

गाय एक सामान्य जानवर नहीं है।उसके दूध, घी, मूत्र, गोबर सभी में विशिष्ट औषधीय गुण हैं।वह पवित्र है और पावन भी है। श्रद्धापूर्वक गाय की सेवा करने से बुद्धि शुद्ध और अंतःकरण पवित्र होता है। उसके आशीर्वाद से असंभव भी संभव हो जाता है, ऐसे कई आख्यान हमारे इतिहास में हैं। मैं गोसेवक तो नहीं हो पाया किन्तु गाय में श्रद्धा और श्रद्धावान गोसेवक के प्रति

सद्भावना रखता हूं। मेरे इन विचारों को ध्यान में रखते हुये, आगे कही जाने वाली बातों के आधार पर, कोई मुझे सनातन धर्म का विरोधी न समझे।

मैंने अपने घर के कुछ वृद्ध जनों के द्वारा गोदान कराने का विचार किया। जरसी में तो हमें गोत्व की भावना अत्यंत कम है। वर्णसंकर में मौलिक गुण नहीं रह जाते हैं। अतः दूध के लिए भैंस अच्छी है। इस विचार से देशी गायें देने की योजना किया। देहात में अच्छी देशी गाय ढूंढ़ना कठिन है। शहरों में भी दोगला मिलती हैं। किसी तरह गाय की व्यवस्था होने पर उन्हें लेने वाले ब्राह्मण ढूंढ़ना अधिक कठिन है। अपने पुरोहित भी आसानी से लेने को नहीं तैयार हुये। इसका कारण सर्वविदित है। प्रत्येक गांव में पचासों गायों का झुंड मारामारा फिर रहा है। खेतों का घेराव करके फसल बचाना पड़ रहा है। गरीब लोग रात-दिन रखवाली करके फसल बचाते हैं। गायों के प्रति श्रद्धा नहीं रह गई। जो गाय बच्चा देने वाली होती है लोग उसे बांध लेते हैं और दूध न देने पर पुनः छोड़ देते हैं। समस्या बढ़ रही है। लक्ष्मी स्वरूपा गाय वर्तमान राजकीय व्यवस्था में किसानों का रक्तशोषण कर रही है। तस्करी रोकने के नाम पर पुलिस का धंधा चल रहा है। ऐसी स्थिति में गोदान लेकर कोई समस्या नहीं लेना चाहता है क्योंकि गोदान में मिली गाय को रखने की कुछ बाध्यता होती है। धार्मिक मान्यतायें बदल रही हैं। गाय ही नहीं, ब्राह्मण, गंगा, गीता सब प्रदूषित हो रहे हैं या मान लिए गये हैं। अतः समय के अनुसार शास्त्रीय मान्यता और राजकीय कानूनों में परिवर्तन आवश्यक हैं।

गाय का अपमान समाप्त करने के उपाय हैं। जनता का भावनात्मक सहयोग मात्र ही अब मिल सकता है। सरकार ही इस महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करने में सक्षम है। गोसेवा और संरक्षण का प्रदर्शन और पाखंड छोड़कर, ईमानदारी से, कारगर व्यवस्था हेतु शासन को कटिबद्ध होना पड़ेगा। शासन के पास दो विकल्प हैं। प्रथम उपाय है कि दो-तीन किलोमीटर पर एक गोसंरक्षण केन्द्र स्थापित हो। उसमें निःशुल्क गायें जमा की जा सकें। दूध देने की अवस्था में उन्हें बेचा जाय अन्यथा आजीवन वहीं रहें। सारा व्यय वहन करने के लिए महंगाई न बढ़ाकर तथाकथित विकास में कटौती की जाय। दूसरा विकल्प है कि अन्य जानवरों की भांति गोहत्या से भी प्रतिबंध समाप्त किया जाय। इसके लिए धार्मिक मान्यता में परिवर्तन माना जाय। प्रथम विकल्प धर्मसम्मत है और दूसरा अगत्या, युगानुकूल परिवर्तन है।

श्रद्धावान् गोसेवक एक ही गाय की सही सेवा करके पवित्र हो सकता है। यही श्रेयस्कर। अनेक गायें रखना व्यवसाय है। एक गाय की सविधि सेवा करने पर सुफल मिलेगा। गाय की सुरक्षा ईश्वर की कृपा से होगी। उसके प्रति श्रद्धा को सुरक्षित रक्खें। प्रत्यक्ष हानि की जगह लाभ दिखाई पड़ने पर गाय के प्रति श्रद्धा, सम्मान रहेगा और गोदान का महत्व पुनः प्रतिष्ठित होगा।

## ( 100 )

## व्यवहार हेतु शाश्वत नियम

संबंध बनाने, आदर देने, प्रशंसा करने, विश्वास करने, समर्थन करने आदि व्यवहारों के लिए शास्त्रसम्मत नियम है कि उस व्यक्ति के स्वभाव और आचरण को जाना जाय। 'अज्ञात कुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्' अर्थात् जिकका कुल और शील अज्ञात है, उससे संबंध न करें। जिसका दुष्चरित्र ज्ञात है, उसे सुनना या पढ़ना भी भ्रामक मानकर वैचारिक प्रदूषण से बचना बौद्धिक कुशलता है। कुलशील को जानने का तरीका यही है कि उसके पहले के आचरण और स्वभाव को ज्ञात करें। भूत से ही भविष्य का भी काफी ज्ञान हो जाता है। अंतर्दृष्टि संपन्न व्यक्ति इसमें अधिक सफल होता है। योगेश्वर कृष्ण अपने योगबल से दूसरे के वर्तमान ही नहीं पूर्वजन्म को भी जान लेते थे। इसी विशिष्टता के कारण वे शत्रु और मित्र का सही निर्णय करते थे। शत्रु की कमजोरी जानने पर वे सर्वत्र सफल रहे।

जिसके चरित्र की कुख्याति सार्वजनिक हो गई हो उससे संपर्क रखने वाला शंकास्पद, अंधभक्त या मूर्ख माना जाता है। आजकल संबन्धों की संख्या न्यूनतम रखना अधिक सुरक्षित है। कहा है -

उदासीन बरु रहिय गुसांईं।<br>
खल परिहरिय स्वान की नाईं।।

आज के पाखंड और झूठे प्रचार के समय में नकली माल और मूल्य अधिक आकर्षक बन रहे हैं। जीवन के हर क्षेत्र में उचित निर्णय लेने में सहायक, संबन्ध और व्यवहार में कुशलता की, शिक्षा देना और लेना बड़ा आवश्यक है। विद्यार्थियों को पंचतंत्र, हितोपदेश, नैतिक शिक्षा जैसे साहित्य द्वारा व्यवहार के शाश्वत नियमों का बोध कराना हितकर होगा।

( 101 )

## सनातन धर्म और विज्ञान

विश्व में कई धार्मिक संप्रदाय हैं।सब के स्वरूप और प्रवर्तन की विधि में भिन्नता है। धन और सेवा के बल पर ईसाई, कट्टरता के बल पर इस्लाम, अस्तित्व बचाने के लिए बुद्धि व एकता के बल पर यहूदी, गोहिंसा श्रद्धा के बल पर बौद्ध-जैन, प्रतिष्ठित गुणवत्ता के बल पर पारसी, शिन्तो व कन्फ्यूशियसवाद तथा अनोखी परंपरा वाले आदिवासियों के कई संप्रदाय वर्तमान में हैं। वैदिक धर्म इन सभी से भिन्न कोटि का है। इसकी कई शाखाएं हैं जिनमें से कुछ कट्टरपंथी भी हैं। मुख्य धारा सनातन धर्म की है जिसमें शास्त्रों में श्रद्धा के साथ ही लोकव्यवहार, शास्त्रीय तर्क तथा आत्मनिर्णय, सभी को महत्व दिया जाता है। यह वहु आयामी धर्म है। इसमें ऋषियों की दिव्यदृष्टि के साथ ही सभी सदाचरी लौकिक लोगों के विचारों को भी आदर दिया जाता है। इसका मूल आधार पूर्ण वैज्ञानिक है किन्तु सामान्य लोगों को समझाने के लिए काल्पनिक आख्यान, विश्व का बोधगम्य आधार आदि अतार्किक बातें भी इतिहास और पुराण में मिलती हैं। इस प्रयास से सनातन धर्म सामान्य लोगों के श्रद्धा का विषय किन्तु तार्किक चिंतकों के लिए विवादास्पद हो गया है। विज्ञान के नये आविष्कारों के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करके सनातन धर्म को वैज्ञानिक, अविवादित और तर्कसम्मत के साथ ही समाज के लिए श्रद्धास्पद भी बनाया जा सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यक्तिगत साधना में नानक, कबीर आदि की वाणी भी आदरणीय है।

महाभारत में राजा उपरिचर का आख्यान है। ऋषियों के आशीर्वाद से वे आकाश मार्ग से चलते थे। कुबेर के पास पुष्पक विमान था। आज ये बातें संभव लगती हैं। राजा बेन के शरीर का मंथन करने पर धर्मात्मा नरेश पृथु का जन्म हुआ, ब्राह्मणों ने यज्ञ के जल से राजा युवनाश्व के जंघे से प्रतापी नरेश मान्धाता को पैदा किया। दशरथ के राम आदि चार पुत्र ऋषि श्रृंग के यज्ञ से पैदा हुये। ऐसे अनेक आख्यान अब अविश्वसनीय नहीं हैं। विज्ञान की खोजों को देखने पर ऋषियों और ब्राह्मणों के चमत्कार अब काल्पनिक नहीं रह गये हैं। ओंकार से सृष्टि की मान्यता बिगबैंग सिद्धांत से अभिन्न है। भौतिक विज्ञान ही नहीं आयुर्वेद, शिल्प, ज्योतिष, कर्मकांड, आचार-व्यवहार के नियम आदि सभी क्षेत्रों में ऋषियों की सूक्ष्म दृष्टि निर्दोष सिद्ध हो रही हैं। सहस्त्र फनवाले शेषनाग के द्वारा पृथ्वी

को धारण करने, सूर्य के द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा करने की जैसी बातें अज्ञान वश नहीं लिखी हैं। कम समझवाले लोगों की जिज्ञासा को शांत करना भी उद्देश्य था। राहुकेतु द्वारा ग्रहण का बुरा प्रभाव बताकर तदनुसार सुरक्षात्मक आचरण करने के लिए श्रद्धा पैदा किया गया था। शेषनाग रूपी गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत और उससे ग्रहों का संचालन तथा उनकी स्थिति ऋषियों को ज्ञात थी। वैदिक काल से ज्योतिष शास्त्र है। सब के लिए बुद्धिगम्य न होने के कारण उसमें श्रद्धा उत्पन्न करना कठिन था। प्रत्यक्ष बातों में श्रद्धा उत्पन्न करके, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क आदि अप्रत्यक्ष बातों में भी विश्वास पैदा करना सदाचार की शिक्षा का अंग बनाया गया। धर्म और दर्शन में कुछ ऐसी बातें हैं जो अभी विज्ञान की पहुंच के बाहर हैं। प्रयोग में सफल होने से वे भी श्रद्धास्पद हैं। सभी धर्मों में श्रद्धा को यथास्थान मानना ही पड़ेगा। प्रयोग मे सिद्ध होने वाली श्रद्धा भी विज्ञान है।

शास्त्र, तर्क और व्यवहार से सिद्ध होने पर, इस युग में वैज्ञानिकता से सिद्धि भी आवश्यक है। दो बन्धन लगाने पर दृढ़ता होती है, यह मान्यता है - द्विधा बद्धो सुबद्धो भवति। धर्म की प्रचलित कसौटियों के साथ विज्ञान की कसौटी भी जोड़ना धर्मशास्त्र का विकास है। इनके द्वारा उत्पन्न श्रद्धा कल्याणकारी होगी। केवल करिश्मा और पाखंड द्वारा उत्पन्न श्रद्धा अंधभक्ति पैदा करती है।

सारांशः-

उपर्युक्त उदाहरणों और विवेचन का निष्कर्ष है कि सनातन धर्म बहुआयामी है। यह विश्व के कल्याण के लिए बहुत कुछ दे सकता है। ध्रुव सत्य है कि, पाखंड छोड़कर, सदाचार, सत्पक्ष का पोषण, निर्मल मन, ईमानदारी, अकुटिलता, भय और लोभ का त्याग, परस्पर सहयोग वाली यज्ञ की भावना आदि उदात्त गुणों को आदर देने पर ही शास्त्र, तर्क, व्यवहार और विज्ञान से कल्याणकारी सात्विक श्रद्धा उत्पन्न होगी। तब लोक को धारण करने में सक्षम होने पर धर्म सार्थक सिद्ध होगा। यही सनातन धर्म का रहस्य है। विज्ञान के द्वारा अनुमोदित होकर यह विश्वव्यापी हो सकता है।

## ( 102 )

## सनातन धर्म में उपास्य

देखने में आता है और आरोप भी लगाया जाता है कि हिन्दुओं में अनेक देवताओं की पूजा और पाखंड भरा है। ब्राह्मणों के स्वार्थी होने का भी आरोप है। इन बातों को निराधार तो नहीं किन्तु अतिशयोक्ति कहा जायेगा। ऐसी मान्यता पैदा करने के लिए मूल हिन्दू धर्म में कमी नहीं उसमें उत्पन्न विकृतियां कारण हैं। इसकी निन्दा स्वयं हिन्दुओं ने भी किया है। बहुत अंशों में सुधार भी हुये हैं। बहुत कुछ होना भी आवश्यक है।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति, नेह नानास्ति किंचन्, मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति आदि वेद वाक्यों पर आधारित सनातन धर्म मूलतः निर्विकार, एकत्ववादी और अति विशिष्ट है। इसमें नानात्व में एकत्व का प्रतिपादन है जबकि प्रेतों और मजार पर दिया देकर पूजकों में एकत्व में नानात्व है।

पूजा या दर्शन के समय आंख मूंदकर प्रार्थना करना सिद्ध करता है कि सनातनी स्वभावतः अपने हृदय में विराजमान एकमात्र ईश्वर की ही अराधना करता है। बाह्य रूप की महिमा को अपने अन्दर ही प्रतिष्ठित करके उससे अभीष्ट सिद्धि की कामना करता है। बाह्य कल्पित ईश्वर को व्यापक, सनातन, भूमंडल ही नहीं ब्रह्मांड का संचालक, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, आदि मानने पर हृदय में भी तद्रूप स्थापना होती है। तभी परमेश्वर की उपासना होती है। सीमित ईश्वर की भावना तुच्छ उपासना है।

सनातन वैदिक परंपरा में ईश्वर की मान्यता विश्व के सभी धर्मों से विशिष्ट है। सनातन धर्म की व्यापकता से ही राजधर्म भी उसी राजमार्ग का एक विशिष्ट अध्याय है। एकत्व के गुण से ही 'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्' राजधर्म का लक्ष्य है। इस तरह यहां एक ही ईश्वर उपास्य है जो अदृश्य और कल्पना से परे है। उसका ज्ञान उसकी शक्ति, सामर्थ्य और क्रिया-कलापों से होता है। प्रकृति ही उसका प्रत्यक्ष स्वरूप है। अपनी शक्तिस्वरूपा प्रकृति (माया) का संचालक स्वयं ईश्वर है। त्रिगुणात्मिका माया के सात्विक, राजस तथा तामस स्वरूपों को ही आराध्य बना लेना हिन्दू धर्म की विकृति है। उनमें प्रकृति के अदृष्ट संचालक, एकमात्र ईश्वर की अनुभूति सही वैदिक सनातन धर्म का दर्शन है। उसी के अनुसार नामरूप से

परे उपास्य का निर्धारण और तदनुसार आचरण सनातन धर्म का सही स्वरूप है।

ईश्वर की अनुभूति हृदय में हो जाने पर उसे बाहर ढूंढ़ना बन्द हो जाता है। नानात्व में भी अपने हृदय में स्थित ईश्वर का दर्शन करना, सर्वात्मभूत होना, सनातन धर्म में उपास्य की सही भावना है।

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' -गीता।

## ( 103 )

## निष्पक्षता

अपने पक्ष का पोषण करना स्वाभाविक है। किसी व्यक्ति या समूह का समर्थक निष्पक्ष नहीं रह सकता है। वह पूर्वाग्रही होजाता है। सत्य और न्याय पक्ष ही नहीं लक्ष्य भी हैं, अतः इनका का पक्षधर निष्पक्ष कहा जायेगा। यह कहा जा सकता है कि पक्षपोषण के लिए सत्य और न्याय की परिभाषायें गढ़ी जा सकती हैं। इसके समाधान के लिए 'सुरसरि सम सबकर हित होई', समाज और व्यक्ति को अभ्युदय और निःश्रेयस् की सुविधा, आचरण के निर्धारित मापदंडों का आदर, चरित्र में विश्वसनीयता आदि लक्षणों से सही परिभाषा का ज्ञान हो जाता है।विषम समस्या में विश्वस्त शिष्टमंडल से सम्मति ली जा सकती है। सत्य का ज्ञान कठिन नहीं है। स्वार्थी व्यक्ति जानबूझकर उसका पालन नहीं करता है। जो निष्पक्ष नहीं है वह झूठा है, अनीति और पाखंड का सहारा लेता है। ऐसे लोगों का बहिष्कार होना चाहिए। निष्पक्षता सत्य का प्रगट स्वरूप है।

राजनीति में निष्पक्षता ही शांतिव्यवस्था का आधार है। किसी भी देश को अपने धर्म का नहीं, संस्कृति और भाषा का पोषण करना उचित है। धर्म को राजनीति का आधार बनाकर निष्पक्षता का हनन अनिष्टकारी है। अपने राष्ट्र का निर्माता नेल्सन मंडेला मानता था कि देश में शिक्षा के प्रचार से विकास और धर्म के प्रचार से विनाश होता है। कार्ल मार्क्स का भी विचार धर्म के प्रति ऐसा ही था। वर्तमान बहुसांस्कृतिकता के युग में यह बातें अधिक सही हैं। अतः धर्म के नाम पर सत्ता और शासन संचालन अनिष्टकारी है। किसी धर्म के सक्रिय कार्यकर्ता, धर्मगुरु या मठाधीश को शासन में दखल देने से बहुत दूर रखना अत्यावश्यक है। पूर्वाग्रह के कारण वह निष्पक्ष हो ही नहीं सकता है।

लोक में निष्पक्षता व्यक्ति का आभूषण है, समाज के लिए सुरसरि है, न्याय और राजधर्म का प्रथम सोपान है। परलोक के लिए समत्वयोग की साधना में मानसिक निर्मलता का लाभ निष्पक्षता से मिलती है। निष्पक्षता लोक परलोक दोनों के लिए हितकर है।

## ( 104 )

## भारत में राष्ट्रवाद का रहस्य

अखंड भारत एक सांस्कृतिक राष्ट्र था। तब राजा नहीं संस्कृति का ही शासन था। राजा उसका प्रवर्तक था। ऋग्वेद (श्री सूक्त)में है -

'प्रदुर्भूऽतोस्मि राष्ट्रेस्मिन् कीर्तिं ऋद्धिं प्रयच्छ मे'। इस राष्ट्र (सांस्कृतिक परिवेश) में पैदा होने के प्रभाव से धन एवं सुयश दोनों की कामना यहां की गई है। इस कामना की पूर्ति होने के कारण अखंडता बनी रही। ब्राह्मणों का वर्चस्व होने तक भारत अखंड था। तब सर्वत्र राजधर्म और संस्कृति की प्रतिष्ठा थी। राजाओं की अनेकता में भी विधान और उद्देश्य की एकता बनी रही। तब विपथगामी बेन, सहस्त्रबाहु, परीक्षित जैस राजाओं को नियंत्रित करने की क्षमता ब्राह्मणों में थी।

इस देश में कुछ घटनाओं के प्रभाव से युगपरिवर्तन हुआ और शासनतंत्र का स्वरूप बदलने लगा, तब शासन में संप्रदाय विशेष का प्रवेश होने से, सांस्कृतिक साम्राज्य का छिन्न-भिन्न हुआ और वाह्य आक्रमण तथा गुलामी का युग आरंभ हुआ। दक्षिण भारत में बाद तक संस्कृति का वर्चस्व था अतः वहां की गुलामी बाद में आई।

ब्राह्मणों का वर्चस्व न होने पर बहुधा कुटिल राजनीति, शोषण और शासक की प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगी। अलगाव, आपसी फूट, शोषण आदि से बचाने वाले सांस्कृतिक आधार का अभाव हो गया। अच्छी या बुरी किसी बात पर एकमत नहीं रह गया। अधिकांश रियासतों में राष्ट्र का स्थान संकुचित अर्थ में राज्य या साम्राज्य ने ले लिया। दक्षिण भारत तथा महाराष्ट्र में कुछ ब्राह्मण राजाओं में सांस्कृतिक पक्ष की याद अंग्रेजों के आने तक बनी रही। गुलामी के कारण राष्ट्र की भावना समाप्त हो चली थी। अंग्रेजों ने यहां का बहुत कुछ लूटा और नष्ट किया लेकिन उनसे अपने इतिहास, देशभक्ति और राष्ट्रवाद की शिक्षा हमें मिली

जिससे स्वतंत्र होने की भावना जाग्रत हुई। अब, पूर्ण स्वतंत्रता के लिए संस्कृति का संरक्षण आवश्यक है।

धर्म के अदृष्ट फल देने वाले रहस्यात्मक कर्मकांड या वाह्य प्रदर्शन के अंशों को छोड़कर, उसके प्रत्यक्ष फलदायक अंश - आचार, व्यवहार, जीवन पद्धति और प्रत्यक्ष मूल्यों को ही संस्कृति कहते हैं। भारत भूमि की कुछ विशिष्टतायें हैं। देशगत प्रभाव से यहां के सभी संप्रदायों में ऐसी सांस्कृतिक एकता रही है और हो सकती है। भारत में नारी का विशेष महत्व है। सशक्तीकरण के नाम पर उसे अशक्त न किया जाय, यह संस्कृति का तकाजा है। उसकी सुरक्षा का दायित्व पुरुष को देना और नारी की मर्यादा का ध्यान रखते हुए उसे स्वतंत्र और सशक्त रखने में ही संस्कृति की सुरक्षा है। संस्कृति से राजधर्म का पालन, उससे न्याय, सत्य आदि की रक्षा तथा उससे शांतिव्यवस्था होने पर शासन विश्वसनीय होता है।शासक और शासित की भावना में समानता होने पर कानूनों का पालन स्वतः होता है और अपराध नियंत्रित हो जाते हैं।इस रहस्य को जानना और स्वीकार करना हितकर है। भारत में राष्ट्रवाद की भावना के लिए यही स्थिर आधार है।

## ( 105 )

## नामकरण की नई प्रथा

पहले तिलक, गांधी, नेताजी, पटेल, लौहपुरुष, नेहरू आदि नाम से व्यक्तिविशेष का बोध होता था। अब बबुआ, बुआ, पप्पू, पाखंडी, लप्पू, चोर, चौकीदार, चाराचोर, बुलडोजर जैसे नाम प्रचलित हो रहे हैं। दिव्यांग, इज्जतघर, अंधभक्त आदि नाम भी किसी उद्देश्य से प्रयुक्त किये जा रहे हैं। अपनी संस्कृति में सम्माननीय और पूज्य लोगों के नाम भी विकृत किये जा रहे हैं। इससे संस्कृति का भविष्य असुरक्षित है।

नाम से किसी की विशिष्टता या उसके गुणों को दर्शायें तो ठीक है लेकिन इससे ईर्ष्या-द्वेष, व्यंग या सांप्रदायिकता का प्रदर्शन अंधभक्तों में कलह का कारण होरहा है। उलटा अर्थ होने पर उपहासास्पद है। 'आंख के अंधे नाम नयन सुख' चरितार्थ करना नासमझी है। गुण के अभाव में कोई नाम बदनाम हो सकता है। नाम या पद नहीं गुण ही प्रतिष्ठा का आधार है। नाम और गुण समानार्थक रहें तो कोई भी नामकरण ठीक है। नामकरण की हानिकर नई प्रथा को विराम देना चाहिए।

## ( 106 )

## प्रत्यक्ष और आंकड़ा

सत्य प्रत्यक्ष होने पर भी व्यक्तिनिष्ट कहा जाता है। आंकड़ा अप्रत्यक्ष होकर भी वस्तुनिष्ठ व वैज्ञानिक माना जाता है। वास्तव में दोनों का महत्व है। सही होने पर, प्रत्यक्ष से गुणदोष का प्रकार और आंकड़ा से उनकी मात्रा का ज्ञान होता है। यह आंकड़ा का सदुपयोग है। इसका दुरुपयोग खूब संभव है। जैसे सामान्य ज्ञान के बिना विशेषज्ञान, तर्कबुद्धि के बिना शास्त्रज्ञान वैसे ही प्रत्यक्ष से अप्रमाणित आंकड़ा गलत, झूठा या एकदम उलटा परिणाम देने वाला होता है। अंधे के लिए दर्पण की तरह, तर्कबुद्धि के बिना विशेष ज्ञान व्यर्थ है। कहा है -

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।<br>
लोचनाभ्यां बिहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति।।

आंकड़ा लोगों को भ्रमित करने का मान्यता प्राप्त साधन बन सकता है। अतः उसके उपयोग में सतर्कता अपेक्षित है।

शांतिव्यवस्था या अन्याय और भ्रष्टाचार का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है। हो सकता है कि समाचार पत्र के आंकड़ों से इसका सही ज्ञान न हो किन्तु प्रत्यक्ष रूप से अधिकांश लोगों को हो जाता है। आंकड़ा उलटा बताता है तो ऐसी हालत में वह झूठा और प्रत्यक्ष ज्ञान ही सही मान्य है। आंकड़े व प्रचार-तंत्र बाजार में बिकने वाले पदार्थ हो सकते हैं।

राष्ट्र बहु आयामी होता है। उसका तुलनात्मक आकलन भूतकाल या दूसरे राष्ट्र से एक विषय में ही नहीं होता है। समग्रता या मूल उद्देश्य में तुलना होनी चाहिए। सबका संयुक्त प्रभाव ही तुलनीय है। सौ सामान्य वस्तुओं के बदले उनके योग का दशगुना खोना निन्दनीय है। सूक्ष्म ही सही किन्तु मूल्यवान और स्थाई का निर्माण होना हितकर है। अति विस्तार अल्पायु होता है। 'अति विस्तार विस्तीर्णा भवन्ति न चिरायुषः।'

मुख्य समस्या का सामना पहले करना होता है। कर्ण के द्वारा भारी मात्रा में सेना का बध हो रहा था। उस समय कर्ण को छोड़कर अन्यत्र जाने पर युधिष्ठिर ने अर्जुन के गांडीव धनुष की निन्दा किया था। देश में व्याप्त अनीति, भ्रष्टाचार, अन्याय, सामाजिक असंतोष, भयादोहन, अविश्वास आदि मुख्य शत्रुओं का दमन

करना प्राथमिक कर्तव्य है। इनके रहते हुये विकास का प्रदर्शन पाखंडमात्र है। राजकोष, सेना और सुनीति तीनों के विकास का सर्वोपरि महत्व है। प्रत्यक्ष सुनीति के बिना सारे आंकड़े व्यर्थ और अविश्वसनीय होते हैं।

## ( 107 )

## व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उनके आचरण का प्रभाव एक-दूसरे पर पड़ता है और उसके अनुसार अच्छी या बुरी परंपराएं प्रचलित होती हैं। किसी व्यक्ति के आचरण के बारे में समाज न जाने तो वह व्यक्तिगत है, समाज जानता है तो वह सामाजिक है क्योंकि उसका प्रभाव समाज पर पड़ता है।

सामाजिक कदाचरण का प्रकाशन और उसकी निन्दा अपराध नहीं मानने योग्य है। अपराध करने वालों का ही कुतर्क इसके विरुद्ध होता है। समाज द्वारा उनकी निन्दा तथा बहिष्कार होना चाहिए। अश्लील व निन्दनीय आचरण के द्वारा धन, पद, संबंध या प्रतिष्ठा लेने वालों के द्वारा बड़ा दुराचार और भ्रष्टाचार फैल रहा है। इसे रोकने में समाचार पत्रों और संचार साधनों का सदुपयोग होगा। कर्तव्यनिष्ठ लोगों को स्वधर्म का पालन करना चाहिए।

झूठे प्रचार के लिए दंड आवश्यक है अन्यथा सही व्यक्तियों का ही बहिष्कार पहले हो जायेगा। सारी समस्याओं का निदान सत्य और न्याय पर आधारित हैं। इनसे ही सभी अंगों में प्राणसंचार हो सकता है।

## ( 108 )

## मूर्खता की महिमा

मूर्खों की औकात कम नहीं समझना चाहिए, विशेष रूप से जब वे समूह में हों। एक विचारक ने यह पहले भी कह रखा है। जहां मूर्खता ही वरदान हो वहां बुद्धिमान बनना मूर्खता है। शेक्सपीयर ने भी ऐसा कहा है। अमृत और विष दोनों का महत्व अपनी अपनी जगह है। मानस में है -

भलो भलाई पै लहे लहे निचाई नीच।<br>सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीच।।<br>यह सुविचारित वक्तव्य ध्यान देने योग्य हैं।

अपने देश की वर्तमान अवस्था से यह पुराने कथन सत्यापित हो रहे हैं। यहां जो आरक्षण योग्य और पिछड़ा ही बना रहना चाहता हो वह विकसित होने को ही मूर्खता कहेगा। सुरक्षित चारागाह छोड़कर खूंटा पर बंधन में रहकर काम करना पशु भी पसंद नहीं करता है। चारागाह के पशुओं का मालिक भी उन्हें यथावत रखकर अपनी संपत्ति सुरक्षित रखना चाहता है। गड़ेरिया अपनी भेड़ों को हिरण नहीं बनाना चाहेगा। रोजी-रोटी का साधन कोई नहीं छोड़ सकता है। तब परिवर्तन असंभवहै। इस तरह मूर्खता की महिमा बहुत है। उसके बहुत ग्राहक हैं।वह सशक्त और महिमामंडित भी है।

दूसरी दृष्टि यह भी है कि विधाता की रचना में विविधता है। मूर्ख भी एक विशिष्ट कोटि का प्राणी है। उनको शायद ब्रह्मा भी नहीं सुधारना चाहते हैं। मनुष्य को बुद्धिमानी का मिथ्या अहंकार करके विधाता की रचना में हस्तक्षेप करने का प्रयास नहीं करना चाहिए ।

मूरख हृदय न चेत जौ गुरु मिलइ विरंचि सम।
फूलइ फलइ न बेंत जदपि सुधा बरसहिं ।।

बंदर को सलाह देने वाली चिड़िया का घोसला उजड़ सकता है। अपने धर्म का पालन करने का उपदेश सब के लिए है। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' का ज्ञान मूर्ख को जन्मसिद्ध है। कौवा जन्मजात चालक होता है।

स्वाभाविक रूप से मूर्ख और विवशता में असंस्कृत या अनपढ़ होने में अंतर है। भेद को जाने बिना मूर्ख मान लेने की मूर्खता नहीं करनी चाहिए। परिस्थिति के कारण अज्ञानी रहने वाले व्यक्ति को सुधारने का प्रयास सार्थक होगा। इससे मूर्खता की बढ़ती हुई महिमा पर नियंत्रण हो सकता है।

## ( 109 )

## एक वार्षिक संस्कार

आचार को परमधर्म माना गया है। इस धर्म के पालन में संस्कारों का बड़ा महत्व है। षोडस संस्कार बताये गये हैं जो जीवन में केवल एक बार किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त किशोरावस्था के अंत में, असी वर्ष की आयु होने पर तथा आश्रम परिवर्तन के समय भी संस्कार होते हैं। स्नानादि के साथ संध्या आदि कुछ

संस्कार नित्य होते हैं। वार्षिक संस्कार एकमात्र है जिसे श्रावणी/उपाकर्म कहते हैं। यजुर्वेदियों द्वारा श्रावण मास की पूर्णिमा को यह पर्व मनाया जाता है। अधिकांश लोग इसे केवल रक्षाबंधन बन्धन के नाम से ही जानते हैं। इन सब की जगह अब, बहन द्वारा, राखी बांधना ही वार्षिक संस्कार का स्वरूप हो गया है। वैदिक सनातन संस्कारों की इतनी विकृति आश्चर्यजनक है। इसका परिणाम यहां के लोगों के आचार, व्यवहार और स्वभाव में स्पष्ट है। कुछ विश्लेषण द्रष्टव्य है।

श्रावणी/उपाकर्म ब्राह्मणों का सर्वोपरि वार्षिक पर्व माना जाता है। नदी या जलाशय पर सामूहिक रूप में संकल्प के साथ विविध स्नान व तर्पण के बाद ऋषि पूजन, यज्ञोपवीत पूजन व धारण करना इस पर्व के प्रमुख अंग हैं। सभी द्विज एवं अन्य लोगों की भी, किसी न किसी रूप में, सहभागिता इसमें रहती थी। अब यह पर्व कहीं-कहीं और केवल ब्राह्मणों का रह गया है। कुछ दिन पहले तक रक्षासूत्र पुरोहित बांधते थे। अब वह भी नहीं होता है। अब बहनें राखी बांधकर सारा संस्कार कर देती हैं। यह प्रथा बहनों द्वारा कजली पर जरई (जौ का हरा पौधा) बांधने के स्थान पर प्रचलित हुई है। हरियाली की जरई को लोग भूल गये। पश्चिम भारत से चलकर, लगभाग विगत पचास वर्षों में, राखी बांधना सर्वत्र आरंभ हो गया है। यह श्रावणी का इतिहास है जो ब्राह्मण और पूरे सनातन धर्मियों के पतन का इतिहास ज्ञात करने का एक उदाहरण है। यहां सही बात को समझाना कठिन हो गया है और बनावटी, मनोरंजक तथा झूठ का प्रचार स्वतः हो रहा है।

राखी बांधने का श्रौत या स्मार्त विधान नहीं है। एक सहस्त्र वर्ष के अंदर बने कुछ पुराणों और नवीन इतिहास में इससे संबंधी किस्से लिखे गये। उन्ही के आधार पर, लोकाचार में बनी स्थानीय परंपरा का प्रचार करके, इसे धार्मिक रूप देदिया गया। आश्चर्य है कि अब राखी बांधने केलिए मूहूर्त बताया जाता है। इस मुहूर्त के निर्धारण में ज्योतिषी लोग अपनी योग्यता का प्रदर्शन करते हैं जबकि लोकाचार के लिए मुहूर्त निर्धारण का नियम प्रचलित है - न सौ साइत न एक सुतार।

लोकाचार का भी महत्व है। उसका विरोध करना हमारा उद्देश्य नहीं है। वह संगठन और मेलजोल का साधन बन सकता है किन्तु वही धर्म का स्थान लेकर, हमारी संस्कृति के लिए हानिकारक नहीं होना चाहिए। जो श्रम, समय और धन

लोकाचार के प्रचार में लगाया जा रहा है, उसका सदुपयोग सदाचार और संस्कार की शिक्षा में हो सकता है। शिक्षा पद्धति में इन विषयों पर चिंतन और कार्यवाही होनी चाहिए। संस्कारों से ही व्यक्ति तथा समाज सभ्य व सुसंस्कृत बने रहेंगे।

संस्कार का रहस्य इसके करते समय लिये जाने वाले संकल्प या व्रत में है। यह संकल्प/व्रत कर्मकांड से आवृत होकर दृढ़ होता है जिससे सदाचार की बाध्यता बनती है। श्रद्धापूर्वक करने पर फल मिलता है और फल मिलने पर विश्वास हो जाता है। सनातन धर्म की धुरी ब्राह्मणत्व है। ब्राह्मण के, अपने को सुधारकर, सदाचरी होने पर सभी वर्ण एवं स्त्री भी सन्मार्ग पर बने रहेंगे। संस्कार से पोषित होकर परमधर्म स्वरूप सदाचार ही शील और संमस्त मनोरथ सिद्ध करता है।

## ( 110 )

## पूरब और पश्चिम

आकाश एक अविभाज्य अनंत देश है। देशों का विभाजन और दिशाओं का निर्धारण उस अनंत के व्यावहारिक स्वरूप हैं। पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण के रूप में विभाजन बनावटी ही नहीं रह जाते हैं। देश के अनुसार व्यवहारों में दूरी बनती जाती है। इससे यह व्यावहारिक सत्य बन गये हैं। इनका प्रभाव स्थाई है। दोनों ध्रुव या पूरब और पश्चिम एक होना असंभव है। देश का अमिट प्रभाव वहां के रहन-सहन, खान-पान, लोगों के स्वभाव व जीवन के उद्देश्य, दर्शन, धार्मिक मान्यता, संस्कृति आदि मानव-जीवन के विविध क्रिया-कलापों पर बलात् पड़ता है। मानव जीवन ही नहीं पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, नदी-पहाड़ आदि प्रकृति के अंग जो जलवायु का नियंत्रण और जनजीवन को प्रभावित करते हैं, वे सब देश के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। ऐसी स्थिति में वैश्विक समुदाय बनाने की बात सीमित क्षेत्रों के लिए ही संभव है। भय, लोभ या चमत्कार द्वारा असंभव को संभव बनाने का प्रयास अहंकार का प्रदर्शन और मिथ्याचार है।

वैज्ञानिक उपकरण, खाने पहनने के कुछ सामान, खेलकूद और मनोरंजन के साधन और तरीके ऐसे बहुत से क्षेत्र हैं जिनमें सभी देशों में आदान-प्रदान हो सकता है। यद्यपि संस्कृति को संकट उत्पन्न करने के कारण विवादास्पद मनोरंजन के तरीकों का विरोध भी होता है।

धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनैतिक कुछ अति महत्वपूर्ण विषय हैं जिनमें पूरब-पश्चिम या देश का प्रभाव डी.एन.ए. की तरह स्थाई होता है। दूर देशों में प्रचलित इन विषयों का नकल करने, इन्हें मानने के लिए बाध्य करने, तुलना द्वारा इनका उच्च और निम्न स्तर होने का निर्धारण करने से लाभ नहीं हानि ही होती है। धोबी का कुत्ता (कुटका) घर का न घाट का, चरितार्थ होता है। उदाहरणों द्वारा इसे स्पष्ट किया जा सकता है।

भारतीय संस्कृति में नारी का विशेष स्थान रहा है। वह रति के लिए ही नहीं, धार्मिक कार्यों में सहभागिता तथा संतति के द्वारा परंपराओं को सुरक्षित रखने के लिए आदरणीय है। एक पढ़ीलिखी, सुसंस्कृत कन्या, पिता और पति दोनों के कुलों को प्रतिष्ठित करती है। इसलिए पवित्र कन्यादान का बड़ा महत्व है। उसको सुशिक्षित करने का भार माता-पिता का है और सुरक्षा के लिए पिता, पति, पुत्र तथा बन्धु सभी यथा अवसर उत्तरदायी हैं। सुशिक्षित कन्या अपनी योग्यता, शारीरक स्थिति तथा स्वभाव के अनुसार अन्य कार्य भी सफलतापूर्वक करती है। इस व्यवस्था का अनादर करके, पश्चिम देशों की नारी के रूप में उसे सशक्त बनाने में वह अमर्यादित हो जायेगी। पहले भी नारी द्वारा, रूप और शारीरिक कला से अर्थार्जन करने की परंपरा मान्यता प्राप्त थी। वह स्वतंत्रता निन्दनीय नहीं थी। उनकी मर्यादा का मापदंड अलग था। कुलांगना, पतिपरायणा या गृहिणी के रूप में ही भारतीय नारी की सर्वोपरि मर्यादा है। आज भी अमर्यादित होने के बाद, अधिकांश स्त्रियां भारतीय नारी के रूप में प्रतिष्ठित होने का पुनः प्रयास करती हैं। अतः पूरब की नारी को पश्चिमी मेडम बनाने मे नारी का अपमान और नये विधि से शोषण है।

धार्मिक और दार्शनिक क्षेत्र भी ध्यान देने योग्य है। हमारे यहां के षड्दर्शन आर्षवाक्य, अंतर्दृष्टि, व तार्किक चिंतन के आधार पर हैं। व्यावहारिक चिंतन के आधार पर भी दर्शन हैं जो रहस्यात्मक तथ्यों के लिए उपनिषदों के ही ऋणी हैं। इन सब का उद्देश्य तत्वज्ञान की खोज के साथ ही मानव जीवन को समृद्ध और परलोक में भी निरापद या भवरोग से मुक्त रखने में समर्थ एक धार्मिक संहिता बनाना भी था। पहले बौद्धिक व्यायाम मात्र के लिए कोई दार्शनिक चिंतन नहीं होता था। पाश्चत्य जगत में इसका उलटा है। वहां धर्मदर्शन अलग था। नीतिशास्त्र धर्मदर्शन का सहायक था। बौद्धिक व्यायाम को ही मुख्य दर्शन मानते

हैं। अतः भारतीय परंपरा के चिंतन को दर्शन मानना उन्हें स्वीकार नहीं है। हम लोग उनके चिंतन को अनुपयोगी और बौद्धिक मनोरंजन कह सकते हैं। जीवन की पूर्णता को विषय न बनाने के कारण अधिकांश पाश्चात्य दर्शन भारतीय विधा की अपेक्षाहीन हैं। अपनी डफली और अपनी राग ही संभव है।

अपने यहां के बहुत से संप्रदाय विदेशों में प्रचाररत हैं। ईसाई और इस्लाम धर्म के लोग यहां सुनियोजित प्रचार में लीन हैं। सभी पथभ्रष्ट हैं। इससे सर्वत्र धर्म की हानि है। भारतीय समाज को विशेष हानि की संभावना है। विदेशों में हमारे यहां के संप्रदायों का ही पाश्चात्य रूप बनाकर, विकृत हिन्दू धर्म का प्रचार बाहर और भारत में भी हो रहा है। हरे रामा कहने वाले हिप्पी भी बन जाते हैं। धर्मगुरु लोग वहां बड़े-बड़े मंदिर के प्रदर्शन को छोड़कर, अपने देश में ही धन का सदुपयोग करें और लोगों केलिए सत्य, नैतिकता, संस्कृति आदि को पाठ्यक्रम में रखकर शिक्षा के केन्द्र संचालित करें तो उनकी भी सार्थकता है। पूरब में ही उनकी सही पहचान होगी।

इसी तरह राजनीति में भी शासन तंत्र, संविधान तथा कानून संबंधी बहुत सी बातें देश के लिए विपरीत प्रकृति की हैं। प्रत्येक विशिष्ट क्षेत्र में पूरब और पश्चिम में ध्रुवीय अंतर पाया जाता है। अतः दोनों को एकरूप बनाने का प्रयास घातक है। ऐसी स्थिति में, एक पेड़ पर घोसला बनाने वाले अनेक तरह के पक्षियों में परस्पर सहयोग के साथ रहने की तरह अपनी रुचि और संस्कार के साथ स्वतंत्र रहने की सुविधा होने पर विश्वबन्धुत्व या वैश्विक समाज की कल्पना होसकती है।उस समय किसी के स्वाभाविक गुणों में हस्तक्षेप न करते हुये, शिक्षा द्वारा सब को वास्तविक वैश्विक स्थिति से अवगत कराना उपयोगी होगा। इससे पूरब और पश्चिम का अपरिहार्य भेद होने पर भी दोनों की दूरी कम बनी रहेगी।

## ( 111 )

## शब्दब्रह्म

अक्षरों से शब्द बनता है। उसके उच्चारण की ध्वनि को अर्थ से जोड़ने पर ही सार्थक शब्द माना जाता है। अक्षर, शब्द और ध्वनि नित्य हैं। अर्थ के साथ शब्द का संयोजन कृतक और अनित्य है। उसी अर्थ को दूसरे शब्द से व्यक्त किया जा सकता है और उसी शब्द से दूसरा अर्थ भी संयोजित हो सकता है।

सभी शब्दों में कई अर्थ आरोपित हो सकते हैं। इसीलिए शब्दानामनेकार्थाः कहा गया है।

सामान्यतया नाम (संज्ञा), सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, अव्यय और निपात के रूप में शब्द होते हैं। नाम और सर्वनाम ही कर्ता और भोक्ता होते हैं। अन्य शब्द इनके प्रपंच के विस्तार को ठीक से समझने व बताने के लिए हैं। अनेकार्थी होने के कारण सभी नाम और सर्वनाम शब्दब्रह्म या ईश्वर नाम से कहे जाने वाले एक ही अर्थ के द्योतक हो सकते हैं। उसी की प्रार्थना है -

अहं च त्वं च सश्चैव यस्य सन्ति हि वाचकाः।
तं सर्वनामरूपाय अरूपाय नतोस्म्यहम्।।

ओंम्, तत्, सत् नाम वाले परमपुरुष को ही सोऽहं, तत् त्वम् असि, तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति, त्वमेव माता च पिता त्वमेव आदि वाक्यों में अहं, त्वं, सः, तत् सर्वनामों से भी जाना गया है। तब, समस्त नाम और रूप एकमात्र ईश्वर तत्व है। समस्त ध्वनि का सम्मिलित उच्चारण, ओंकार भी उसी का वाचक है – 'प्रणवस्तस्य वाचकः' योगशास्त्र। गीता में उसी को एकाक्षर ब्रह्म कहा है - ओमित्येकक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। वही प्रणम्य है।

उपनिषदों में ओंकार की उपासना के कई प्रकरण हैं। माण्डूक्य उपनिषद् में ओंकार के चार पाद- अ, उ, म तथा अर्धमात्रा बताया है जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त तथा तुरीय के रूप में हैं। तुरीय पाद मे ब्रह्मात्मैक्य का प्रतिपादन इस तरह है - प्रपंचोपशमं शान्तं शिवं अद्वैतं तुरीयं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः। हृदयाकाश और महाकाश दोनों में वही एक ओंकार ध्वनि व्याप्त हो रही है। ध्वनि के रूप में सारे शब्द ओंकार में समाहित हैं अतः ओंकार ही शब्दब्रह्म है। वह हृदय और आकाश में एक रूप है, अतः आत्मा और ब्रह्म में अभेद है।यह ठीक से जानने पर परब्रह्म भी स्वतः अनुभूत हो जाता है। इसके लिए ब्रह्मविन्दूपनिषद् द्रष्टव्य है।

ब्रह्मविन्दूपनिषद् में है - शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति। अर्थात शब्दब्रह्म की उपासना में निष्णात व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त करता है। निष्णात का अर्थ है किसी शब्द का स्थान विशेष पर तात्पर्य जानने मे सक्षम। प्रचलित वाक्य हैं - सर्वे शब्दाः सर्वार्थ वाचकाः तथा शब्दानामनेकार्थाः। अर्थात् एक शब्द के कई

अर्थ हैं और उससे सभी अर्थ निकल सकते हैं। सही तात्पर्य जानने में कुशलता से वेदब्रह्म का प्रत्यक्ष होता है जिससे परब्रह्म की अनुभूति आत्मस्वरूप में होती है। सोऽहं, अहं ब्रह्मास्मि के रूप में निदिध्यस्त होना लक्ष्य है।

लोक व्यवहार में भी सत्य और हितकर वाणी को दुधारू गाय माना जाता है। 'धेनुं धीराः सूनृतं वाचमाहुः' विश्रुत है। शब्द का प्रयोग वाग्देवी की आराधना के रूप में करने पर लोक तथा शब्दब्रह्म के रूप में उपासना करने पर परब्रह्म, आत्मतत्व की ज्ञान होता है।

## ( 112 )

## स्वतंत्रता की सीमा

ईश्वर स्वतंत्र होते हुये भी स्वेच्छाचारी नहीं हैं, समर्थ होते हुए भी अपनी मर्यादा बनाये रखते हैं। अपनी सृष्टि के संचालन के लिये बनाये गये नियम स्वयं स्वीकार करते हैं। कर्म के अनुसार ही फल देना उसकी भी बाध्यता है। इसे देखते हुये मनुष्य के लिए भी स्वतंत्रता की सीमा का आदर करना अनुकरणीय है। सांसारिक प्राणी स्वभावतः स्वेच्छाचारी होता है। सुविदित है कि अधिकांश प्राणी दंड के भय से नियम का पालन करते हैं। 'नियतविषयवर्ती प्रायशो दण्डयोगात्' ही सही है। विभिन्न कोटि के पशु, पक्षी तथा मनुष्य के लिए, स्वतंत्रता की सीमा निर्धारित करने के लिए देशकाल तथा प्राणी की योग्यतानुसार अलग-अलग नियम हैं। अंधेर नगरी बनाना समाज के लिए घातक है।

पाश्चात्य देशों की स्वतंत्रता वहां की शिक्षा, कानूनव्यवस्था, आर्थिक स्थिति, सभ्यता, सामाजिक और नैतिक मान्यताएं तथा उनका अनुपालन आदि के अनुसार है। अति स्वतंत्र करने की प्रतिस्पर्धा में वहां भी भयानक समस्यायें उत्पन्न होती रहती हैं। भारत की स्थिति वहां से बहुत भिन्न है। वहां का अनुकरण करके तद्रूप राजनैतिक व्यवस्था, प्रजातांत्रिक स्वतंत्रता आदि भारत जैसे देश में लागू करना समस्यात्मक ही रहेगा।

स्वतंत्रता पर अनुपयुक्त अंकुश गुलामी है। अंग्रेजों के जाने के बाद भारत में सामाजिक क्षेत्र में गुलामी बढ़ी है। लोकनीति की स्वतंत्रता पर राजनैतिक हस्तक्षेप का बुरा प्रभाव स्पष्ट है। नारी की स्वतंत्रता भी प्रमुख विचारणीय विषय है। यह भी देशकाल के अनुसार ही शोभनीय है। यहां अपने क्षेत्र में ही नारी को स्वतंत्र

रखना ठीक है। वृष्टि आवश्यक है किन्तु महावृष्टि नहीं। यहां की संस्कृति में परम स्वतंत्रता मान्य नहीं है -

महा वृष्टि चलि फूटि कियारी।
जिमि स्वतंत्र भये बिगरहिं नारी।।

बरसात से खेती होती है, बाढ़ से वह बरबाद हो जाती है। अपात्र को परम स्वतंत्र और सुपात्र को नियंत्रण में रखने से विषम परिस्थिति उत्पन्न होती है।

समता, स्वतंत्रता, नस्लवाद का विरोध, पशुओं के प्रति व्यवहार, मानवाधिकार आदि के विधान यूएनओ जैसी संस्थाओं और पारित प्रस्तावों से संचालित हैं। उनका अनुपालन करने की बाध्यता, कहीं-कहीं, अन्य देशों की स्वतंत्रता पर पाश्चात्य जगत का हस्तक्षेप है। देशकाल के अनुसार ही स्वतंत्रता या उस पर अंकुश लगाना और स्वतंत्र रखना उचित है।

किसी की स्वतंत्रता की सीमा, दूसरे की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप होने के पहले समाप्त हो जाती है। स्वतंत्रता की सीमा में रहना बुद्धिमानी है। सीमा का उल्लंघन रोकने के तीन शासक हैं--

गुरुः आत्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम्।
अंतः प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः।।

गुरुजनों की आज्ञानुसार स्वयं मर्यादा में रहना सर्वोत्तम शासन है। उसके अभाव में राजदंड से नियंत्रण होता है। उससे भी न पकड़ेजाने पर यमदंड से कोई नहीं बच सकता है। आत्मसंयम द्वारा स्वतंत्रता की सीमा में रहना और इसके लिए प्रेरित करना धर्म है। अपनी सीमा तक स्वतंत्र रहने केलिए संघर्ष करना स्वाभिमान है जिसकी रक्षा करना स्वधर्म है।दूसरे की स्वतंत्रता की सीमा में प्रवेश न करना और अपनी स्वतंत्रता की सीमा में प्रवेश न सहन करना, दोनों आदर्श सिद्धांत हैं।

## ( 113 )

## राष्ट्रभाषा हिन्दी

राष्ट्रभाषा से देश का स्वाभिमान अभिव्यक्त होता है। यहां भाषा की दृष्टि से अधिकांश प्रदेश राष्ट्रीय स्वाभिमान से शून्य हैं। इस विषय में प्रादेशिक भावना

प्रबल है। केन्द्र सरकार भी उनका समर्थन करने को विवश दिखाई पड़ती है। प्रयोग में अन्य कोई भाषा हिन्दी की तुलना में बहुत कम है। अंग्रेजी तो गुलामी की प्रतीक है ही। ऐसी स्थिति में प्रादेशिक राजनेताओं को, राष्ट्रीय भावना का आदर करते हुए, एकमत होना चाहिए। एक मंच बनाने के लिए, केन्द्र सरकार इसे महत्वपूर्ण विषय नहीं समझती है, यह दुर्भाग्यपूर्ण है। संविधान में पन्द्रह वर्ष की सीमा थी जिसमें हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो सके। अवधि की समाप्ति के बाद यह प्रावधान हिन्दी दिवस पर ही याद आता है।

कोई राष्ट्रभाषा प्रेमी और सक्षम स्वाभिमानी व्यक्ति पहल करे तो यह कार्य संभव है। इसे राजनैतिक लाभ और हानि से न जोड़ा जाय। संवाद से बड़े-बड़े विवाद समाप्त हो जाते हैं।

## ( 114 )

## मति और रुचि

अपनी योग्यता के अनुसार कामना करना सार्थक है। अति लोभ से दुर्दशा होती है - 'अति लोभात् लोकस्य चक्रं भ्रमति मस्तके'। अतिलोभी का किस्सा विख्यात है। दरिद्र के घर कोहनूर सुशोभित और सुरक्षित नहीं हो सकता है। कुबुद्धि द्वारा कपट से अमृत पाने पर भी वह सदुपयोग नहीं करपायेगा, दुर्दशा अलग से होगी। सर्पों की जननी कद्रू का किस्सा विख्यात है। प्रकृति का नियम है कि एकाएक विकास में अहंकार और पतन होता है। शनैः-शनैः, दृढ़ भूमि पर विकास से सुयश मिलता है। इन अनुभव सिद्ध नियमों की उपेक्षा करके तात्कालिक लाभ में ही लोगों की अभिरुचि बढ़ रही है। पंगु भी आकाश में चलना चाहता है। जैसा कहा है -

मति अति नीच ऊंच रुचि आछी।

चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी।।

यही दशा है। अपराधों के भार से बोझिल और दुष्ट समर्थकों से घिरे व्यक्ति की मति सन्मार्ग पर चलने की नहीं हो सकती है। किन्तु वह भी सुयश ही चाहता है।

स्वर्ग और नर्क दोनों का स्वरूप एक नहीं हो सकता है। अमृत और विष

एक ही पदार्थ में नहीं मिलते हैं। इसलिए दुराचारी व्यक्ति से अच्छे कार्य की आशा करना मूर्खता है। उसके प्रत्येक कार्य का परिणाम दुखद होगा। आचरण ही उसके विषय में निर्णय लेने का आधार है। उसकी कथनी के प्रति बहरा और करनी के प्रति, अंधभक्त नहीं, सतर्क द्रष्टा होने में हित है। नीची मति से ऊंची इच्छा की पूर्ति करने वाले लोग खल की तरह त्याज्य हैं। उनका अभ्युदय रुलानेवाला होता है।कहा है – 'यथा मतिः तथा गतिः।' और भी -

दुष्ट उदय जग आरत हेतू। यथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू।।

हमारे पूर्वज बड़े विद्वान, समर्थ, संपन्न या कुशल थे उसके आधार पर, आज की स्थिति में, हम सम्मान और विश्वगुरुत्व नहीं पा सकते हैं। हमारा अब का मानसिक स्तर ही हमारे वर्तमान का निर्णायक है। इतिहास के आधार पर वर्तमान में मिथ्या अहंकार का प्रदर्शन हास्यास्पद और स्पष्ट पाखंड है। मति ठीक रखने पर ही सुगति मिलती है।

निष्कर्ष यह है कि कोई क्या योजना कार्यान्वित करने, किस लक्ष्य के लिए अभिरुचि प्रदर्शित करता है, ये बातें सभी तरह के लोगों में एक जैसी होती हैं। सभी कुबेर का खजाना या एल्डोरेडो तथा स्वर्णिम युग लाने का वादा करते हैं। यह बातें अविश्वसनीय हैं। मुख्य बात यह है कि वादा करने वाले व्यक्ति की जीवनी और उसका आचरण कितना पारदर्शी, सत्यनिष्ठ, समयानुकूल ,विश्वसनीय और स्वच्छ रहा है। मन और वाणी में सत्य है तभी कर्म का सुफल निकलता है। विषपान करके कोई अमर नहीं होता है, उसकी दुर्गति होती है। पाप करके पुण्य का फल चाहना, ईश्वर को नकारना या उसे अज्ञानी समझना है। इतिहास में अमर होने में सभी की रुचि होती है, उसके लिए मति (योग्यता) होनी चाहिए।

## ( 115 )

## ईश्वर का आदेश

सभी संप्रदायों का प्रमुख तत्व ईश्वर, खुदा आदि कई नामों से जाना गया विश्वास है। विश्वास अविकसित बौद्धिक क्षमता के व्यक्ति के मन को प्रभावित करके मंदिर,मस्जिद और बाह्य प्रदर्शन मे आस्था द्वारा सामान्य धर्म की प्रेरणा देता है। वही विश्वास प्रबुद्ध व्यक्ति की बुद्धि को प्रभावित करके नैतिकता केलिए आदेश देता है। सामान्य व्यक्ति में स्थूल स्वरूपों मे विश्वास होने के कारण

सांप्रदायिक कट्टरता रहती है। ईश्वर के दूसरे सूक्ष्म स्वरूप, जिसे नैतिकता का आदेश देने वाला कहा गया है, में विश्वास होने पर नैतिकता के प्रति कट्टरता होती है। नैतिकता के होने पर विवाद और असहिष्णुता की समस्याएं समाप्त हो जाती है। यह धर्म की संजीवनी शक्ति है। प्रथम कोटि के ईश्वर में विश्वास करने वालों मे मनोबल की तथा दूसरे कोटिवालों में बुद्धिबल की प्रधानता होती है। प्रेरणा और आदेश में जो अंतर है वही अंतरमनःप्रधान और बुद्धिप्रधान ईश्वर की आराधना में है। नैतिकता के अभाव में कोई भी संप्रदाय समाज को सुखी नहीं रख सकता है। बौद्धिक संयम धर्म का अनिवार्य तत्व है।

भारतीय संप्रदायों, विशेषकर सनातन धर्म में आचार व्यवहार के रूप में नैतिकता को ही प्रमुखता दी जाती रही। यह ईश्वर का आदेश है जिसे मानने वाले पर वह प्रसन्न रहता है। आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा-तुलसीदास। आज्ञा का उल्लंघन करने पर सब सेवा व्यर्थ है। आज्ञापालन की तरह ईश्वर की दूसरी शुद्ध सेवा नहीं है। बनावटी सेवा में पाखंड की अधिकता होती है। ईश्वर के स्थूल स्वरूप को ही धर्म मानने में कट्टरता होने से लाभ के साथ ही बड़ी हानि होती है और नैतिकता का हनन भी होता है। नैतिकता में दृढ़ रहने पर दूसरे को हानि देना संभव नहीं होती है, धर्म शब्द सार्थक रहता है।

अब, हिन्दुओं में कट्टरता तथा नैतिकता दोनों से रहित, तृतीय कोटि के, पाखंडपूर्ण धर्म का ही शासन व अनुशासन चल रहा है। इसीलिए पतन होरहा है। ईश्वर तथा परलोक का भय और नैतिकता का अभाव होने से आचरण मे निरंकुशता हो रही है। विश्वसनीयता कहीं नहीं है। कृतघ्नता, असत्य, अन्याय आदि सारे घोर अपराध भी पाखंडी धर्म की आड़ में क्षम्य हो गये हैं। ऐसी स्थिति में सशक्त व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए कोई भी जघन्य अपराध कर सकते हैं। धर्म का रहस्य उपेक्षित होने के कारण अनैतिक तथा अविश्वसनीय व्यक्ति पर विश्वास करने वाले लोभी, गरीब, अनपढ़, भयाक्रांत तथा मूढ़ बहुतेरे हैं।

नैतिकता जटिल प्रत्यय नहीं है। तार्किक लोगों ने अपने पक्ष का पोषण करने या बौद्धिक मनोरंजन के लिए इसे जटिल बना दिया है। अच्छाई का मार्ग संकीर्ण किन्तु सीधा है।जान बनियन ने पिल्ग्रिम्स प्राग्रेस में यही कहा है - path of riteuosness is narrow but straight. नैतिकता की सूक्ष्मतम व वस्तुनिष्ठ परिभाषा है – 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् या जियो और जीन दो'।

जीने के लिए आचार-विचार और जीने देने के लिए क्षमा, परोपकार, सहयोग, विश्वसनीयता आदि गुणों से युक्त व्यवहार अपेक्षित हैं। पूर्ण व्याख्या करने पर नैतिकता की स्पष्ट परिभाषा इन्ही सूत्रों से मिल जायेगी। नैतिकता की व्यक्तिनिष्ठ परिभाषा स्वार्थपरक और सदोष होती है। वस्तुनिष्ठता से ही उसकी विश्वासनीयता है। ऐसी नैतिकता ही ईश्वर का आदेश और धर्म का आधार है।

## ( 116 )

## कोढ़ में खाज

किसी भी तरह का आरक्षण समाज और प्रशासन के लिए अहितकर है। कमजोर को संरक्षण देने और योग्य बनाने के लिए नियम और योजना बनाना ही तर्कसंगत हैं। संविधान में जाति के आधार पर आरक्षण देशव्यापी कोढ़ है। अब लिंग के आधार पर आरक्षण कोढ़ पर खाज – 'ब्रणस्योपरि विस्फोटः' है।

महिला प्रधान और प्रधानपति की तरह सांसद और सांसदपति, मंत्री और मंत्रीपति आदि होने से बेकारी की समस्या कम होगी। अंग्रेजों की गुलामी को हमारे नेता, वोट बैंक बनाने के लिए, दूरदृष्टि ही नहीं दिव्यदृष्टि का स्रोत मानते हैं। अब भी पश्चिम को ही आदर्श मानने की आदत है। महीने में एक दो पश्चिम का दौरा किये बिना वे सम्मानित नहीं महसूस करते हैं। यह भारतीय नेता की विशेषता है। किसी न किसी रूप में गुलामी बनी है। वोट की राजनीति का परिणाम देश भोग रहा है।

स्वाभिमान और अपनी संस्कृति का स्मरण करने पर ही कल्याण है।

## ( 117 )

## सुख की खोज

कामनाओं की प्राप्ति में सुख मिलता है। भौतिक साधनों में सुख की खोज प्रायः सभी करते हैं। कामनाओं का अंत नहीं है। यदि समस्त भौतिक कामनाओं की सिद्धि हो भी जाय तो अंतिम कामना अमरत्व व स्थायित्व होने की पूर्ति असंभव है। वह सुख देशकाल से बाधित रहता है। अनंत सुख की आशा नहीं रहती है। अभिनिवेश (नष्ट होने के भय) से आक्रांत सुख भी दुख ही है। अतः हमारे ऋषिमुनि लोगों ने विशिष्ट प्रकार के अनंत सुख तथा उनके भी साधन,

युगानुकूल योग्यता के अनुसार बताया है।

प्रथम कोटि का साधक अब दुर्लभ है। वह स्वभावतः संन्यासी है। उसे वेश बदलने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञाननिष्ठा से अकाम, ज्ञातव्य से निरपेक्ष, निःसंग, निःशंक, सच्चिदानंद स्वरूप की आत्मानुभूति होने पर - जीवन्मुक्त, योगस्थ, आत्मनिष्ठ, सन्यस्त, स्थितप्रज्ञ, समाधिस्थ, निष्प्रपंच, शांत, शिव, अद्वैत आदि अनेक नामों से अभिहित सिद्ध पुरुष सुखी होता है। यह आनंद अनुभूति का विषय नहीं, उसका स्वरूप ही हो जाता है। इसमें किसी बाह्य सहायता की आवश्यकता नहीं रहती है। बाह्य साधनों से नहीं आत्मनिर्भरता से स्थायी सुख संभव है। इसी के लिए कहा है -

सर्वं परवशं दुखं सर्वं आत्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुखयोः।।

द्वितीय कोटि का साधक वैदिक कर्मयोग में निष्ठावान होता है। संग्रह नहीं त्याग से सुख संभव है।इसी सुख के लिए ब्राह्मण त्यागी, संन्यासी होता था। वैदिक कर्मयोग के द्वारा ज्ञान और वैराग्य ही इस मार्ग के लक्ष्य हैं।

ब्राह्मण के लिए जो सन्यास था, क्षत्री के लिए वही योग था, ऐसा गीता से प्रमाणित होता है।

एवं परंपरा प्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप।।

अर्जुन क्षत्री वर्ण के थे अतः उनके द्वारा श्रेयस्कर की जिज्ञासा करने पर, ‘कर्मयोगो विशिष्यते’ कहकर उन्हे कर्मयोग का ही उपदेश दिया गया है। संतुष्ट करने केलिए योग और संन्यास दोनों में वास्तविक अभेद भी बताया गया है।

यं सन्यासमिति प्रोक्तं योगं तं विद्धि पांडव।
न ह्यसन्यस्त संकल्पः योगी भवति कश्चन्।।

संन्यास श्रेष्ठतर होते हुये दुस्साध्य है। इस वास्तविकता का भी निरूपण गीता में ही है।

सन्यासस्तु महाबाहो दुखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म अचिरेणिधिगच्छति।।

गीता में स्वधर्म सब के लिए उपदिष्ट है। विशेष रूप से वैश्य व शूद्र या गृहासक्त सभी के लिए स्वधर्म ही उपास्य है। वैदिक कर्ममार्ग और गीता में सुख के यही साधन उपदिष्ट हैं।

सन्यास का अधिकार सब को नहीं था। यह केवल कामनारहित, वैराग्यवान ब्राह्मण वर्ण के लिए था, ऐसा गीता से सिद्ध होता है। गीता के अलावा अन्यत्र भी इसके प्रमाण हैं। मनुस्मृति 6/38 में है—'ब्राह्मणः प्रव्रजेत् गृहात्'। 'ब्राह्णणाः प्रव्रजन्तीति श्रुतेः' मिताक्षरा। 'चीर्णे वेदव्रते विद्वान् ब्राह्मणोमोक्षमाश्रयेत्' अंगिरा। राजर्षियों की परंपरा के मनु ने भी सन्यास नहीं लिया था। शतरूपा के साथ वानप्रस्थ आश्रम में रहे। उनकी कामना शेष थी जिसे तप करके पूर्ण किया। पात्रता के अनुसार, यही सब सुखी रहने के साधन रहे हैं।

कालान्तर में अपने समय की आवश्यकता को देखते हुए, आचार्य शंकर ने दशनामी संप्रदाय के सन्यास की व्यवस्था दिया है। इसमें भी अधिकारी भेद से अलग अलग नाम हैं। आचार्यपाद ने वैराग्य और ज्ञान होने पर मोक्ष का अधिकार सब को स्वीकार किया है।

वर्तमान में इस विषय को और सरल करने की आवश्यकता है। संन्यास का अधिकारी दुर्लभ है। इसीलिए इसे कलिवर्ज्य भी माना जाता है। संन्यासी ही नहीं फकीर, संत, राजर्षि आदि शब्द, यहाँ तक कि अनेक प्रकार की वर्तमान राजकीय उपाधियां, पद-प्रतिष्ठा, बहुतेरे मठाधीश आदि तथा जनमानस को प्रभावित करनेवाले विशेषण कलिवर्ज्य होने चाहिए। आपाततः सब अविश्वसनीय और उपेक्षणीय हैं। ऐसे तथाकथित सुखी लोग लोक में निंदित हैं।।किसी विशेषण के लिए योग्य व्यक्ति नहीं है, और हैं भी तो ईमानदार होने के कारण वह उपेक्षित या अधीनस्थ है। अब सत्यनिष्ठा, उदार भावना, न्यायप्रियता जैसे उदात्त गुणों को आचरण में प्रमाणित करने वाले ही आदरणीय मानने योग्य हैं। उन्हीं का अनुकरण करने से सुखी रहना संभव है। उससे भी सरल विधि है कि हम हृदय से स्वच्छ, आचरणव्यहार मे निश्छल और संतुष्ट रहें। स्वधर्म का पालन करें। ईर्ष्यालु से बचने केलिए अपने सुख का प्रदर्शन न करें।यह सुख अपने वश में है। वही पुरानी बात 'सर्वं आत्मवशं सुखम्', अब भी सही है।

## ( 118 )

## सनातन धर्म का लक्षण

सनातन का अर्थ है स्थायी या शाश्वत। देशकाल से सीमित पदार्थ स्थायी नहीं हो सकता है। सार्वभौम, सार्वकालिक और सार्वजनिक ही सनातन है। जो ऋत और सत्य है वही सनातन है।

जिस धर्म का विरोध किसी आचार्य नहीं किया, जो मौलिक रूप में सर्वमान्य है, सभी संप्रदायों को आवश्यक है, वह सनातन है। वैदिक सनातन धर्म का लक्षण यही है। इस धर्म में भारत का एकाधिकार नहीं है। ऋषियोंके माध्यम से यहां पर अवतरित, चिर काल से प्रतिष्ठित और सार्थक होने के कारण इसे भारतीय कहते हैं।

धर्म के सनातन तत्व अपरिवर्तनीय हैं। समयानुसार परिवर्तनीय तत्व जोड़े जाते हैं किन्तु इन्हें सनातन तत्व को प्रभावित नहीं करना चाहिए अन्यथा अधर्म और पाखंड का प्रवेश हो जाता है। विभिन्न संप्रदायों मे सनातन तत्व एक है। इस धर्म की सुरक्षा के लिए ऋषियों द्वारा बनाए नियम भी सनातन धर्म के अंग हैं।

केवल सनातन तत्व से समाज जीवंत रह सकता है किन्तु इनके अभाव में, केवल अस्थायी तत्वों से नहीं। धर्म के सनातन स्वरूप में सत्य, न्याय, सहयोग, आदान प्रदान, प्रकृति व ईश्वर के नियमों का आदर, लोकपरलोक को महत्व देना, तपस्या व साधना, कर्मवाद, उदारता आदि और आवश्यक तत्व हैं। परिवर्तनशील स्वरूप में उत्सव, त्योहार, मंदिर, मेला, जुलूस, मनोरंजन, लीला-नाटक, कथा-वार्ता आदि परिवर्तनीय व ऐेक्षिक हैं। ऐेक्षिक अंश में ही विवाद और पाखंड का प्रवेश होता है। इसमें नये-नये कार्यक्रम जुड़ते जाते हैं।

इस समय भारत में सनातन धर्म का मूल स्वरूप अल्प मात्रा में अवशिष्ट है। परिवर्तनीय अंश ने ही उसे आक्रांत कर लिया है। इसीलिए अब सनातन की जगह हिन्दू धर्म के रूप में एक नया संप्रदाय बन गया है। यह स्वरूप, पाखंड की बहुलता के कारण, विदेशी संप्रदायों से भी कई तरह से हीन है। अमेरिका जैसे देश में सत्य का आदर यहां से अधिक है। वहां झूठ बोलने वाले ट्रंप जैसे राष्ट्राध्यक्ष भी अपदस्थ करके जेल भेजे जा सकते हैं। आश्चर्यजनक है कि यहां झूठ बोलने के व्यवसायी ही राजनीति में सम्मानित हैं और बहुमूल्य धर्म निर्मूल्य

हो गये हैं। इसके लिए धर्म का राजनीति के वश में रहकर संचालित होना ही कारण है। इससे अंधभक्ति का भी प्रकोप बढ़ रहा है।

आजकल ब्राह्मण धर्म के नाम से कहेजाने के कारण सनातन धर्म का विरोध हो रहा है। वैदिक, सनातन और ब्राह्मण शब्दों से परहेज हो तो मानवीय और सार्वभौमिक नैतिक आचरणव्यहार के नियम के रूप में ही इस धर्म में सर्वसम्मति हो सकती है। इसे मानने पर धर्मपरिवर्तन आदि की समस्या नहीं रहेगी।

सनातन धर्म भारत देश में अमर मानना कुतर्क व दुराशा है। यह ब्रह्मलोक में अमर है। कोई पदार्थ नष्ट नहीं होता है। नई सृष्टि होने पर पुनः वेद और सनातन धर्म किसी पवित्र क्षेत्र (देश) में यथापूर्व प्रगट होते हैं। इस अर्थ में धर्म को सनातन कहा जाता है। वेद का अवतरण स्थल होने की गरिमा बनाये रखने के लिए भारत भूमि को सनातन धर्म के पालन से पवित्र बनाये रखना देश प्रेम, संस्कृति का संरक्षण और मानवता की रक्षा है।

## ( 119 )

## अंधभक्ति और उसका उपचार,

किसी व्यक्ति या सिद्धांत के विषय मे, अप्रमाणित तथ्यों के आधार पर, बिना परीक्षण के एक दृढ भावना बनालेना और स्पष्ट तथ्यों तथा तर्कों को भी न मानना अंधभक्ति या अंधविश्वास कहा जाता है।यह एक मनोरोग है जो अविकसित बुद्धि के कारण पैदा होता है।विकसित मस्तिष्क वाले व्यक्ति को अंधभक्ति का प्रश्न ही नहीं, उसे विश्वास भी बहुत परीक्षण के बाद ही होती है।

अंधभक्ति शब्द का प्रयोग कुछ क्षेत्रों में पहले भी होता था किन्तु इस वाइरस का प्रवेश राजनीति में होजाने के कारण इस समय बहुचर्चित होगया है।राजनीतिज्ञ, धर्माचार्य, समाज सेवी, धर्मगुरु, शास्त्रार्थी, धर्म परिवर्तक व प्रवर्तक, करिश्माई, जुमलेबाज, पाखंडा (कुतर्क से बुद्धि का सम्मोहक), प्रचारतंत्र के व्यवसायी यह अंधभक्ति के प्रमुख क्षेत्र व साधन हैं।धर्म और राजनीति इन सभी क्षेत्रों में अनुप्रविष्ट हैं।अतः इन्हीं दोनों पर चर्चा की जारही है।

इस समय सनातन धर्म में पाखंड का ही वर्चस्व है।अंधभक्ति के प्रकोप से शास्त्रीय धर्म लुप्तप्राय है।जिसने किसी धर्म के विषय में कुछ भी नहीं पढ़ा वह

उपदेश देता है और शास्त्रार्थ करने को उद्यत है।चरितार्थ होरहा है-

मारग सोइ जाकहं जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।।

मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहं संत कहइं सब कोई।।

अब सनातन धर्म की जगह हिन्दू धर्म कहा जाता है जिसमें संस्कार, आचार व्यवहार और समाज को धारण करने की क्षमता को नहीं, मनोरंजन और बाह्य कलेवर को ही महत्व दिया जारहा है। हिन्दू कोई धर्म नहीं रहा है।धर्म सनातन है, जिसकी प्राचीन महत्ता में अब भी संदेह नहीं है। इस समय धार्मिक आधार पर भविष्य केलिए भूत का अनुकरण करने से लाभ होगा। इसी गर्हित वर्तमान में गौरवान्वित भूत को देखना मिथ्याहंकार व पाखंड है, जो अंधभक्ति के कारण है। जिन गुणों के कारण भारत महान था उनकी निन्दा और उन्हीं को वर्तमान समस्याओं का कारण कहनेवाले, नवीन धर्मप्रवर्तक मूर्खों की संख्या बढ़ती जारही है। सनातन धर्म लुप्तप्राय है। उसकी जगह मनमानी हिन्दू धर्म में अंधभक्ति का प्रकोप बढ़ रहा है।

सबसे भयंकर राजनैतिक अंधभक्ति है। इसका विस्तार सर्वातिशायी होगया है। लोकनीति और धर्मनीति भी इसी मे समाहित होचले हैं।राजनीति के संरक्षण में हिन्दुत्व के सांम्प्रदायिक स्वरूप जिसमें मंदिर, मेला, जुलूस, देवदीवाली जैसे नये-नये उत्सव, यात्रा, मन पसंद इतिहास तथा सम्प्रदाय विशेष का विरोध मुख्य हैं, प्रचारित होरहे हैं। इन सब का लक्ष्य वोट का ध्रुवीकरण और सत्ता लाभ है।। इससे धर्म, संस्कृति, समाज या हिन्दुत्व किसी को लाभ नहीं है। देश अंधभक्ति के नाम पर अंधेरे में गिरता जा रहा है।

प्रजा (जनता), देश, राजधानी, कोष, दंड (न्याय), बौद्धिक संपदा, और ताज यह सभी राजधर्म में रक्षणीय हैं। इस समय केवल ताज (सत्ता) के संरक्षण केलिए ही अन्य सब अंगों का उपयोग होरहा है। शिक्षा और नैतिकता निर्मूल्य हो गये हैं जिससे चतुर्दिक् पतन हो रहा है। अंधभक्तों को हिमालय स्वरूप बड़ी समस्या भी नहीं दिखाई पड़रही है। धर्म ही नहीं देश खतरे में है। जाति, क्षेत्र, भाषा, संप्रदाय के आधार पर आरक्षण, संरक्षण और तुष्टिकरण से देश कई तरह के संगठनों व समाज में विभक्त है जिनसे संघीय प्रणाली संकट में है। यह संविधान व शासन में नीतिगत दोषों का परिणाम है। राजधर्म मे संम्प्रदाय विशेष

का वर्चस्व बौद्धकाल से ही घातक सिद्ध हो चुका है। स्वार्थी राजनीतिज्ञों और अंधभक्तों को वह इतिहास नहीं दिखाई पड़रहा है। देश बेरोजगार और संस्कारहीन नवयुवकों से बोझिल है। रोग असाध्य होता जा रहा है। निवारण का उपाय है लेकिन कठिन हो चला है।

मन को सदाचार द्वारा संयमित और बुद्धि को सत्संग और शास्त्र से निर्मल करने पर अंधभक्ति रूपी भ्रमात्मक रोग समाप्त होता है। विवेक होने पर अनैतिक आचरण समाप्त होजाता है। शास्त्रसम्मत तर्क और विवेक रोगनिवारक अंजन हैं।यह व्यक्ति स्तर तक कहीं कहीं रहगई हैं।सामाजिक स्तर तक यह ओषधियां प्रत्यक्ष कराने के लिए राजनैतिक अंधकार को समाप्त करना होगा। शिक्षा द्वारा संस्कार व नैतिकता को दृढ़ करने पर अगली पीढ़ी के द्वारा अंधभक्ति का समापन और देश की प्रगति संभव है। शीघ्र प्रकाश फैलाने और परिवर्तन के लिए युगपुरुष ही सक्षम होगा।

## ( 120 )

## सहज और समर्थ शुभचिंतक

### सिद्धांत,

मातापिता को सहज शुभचिंतक माना जाता है। सदिच्छाओं की पूर्ति करना और हानिकारक इच्छाओं से विरत करना शुभचिंतन है। माता-पिता ऐसा करने का प्रयास करते हैं। कभी-कभी कर्ण, कबीर आदि के माता-पिता की तरह के लोग असमर्थता या किसी अन्य कारण से वे सहायक नहीं रह जाते हैं।समर्थ सहज शुभचिंतक एकमात्र ईश्वर है। वह ईश्वर भी एकरस शुभचिंतक नहीं रहता है। सदाचार द्वारा उसकी आज्ञा का पालन करने पर वह पुरस्कार द्वारा शुभचिंतक होता है। आज्ञा पालन न करने पर दंड देकर शोधन द्वारा उपकारक होता है। ईश्वर सत्य है और न्याय उसका सहज कार्य है। ऐसी व्यवस्था में विश्वास करने पर यह संसार भी सत्याश्रित रहकर जीने और साधना का क्षेत्र बनाने योग्य है।

किसी प्रयास में असफल करके ही नहीं, उसमें सफल करके भी ईश्वर दंड देता है।इसीतरह असफल या सफल करके भी वह हितकारी बना रहता है। सफलता या असफलता को ईश्वरीय सहायता का द्योतक नहीं माना जाता है। हमारी इच्छा हानिकर हो सकती है, ईश्वरेच्छा ही शुभ है। सन्मार्ग पर रहने को

विवश करना उसका उपकार है। उसकी योजना अज्ञेय है।यह बातें दैनिक व्यवहार में अनुभव करने केलिए सभी को मिलती रहती हैं।

अपना अनुभव,

बहुधा, मैं जिस प्रयोजन के लिए प्रयास करता हूँ वह नहीं करपाता हूँ और उसकी जगह अप्रत्याशित कार्य हो जाता है। कोई फल बिना कर्म किए नहीं मिलता है, किन्तु उसमें किसी की अहैतुकी सहायता और ईश्वरीय योजना के मिश्रण से निर्गत फल निर्धारित लक्ष्य से कुछ भिन्न रहता है। ऐसी सफलता दैवी प्रसाद है। हमारी जीवनचर्या मनसावाचाकर्मणा एक रूप नहीं है। मानसिक स्तर पर अनेक दुर्भाव आते हैं, वाचिक स्तर पर बहुत कम हो जाते हैं और कायिक स्तर पर कोई अनैतिक कार्य नहीं होता है। यथासमय सद्बुध्दि जाग्रत होने पर दुर्भावना के लिए खेद होता है। तब ईश्वरीय सहायता की अनुभूति होती है। सद्भावना और विवेक बुद्धि होने पर ईश्वरीय अनुग्रह सबको होता है। एक अनुभव प्रस्तुत है।

सामाजिक कार्यों में स्वाभाविक रुचि के कारण श्री भुवनेश्वरी विद्याप्रतिष्ठान नामक एक संस्था सन् 1981में स्थापित किया है। भारतीय संस्कृति, लोकनीति, सत्याश्रित न्याय, पाखंड से मुक्त सनातन वैदिक धर्म तथा संबद्ध विषयों पर चिंतन, लेखन तथा उनकी प्रतिष्ठा करना मुख्य उद्देश्य है। भ्रष्टाचार तथा राजनैतिक गतिविधयों के कारण इसमें अभीष्ट प्रगति नहीं हो रही है। ऐसी दशा में राजनीति को ही मुख्य बाधक समझते हुए, उसका शोधन करने के लिए एक नैतिक राजनैतिक संगठन का गठन करने का प्रयास शुरू किया। आरंभ में साथियों और प्रबुद्ध लोगों ने उत्साह दिखाया। एक दो वर्ष में कुछ प्रगति हुई लेकिन करोना का प्रकोप होने से दो तीन वर्ष कार्य बाधित रहा। तब तक में पंजीयन संबंधी कागजात और पर्याप्त साहित्य तैयार कर लिया। पुनः कार्य आरंभ करने पर सारे सहयोगी हतोत्साहित दिखाई पड़े। सक्रियता नहीं आर्थिक सहयोग मात्र की आशा रह गई। ईसामसीह के शिष्यों की तरह, सबने साथ छोड़ दिया। विचित्र अनुभव हुआ। इस कार्य केलिए योग्य सक्रिय सहायक अनिवार्य हैं। अकेले नहीं हो सकता है। कई वर्ष का हमारा परिश्रम व्यर्थ हो गया। तब अपनी सहज नियति का भी स्मरण हुआ। सर्वं परवशं दुखम् का भी अनुभव हुआ। सारी योजना को किसी अज्ञात समर्थ और नैतिक व्यक्ति की प्रतीक्षा में स्थगित कर दिया है।

राजनैतिक संगठन नहीं बनपाया किन्तु जिन उद्येश्यों के लिए उसे बनाना चाहता था उन पर साहित्य के लेखन और प्रकाशन में व्यस्त होने से अप्रत्याशित और स्थायी काम होचला है। इस आयु में परधर्म मे जाने और कार्य के लिए आतुर होने से किसी बंचक व्यक्ति का साथ हो जाने पर लोकनिन्दा से बचाकर स्वधर्म तक सीमित रखना ईश्वर का आशीर्वाद है। लोगों का असहयोग भी ईश्वर का शुभचिंतन है। उसकी इच्छा हो जायेगी तो हमारे परिश्रम का सदुपयोग होगा। हमारे जीवन के अनुभवों में यह भी, पुराने तरह का, एक प्रकरण है।

सार्वजनिक पक्ष में,

व्यक्ति की भावना और बुद्धि का शोधन सत्संग, शास्त्राध्ययन या विशेष घटना में अनुभव से होता है। विवेकबुद्धि होने पर ईश्वर शुभचिंतक बना रहता है। समष्टि के लिए भी ईश्वर वही है। समाज या देश की मानसिकता का शोधन करने के लिए धर्माचरण, विशेषतः परस्पर व्यवहार में सत्य, न्याय, नैतिकता व विश्वास का होना आवश्यक है। जब इन गुणों का लोप होता है तो झूठ और पाखंड से समाज व देश में अनेक समस्याएं पैदा होती हैं। इन समस्याओं का कारण अनैतिक राजा ही होता है। उसका नियंत्रण करने केलिए ईश्वर कोई विशेष घटना करता है, या युगपुरुष पैदा करता है। युगपुरुष प्रत्येक देश में होतेरहे हैं। 'धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे।' - गीता। मनुष्य से आशा छोड़कर, असहाय होने पर ईश्वर सहायक होता है। जनमानस का शोधन करके निर्धारित मानदंडों को स्थापित करना युग पुरुष का कार्य है।

कर्म के अनुसार फल देने वाला ईश्वर व्यक्ति का ही नहीं, जाति, समाज और देश का भी सहज व सक्षम शुभचिंतक है। जनमानस का प्रेरक वही है। उसकी व्यवस्था में जनजागरण के द्वारा लोकनीति का शोधन और राजनीति पर नियंत्रण करना सामाजिक संगठन द्वारा भी संभव है। अन्याय का विरोध, आत्मरक्षा, बुरे व्यक्ति और असंगत कानून का बहिस्कार आदि करना सबका अधिकार और कर्त्तव्य भी है। इसके लिए राजनैतिक संगठन आवश्यक नहीं है। राजनीति पर लोकनीति का ही नियंत्रण होता रहा है। लोक को जाग्रत, स्वतंत्र और सक्षम बनाना ही मुख्य उद्देश्य है। सुशिक्षित, उत्साह संपन्न व नैतिक नवयुवकों का आगे आना ईश्वरीय सहायता का लक्षण होगा। यही उपाय पर्याप्त हो सकता है।

इस समय राजनीति की काली कोठरी में प्रवेश करना निन्दास्पद है। उसमें बहुमूल्य स्यमंतक मणि को रखने वालों का पर्दाफाश होकर रहेगा। कर्मवाद के वैज्ञानिक सिद्धांत को जानकर विश्वास दृढ़ रहता है। विश्वास बना रहे तो सन्मार्ग पर रहकर स्वधर्म का पालन करना व्यक्ति, समाज तथा देश ,सब केलिए हितकर है। यही समर्थ शुभचिंतक ईश्वर का आदेश है। अपने द्वारा प्रवर्तित सृष्टि के नियमों का संरक्षक भी वही है। बड़ों का स्वभाव है कि वे दंड देने के बाद अनुग्रह करके शुभचिंतक बने रहते हैं। तुलसीदास ने यही कहा -

नाथ बड़न कर इहइ सुभाऊ। सांसति करि पुनि करइं पसाऊ।।

ईश्वरीय योजना में दंड तब तक दिया जाता है जब तक कुमार्ग पर रहने का पश्चाताप और उसे छोड़ने की भावना न उत्पन्न हो जाय। बुद्धि और भावना का शोधन ही ईश्वर का शुभचिंतन है। परिस्थिति में सुधार किसी निश्चित समयावधि के बाद स्वतः नहीं हो जाता है बल्कि भावना व बुद्धि के शोधन पर्यन्त वह बनी रहती है। अतः, प्रतीक्षा न करके, शुभ काम को यथाशीघ्र आरंभ करना श्रेयस्कर है।

## ( 121 )

## सत्यं शिवं सुन्दरम्

ईश्वर के प्रत्यक्ष रूप के लिए सत्यं शिवं सुन्दरं और अप्रत्यक्ष रूप केलिए सत् चित् आनंद विशेषण माने जाते हैं। दोनों में ऐक्य होने पर भी बाह्य और आंतरिक क्षेत्र के आधार पर अलग अलग जानना पड़ता है। सृष्टि के बाह्यरूप केलिए सत्य ही बीज और मेरुदंड है, शिव ही शुभत्व और चैतन्य का प्रकाशक है और सुन्दर ही बाह्य आकर्षण का स्रोत है। आन्तरिक रूप के लिए सत् ही ब्रह्म है, चित् ही ईश्वर है और आनंद ही आत्मा है। जीवात्मा अपने स्वभाव और प्रारब्ध के अनुसार एक ही शरीर में दोनों रूपों का सेवन करता है।

आनंद से ही सृष्टि का उद्भव होता है। आनन्दात् हि एव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। तैत्तरीयोपनिषद्, 3/6/1।। इस सृष्टि का वाह्य आकर्षक स्वरूप अनंत आकाश में व्याप्त प्रकृति और उसके सौन्दर्य में है। आन्तरिक आकर्षण हृदयाकाश में स्थित आत्मतत्व में है। आत्माराम व्यक्ति बहुत दुर्लभ है। चित् और सत् ही उसके लिए रक्षक और रक्षणीय हैं। हृदयाकाश में ही नहीं महाकाश तथा

समस्त सृष्टि में आनंद तत्व का अंश व्याप्त रहता है। सौंदर्य में भी वही आनंद कुछ मिलता है। उसी आनंद में लोक जीवित रहता है तथा उसी में प्रवेश करजाता है। 'आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।' ऐसा तैत्तिरीय उपनिषद् के पूर्वोक्त मंत्र में है।

सुन्दरम् और प्रकृति के विलास में जड़-चेतन सभी सहभागी हैं। व्यक्ति तथा समाज इसी सौंदर्य से सम्मोहित रहते हैं। कामेच्छा का संबंध सौंदर्य से निकटतम और प्रबलतम होता है। शुद्ध सौंदर्यप्रेमी की विशेषता होती है कि वह रसज्ञ होकर संबंध का आजीवन निर्वाह करता है। शृंगार रस को रसराज माना गया है। बसंत ऋतु, चंद्रमा, वनोपवन, अनेक प्रकार के प्राकृतिक सौंदर्य उसी रसराज की अनुभूति कराते हैं। काम ऐसी वासना है जिसकी रक्षा केलिए क्रोध की भावना सद्यः प्रबल होती है। सामान्य व्यक्ति ही नहीं बड़े बड़े कलाकार और साधक भी सौंदर्य के वशीभूत हो जाते हैं। सौंदर्य का प्रेमी कलाकार हो जाता है। शेक्सपीयर ने संगीत को प्रेम का भोजन कहा - इफ म्यूजिक बी फूड आफ लव, प्ले आन।वाजिद अली शाह संगीतज्ञ भी था। गंगालहरी के रचयिता पंडितराज जगन्नाथ का सौंदर्यबोध प्रसिद्ध है। एक सुन्दरी के लिए सर्वस्व निछावर कर दिया। कवि जयदेव ने सांसारिक और पारमार्थिक दोनों प्रेम को एक ही जगह करने का प्रयास स्वयं स्वीकार किया है। उन्हीं ने लिखा है-

यदि हरिस्मरणे सरसं मनः, यदि विलासकलासु कुतूहलम्।

मधुर कोमलकांत पदावलीं श्रृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्।।

इसी तरह रासपंचाध्यायी, कृष्णकर्णामृत जैसी कई रचनायें हैं जिनमें सौंदर्य को उभयात्मक बनाने का प्रयास है। वास्तविकता यही है कि इनका मुख्य प्रभाव सौंदर्यबोध ही है। दूसरा पक्ष बतानेवाले गुणग्राही विद्वान स्वतः समझते हैं किन्तु सामान्य व्यवहार के लिए, उनकी व्याख्या उपेक्षणीय व प्रदर्शनमात्र बनकर रहजाती है।एक म्यान में दो तलवार नहीं रहती हैं। इसी तरह खजुराहो के शिल्प और सुन्दर कलाकृतियों मे कामकला तथा देवताओं की मूर्तियां भी हैं। इन सबका प्रभाव सौंदर्यबोध ही है। अधिकांश लोग इसी में जीवन की सार्थकता समझते हैं।

सत् ,चित्, आनंद प्रच्छन्न रहते हैं। सत्यं में सत्, शिवं में चित् और सुन्दरं में आनंद तत्व निहित हैं। सत् चित् आनद तत्व हैं और सत्यंशिवंसुन्दरम् उनके

प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। तत्व के रूप में सच्चिदानन्द की उपासना से परलोक और प्रत्यक्ष स्वरूप में सत्यंशिवंसुन्दरम् की उपासना से लोक की सिद्धि होती है।

सुन्दरम् से प्रेरित लौकिक व्यवहार में सत्यानृत के प्रयोग से समाज में प्रदूषण भी होता रहता है। अतः रक्तसंचार की क्रिया की तरह समाज का भी अनवरत शोधन आवश्यक है अन्यथा बुद्धिनाश का क्रम आरंभ होता है। बुद्धितत्व के दुर्बल होने पर सारी संपदा व्यर्थ है। 'अमेधसो हि श्रीरनर्थायैवेति' -आचार्य शंकर। सत्य और शिव ही सुन्दरम् के शोधक हैं। सुन्दरम् से वैराग्य होने पर, सत्य और शिव का उपासक सच्चिदानन्द का प्रेमी हो जाता है।

आंतरिक और बाह्य के भेद के अनुसार, साधक केलिए क्रमशः सत् या सत्य हृदयाकाशष में व्याप्त आत्मतत्त्व है, चित् या शिव मस्तिष्क है और आनंद या सौंदर्य हृदय है। आनंद या सौंदर्य की उपासना से आरंभ करके चित् या शिव की सहायता से सत् या सत्य ही प्राप्तव्य हैं। आनंद से आत्मतत्व में अनन्त के प्रति प्रेम होता है। इसका उपासक अनंत, अद्वैत की सिद्धि प्राप्त करता है। सुन्दरम् के नामरूप वाले प्रेम में द्वैत रहता है। इसका उपासक अपने उपास्य से सालोक्य या सायुज्य की सिद्धि प्राप्त करता है। लोक और परलोक दोनों को सिद्ध करने वाला मुक्तपुरुष कुल को पवित्र कर देता है।

## ( 122 )

## व्यवहार हेतु परामर्श,

## दोषगुण-दर्शन,

व्यवहार जगत में दोषगुण दोनों देखना पड़ता है। 'संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने।।' संत प्रकृति, आत्मकेन्द्रित स्वभाव हो तो ईश्वर का आदेश और अपने दोष मात्र देखना पर्याप्त है।

अच्छे दुश्मन की अच्छाई और उसकी कमजोरी, दोनों जानने का प्रयास करना चाहिए। अच्छाई को ग्रहण करना और कमजोरी पर प्रहार करना सुनीति है। प्रह्लाद से शील सीखने के लिए इन्द्र ने याचना किया था।

### जातीय स्वाभिमान

अपने यहां, बहुत लोग कहते हैं कि जाति का कोई महत्व नहीं रहगया

है।लेकिन वे भ्रम में हैं। सारा प्रशासन जाति पर आधारित है। सामाजिक संबंधों मे अधिकांशतः जातीय पहचान है। व्यक्ति केलिए सबसे महत्वपूर्ण हैं कुलपरंपरा बचाना , वर्णसंकरत्व रोकना और अपना स्वाभिमान। इनके बिना अपने सामाज में कटी पतंग की दशा होती है। जाति के नाम से ही व्यक्ति उपर्युक्त गुणों केलिये प्रेरणा प्राप्त करता है। 'ब्राह्मणस्य शरीरोयं क्षुद्र कामाय नेष्यते' का स्मरण होने पर ब्राह्मणत्व केलिए इच्छा जाग्रत होती है। जाति का स्मरण स्वधर्म से विचलित नहीं होने देता हैं। केवल जाति के आधार पर मिथ्याभिमान निन्दनीय और गुणग्राही होने पर स्वाभिमान प्रशंसनीय है।

**पूज्यता**

नामरूप नहीं ,गुण और स्वभाव पूज्यता की पात्रता देते हैं।' गुणा पूज्यस्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।' मंदिर में नाम रूप नहीं भावना की स्थापना होती है।भावना और गुण से संपन्न साधक देवता की प्रतिष्ठा करता है। संस्थापक की योग्यता में कमी होने पर किसी भी नाम और रूप में असुर की प्रतिष्ठा अपने आप होजाती है। देवत्व के गुण न होने पर पूज्यता समाप्त हो जाती है। प्रकाश के लिए उपाय करना पड़ता है, अंधेरा स्वतः आता है। देवता या असुर सब को अपने क्षेत्र में स्वतंत्र रहने का अधिकार होता है।

**ईश्वर की मान्यता**

हर व्यक्ति का ईश्वर अलग-अलग होता है। भूत-प्रेत से लेकर ब्रह्म तक में ईश्वरत्व का भाव रखनेवाले होते हैं।अपने स्वत्व के अनुसार ही भावना करना संभव है। धनी आदमी, सशक्त व्यक्ति, सम्मोहन और प्रपंच करनेवाले या अभूतपूर्व कार्य करने वाले से अभिभूत होकर उन्हें ईश्वर मान लेना अंधभक्तों केलिए सहज है। ऐसे लोग ईश्वर को भी सामान्य या निम्नस्तरीय प्राणी बना देते हैं। विवेकसंपन्न व्यक्ति अपने स्वत्व को सर्वोपरि रखने में सक्षम होता है। वह किसी शरीरधारी का सही आकलन कर सकता है। किसी के व्यक्तित्व से आक्रांत नहीं होता है। बाल्मीकि ने राम को महामानव और मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में प्रस्तुत किया है। राम जैसी विभूति को अवतरित करने वाले अनंत ब्रह्माण्ड नायक की महिमा और उनके ईश्वरत्व को महामुनि ने राम के चरित्रचित्रण से ही प्रतिष्ठित किया है। ईश्वर का स्वरूप जानने केलिए आर्ष साहित्य में श्रद्धा आवश्यक है।

## ( 123 )

## ब्राह्मण का उत्तरदायित्व

शासन और समाज दोनों में जातीय पहचान का महत्व अब भी बना हुआ है। जातिप्रथा का जितना विरोध हो रहा है, इसकी जड़ें उतनी ही नीचे पहुंच रही हैं। इस दृढ़मूल होने की प्रक्रिया में जातीय गुणों की वृद्धि नहीं उनका ह्रास ही हो रहा है। सड़ी जड़ों पर ही जाति-व्यवस्था अमरवेलि हो गई है। सामाजिक स्तर में जातीय मान्यताएं पूर्ववत हैं किन्तु शासनस्तर में जातियों की मान्यता शीर्षासन पर है। सबसे अधिक पतन ब्राह्मण का है जो उच्चतम की जगह निम्नतम हो गया है। ब्राह्मण की चतुर्दिक् निन्दा और उसका विरोध करना अस्वाभाविक नहीं है। ऐसी स्थिति के लिए किसी को आक्षिप्त करना भूल है। ब्राह्मण स्वयं ही दास की उपाधि धारण करने से विभूषित होने लगे हैं। सनातन धर्म पाखंडग्रस्त हो गया है जिसके लिए ब्राह्मण ही उत्तरदायी है। वह वेदशास्त्र में वर्णित ईश्वर को भूलगया है। वैदिक यज्ञ की भावना समाप्त है। जातीय स्वाभिमान और ब्राह्मणत्व के सर्वथा अभाव होने से मनोबल का ह्रास हुआ। यही पतन का मुख्य कारण है। इस समय देश और समाज के प्रति ब्राह्मण में उपेक्षा या स्वार्थ का भाव घातक सिद्ध हो रहा है। उसकी प्रतिभा सुषुप्त हो चली है। वह मूकदर्शक बना है। ब्राह्मण से विरोध करके सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति को, योजनाबद्ध तरीके से वोट बैंक का साधन बनाकर, प्रदर्शन मात्र और पाखंड से ग्रस्त किया गया है। धर्म और संस्कृति का विनाश समाज और शासन दोनों स्तर से प्रयासपूर्वक हो रहा है। इससे त्राण के लिए ब्राह्मणत्व के अलावा कोई अन्य उपाय नहीं दिखाई पड़ रहा है।

ब्राह्मण निन्दनीय हो गये हैं, वे पतन केलिए स्वयं जिम्मेदार हैं, ऐसा हृदय से स्वयं अनुभव करने पर, उस जाति के पुनरुद्धार की आशा बनती है। सबसे निराशाजनक बात है कि ब्राह्मण ही नहीं, ब्राह्मणत्व का भी विरोध हर स्तर पर होरहा है। यह सर्वनाश का लक्षण है। अपनी संस्कृति समाप्त होने के सन्निकट आगई है। अंतिम चरण पर संभलने का थोड़ा अवसर रह गया है। संस्कृति की संजीवनी शक्ति ब्राह्मणत्व में ही है। गीता भाष्यभूमिका में आचार्य शंकर ने कहा

है- ब्राह्मणत्वस्य हि रक्षणेन रक्षितः स्यात् वैदिको धर्मः तदधीनत्वाद् वर्णाश्रमभेदानाम्। इस समय ब्राह्मणत्व ही आश्रय बन सकता है।

ब्राह्मण जाति में बुद्धितत्व और आई.क्यू. अब भी अपेक्षाकृत अधिक है। यह सभी जानते हैं किन्तु कम लोग ही मानते हैं। संस्कार जाग्रत होसकें तो ब्राह्मण, अब भी, क्षत्री प्रकृति के लोगों को पैदा करके, समाज और देश का मार्गदर्शन कर सकता है। ब्राह्मण का सबसे बड़ा विरोधी संस्कारहीन ब्राह्मण ही होता है। ब्राह्मणत्व के विरोधियों का साथ बुद्धिबली ब्राह्मण छोड़ दें, तो इससे प्रस्तावित कार्यक्रम में भारी सहयोग मिलेगा। तपोबल से अपनी योग्यता बढ़ाना प्राथमिक कार्य है। योग्य होने पर कुछ लोगों को समझाना सरल है, संस्कारहीन ब्राह्मण को समझाना कुछ कठिन है और जातीय, धार्मिक या दलगत अंधभक्तों को समझाने का प्रयास व्यर्थ है। इस स्थिति के अनुसार योजना बनानी पड़ेगी। शुद्ध जातिवाद की बात इस योजना में नहीं है। ब्राह्मणत्व रूपी योग्यता और उसका आदर प्राथमिक आवश्यकता है। हमारी संस्कृति का मौलिक स्वरूप ही ब्राह्मणत्व है जिसे मनुवाद भी कह सकते हैं।

ब्राह्मण के इतिहास और वर्तमान स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में उसके उत्तरदायित्व का स्मरण कराना उपयोगी है। सर्वप्रथम, शिक्षा द्वारा, सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति का सही स्वरूप प्रकाशित करना परमावश्यक है क्योंकि पाखंडियों ने इनका स्वार्थपूर्ण स्वरूप प्रचारित किया है। भारतीय संस्कृति के विरोध पर बने आसुरी राजमहलों की नींव बहुत कमजोर है। ब्राह्मणत्व से संपन्न लोग इस मायावी घननंदी साम्राज्य का अंत करने में सक्षम होंगे। बुद्धिबल, विद्याबल और तपोबल को प्रबल करने तथा इनका सहारा लेकर आगे बढ़ने का समय आगया है। विद्यार्थियों से ही वांछित परिवर्तन होगा। अतः, यदि योग्यता को वरीयता नहीं है, विद्यालयों में भ्रष्टाचार है तो अपने घर पर ही कुछ विद्यार्थियों को शिक्षा देना संभव है। सादा जीवन उच्च विचार को आदर्श बनायें। मूलतत्वों के सुरक्षित होने पर युगानुरूप ब्राह्मण होना भी पर्याप्त है। उपेक्षा की भावना का त्याग करके सत्पक्ष का समर्थन करने में सक्रियता ब्राह्मण का स्वधर्म रहा है। 'मामनुस्मर युद्ध च' की नीति उचित है।

## ( 124 )

## स्मृतियों का अवदान

सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति का मुख्य स्रोत वैदिक साहित्य है।इस साहित्य का मंथन करके ऋषिमुनियों ने सूत्रग्रंथ बनाया। इसी क्रम में आचार-व्यवहार एवं सर्वतः अभ्युदय तथा निःश्रेयस् के लिए स्मृतियों की रचना की गई। स्मृतियां वेदवाक्य की तरह अपरिवर्तनीय नहीं हैं। देशकाल के अनुसार उनमें संशोधन होते रहे हैं। इस संशोधन की प्रक्रिया में भी वेद के मूल आदेशों को सुरक्षित रक्खा गया है। मनुस्मृति सबसे पुरानी रचना है। इसके बाद देशकाल को ध्यान में रखकर लिखने वाले शंख, लिखित, वसिष्ठ, नारद, याज्ञवल्क्य, पाराशर आदि बीस-इक्कीस प्रमुख तथा पुराणों में उपलब्ध विभिन्न संदर्भों से प्राप्त लगभग सौ स्मृतिकारों की गणना की गई है। इनमें सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति सुरक्षित है। मनु, याज्ञवल्क्य और पाराशर स्मृतियां इस समय भी प्रचलित हैं। वेद के मौलिक आदेशों को सुरक्षित रखते हुये, देशकाल के अनुसार परिवर्तन कर लेने पर यह रचनायें हमारे लिए, अब भी आदर्श और मानदंड हैं। जो स्मृतियों का तात्पर्य नहीं समझ सकते हैं और नासमझी में इनका तिरस्कार कररहे हैं, वह सनातनीय ही नहीं भारतीय भी नहीं है।निन्दा करने के बजाय स्मृतियों को समझना चाहिये। स्मृतियों में छुआछूत का भेद कहीं नहीं लिखित है। बहुत से कार्यों में अधिकारी भेद अवश्य है। स्मृतियों का विरोध करनेवालों को,हठ छोड़कर, तर्क और व्यवहार के आधार पर चिंतन करना चाहिए। किसी को नीचे घसीटने के बजाय स्वयं उसके समकक्ष पहुंचने का प्रयास बुद्धिमानी होगी।

स्मृतियां बहुमूल्य ज्ञान का भंडार हैं। इनके कुछ अंशों को शिक्षा के अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जा सकता है। स्मृतियों से कुछ निदर्शन द्रष्टव्य हैं -

1-आचार की प्रमुखता - मस्मृ

आचारः परमो धर्मः। आदि

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः। आदि

2-नारी का सम्मान- मस्मृ

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

3-ब्राह्मणत्व से पतन के चार कारण, मस्मृ-

अनभ्यासेन वेदानमाचरस्य च वर्जनात्।

आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति।

4-युगानुकूल परिवर्तन, पास्मृ-

युगेयुगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः।

तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः।

5-अभक्ष्यभक्षण, कुटिलता, झूठ बोलकर उन्नति करना, रजस्वला संभोग व सुरापान, पातक हैं- यास्मृ

निषिध्दभक्षणं जैह्मयम् उत्कर्षे च वचोऽनृतम्।

रजस्वला मुखास्वादः सुरापान समानि तु।।

6-मनुस्मृति में याज्ञवल्क्य द्वारा संशोधन- मनु ने द्विज का वैवाहिक संबंध चारों वर्णों में, क्षत्री का तीन में, वैश्य का दो में अनुलोम माना है। या.व. ने बदलकर क्रमशः तीन, दो,एक लिखा है। शूद्रा से केवल शूद्र विवाह करे -

तिस्रो वर्णानुपूर्वेण द्वे तथैका यथाक्रमम्।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्या स्वा शूद्रजन्मनः।।

7-विधवा विवाह की अनुमति पाराशर स्मृति-

नष्टे मृते प्रब्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।

पंचत्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते।।

8-नारी सुरक्षा, स्वयं नारी द्वारा करना ही पर्याप्त होगा, मस्मृ -

अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः।

आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः।।

इसतरह के सहस्त्रों वाक्य और संशोधन जीवन के सभी उपयोगी विषयों पर क्रमशः तथा सुसंगठित ढंग से लिखे हैं। अब ऐसा समय है कि इन विषयों पर

चर्चा करना अरण्यरोदन सिद्ध हो रहा है। इस ज्ञानराशि के सम्मान से पुनर्जागरण होगा।

यह विचार करने की उत्कंठा स्वाभाविक है कि भारत में धर्म और संस्कृति की क्या हालत है और ऐसा क्यों है? अंग्रेजों और मुसलमानों के समय में हिन्दुत्व नहीं हिन्दू और देश खतरे में थे।स्वतंत्रता के समय से ही उपर्युक्त दोनों के साथ ही हिन्दुत्व भी खतरे में आगया है। जजिया देकर भी हिन्दुत्व सुरक्षित था।मुसलमानों की तीव्रगति से बढ़ती जनसंख्या तथा बीस-पच्चीस करोड़ की आबादी होने पर भी अल्पसंख्यक की सुविधा देने से अवश्य खतरा उत्पन्न है किन्तु इसके लिए वर्तमान शासन प्रणाली और कानून में कमी ही कारण है। अतः हिन्दू खतरे में है ऐसा प्रचारित करने वाले ही हिन्दुत्व के विरोधी सिद्ध हो रहे हैं।

हिन्दू कोई धर्म नहीं है। यह सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों व गुणों से अनुप्राणित अनेक संप्रदायों के लोगों से बने समाज की जीवनशैली का नाम है। सुप्रीम कोर्ट ने भी हिन्दुत्व की इससे मिलती जुलती व्याख्या किया है। हिन्दू शब्द से सनातन धर्म का बोध कराने के लिए नारा लगाने वाले,झूठे, स्वार्थी और पाखंडी हैं।

धर्म के सामान्य और विशेष, दो भाग होते हैं। प्रथम भाग आचार-व्यवहार तथा शिक्षा के लिए है। इससे सुशिक्षित, सभ्य और समर्थ नागरिक बनने व आत्मकल्याण तथा लोकसंग्रह करने की योग्यता मिलती है। दूसरा भाग कर्मकांड के नियम बताता है जिससे पवित्र जीवनचर्या, सामाजिक कार्य तथा परलोक की साधना होती है। अपने यहां, पहला पक्ष सनातन धर्म को तथा दूसरा पक्ष भारतीय संस्कृति को प्रकाशित करता है। संस्कार भी कर्मकांड का प्राथमिक और आवश्यक अंग हैं। लोकरंजन केलिए विभिन्न परंपरायें, यात्रा, उत्सव, मंदिर, तीर्थ आदि भी इसी कर्मकांड में सम्मिलित हैं। लोकरंजन के अंश में प्रदर्शन तथा पाखंड की संभावना बहुत है। अतः यह संस्कृति का बाह्य कलेवर कहाजाता है। पाखंड के कारण यह अंश संस्कृति का विरोधी तथा विदेशी संस्कृति का पोषक भी हो जाता है और हिन्दुत्व को बदनाम करता है। सनातन धर्म की शिक्षायें स्मृतियों में सविस्तार मिलती हैं। इनसे किसी का विरोध संभव नहीं है। इन्हीं के आधार पर हम विश्वगुरु रहे हैं। विशेष धर्म की शिक्षा हेतु भी पूरा साहित्य है। गृहस्थाश्रम के लिए विवाह, वर्णशुद्धीकरण, स्वधर्म, पंचमहायज्ञ, प्रायश्चित्त आदि

तथा तृतीय और चतुर्थ आश्रमों की चर्या आदि सभी कर्मकांड स्मृतियों में वर्णित हैं।राजधर्म के भी नियम स्मृतियों में उपलब्ध हैं।

सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति दोनों का अविभाज्य अंतःसंबंध है।संस्कृति का आंतरिक अंश भारतीयता को लक्षित करता है। इसके होने पर देश में शांतिव्यवस्था के साथ सबको अर्थ, काम तथा परमपुरुषार्थ सिद्ध करने केलिए अवसर मिलता है। सनातन धर्म सर्वथा रक्षणीय है। इसके बिना संस्कृति, लोकनीति और राजनीति सभी निष्प्राण हैं। धर्मो रक्षति रक्षितः।

## ( 125 )

## स्फुट संदर्भ,

1- त्यजेदेकं कुलस्यार्थे,ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।

ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।।

*महाभारत (आदि पर्व)*

महत्वपूर्ण होने के कारण सूक्तिसंग्रह और चाणक्यनीति में भी यह श्लोक मिलता है। इसका सामान्य अर्थ है, कुल के लिए एक व्यक्ति को, कुलसमूह से बने ग्राम के लिए कुल को, देश के लिए ग्राम को और आत्महित के लिए पृथ्वी को भी छोड़ देना चाहिये। जातिमात्र के हित में देश और समाज का अहित करना तथा आत्मार्थ को छुद्र स्वार्थ समझना, इस नीतिवाक्य की नासमझी है। यहां अंतःकरण को आत्मा मानना तर्कसंगत है। मन, अहंकार, बुद्धि तीनों की सहमति से चित्त में आत्मनिश्चय प्रकाशित होता है। इस आदेश का पालन करना ही पड़ता है। इसके लिए पृथ्वी भी छोड़ने का सीधा अर्थ है मूल्यों की रक्षा के लिए प्राणों की भी परवाह न करना। अहंकार की तृप्ति केलिए मनमानी विचार आत्मा की आवाज नहीं है। इसे मानने पर अकस्मात पतन होता है।

2- वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी।

एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्।। मस्मृ-2/137

इस श्लोक में कई विशिष्ट व्यक्तियों के बीच आदरणीयता का क्रम (प्रोटोकॉल) निर्धारित है। विद्या यानी ज्ञानविज्ञान में श्रेष्ठ होने पर व्यक्ति सर्वप्रथम

पूज्य है। सा विद्या या विमुक्तये-यह श्रेष्ठ विद्या का लक्षण है। इसके बाद कर्म की श्रेष्ठता है जिसमें आचार्य शिक्षक, निःस्वार्थ समाजसेवक आदि हैं। स्नातक को पहले जाने के लिए राजा भी रास्ता छोड़ता था। तृतीय वरीयता आयु के आधार पर है। पवित्र जीवन चर्या के साथ रहनेवाला, आयु में बड़ा सम्माननीय होता है। चतुर्थ वरीयता में संबंधी हैं। व्यक्तिगत क्षेत्र में बन्धुबांधव तथा सार्वजनिक क्षेत्र में सहधर्मी, सहयोगी हैं। पांचवें स्थान पर धनी व्यक्ति है। स्वधर्म से अर्जित धन का भी महत्व है। मान्यता की इस व्यवस्था में भारतीय संस्कृति निहित है जो अब भी मान्य हो सकती है। अब प्रोटोकॉल के नियम में शायद ही कहीं पुरानी मान्यता को आदर दिया जाता है। संपन्न व्यक्ति को प्राथमिकता देने से धन के प्रति प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है। क्रम को उलटने से संस्कृति बदल गई है।

3- विद्याविनयसम्पने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।। -गीता। 5/18

यहां समदर्शी, समत्वयोग में सिद्ध व्यक्ति को पंडित कहा गया है। ऐसा होना बुद्धि की पराकाष्ठा है। शब्दकोश में पंडा का अर्थ है बुद्धिमानी, ज्ञानविज्ञान। पंडित शब्द विद्वान्, सूक्ष्मबुद्धि, कुशल के अर्थ में प्रयुक्त होता है। किसी विषय में दक्ष को भी विषय पंडित कहते हैं, जैसे नयपंडित, रतिपंडित, कृषिपंडित आदि। शुद्ध पंडित शब्द विद्वत्ता, विवेक, समत्वयोग में पारंगत जैसे अर्थ में ही है। केवल शास्त्र में स्मरणशक्ति का प्रदर्शन करने वाले को शास्त्रपंडित कहते हैं। शास्त्रों का तात्पर्य जानने वाले, बुद्धिकौशल से सुशोभित विद्वान् को ही पंडित कहना उपयुक्त है।

आजकल इस शब्द के प्रयोग से सभी गौरवान्वित होना चाहते हैं। नेहरू या तबलाबादक, वांसुरीवादक आदि भी अनधिकार पंडित बने हैं। नेहरू को राजनीति पंडित, इसी तरह किसी कला या विज्ञान मे विशिष्ट होकर विषयपंडित बनना भी बड़ी बात है। समानता की अंधी दौड़ में भी शब्दों के अर्थ के विषय में नीर-क्षीर विवेक करणीय है।

उचित शब्द और अर्थ जानने वालों की कमी कभी नहीं रही है। मनमानी नामकरण या उपाधिवितरण करने वाले, सशक्त व्यक्ति को अनुशासित करना असंभव है। विकलांग को दिव्यांग, मोटे अनाज को श्रीअन्न जैसे नाम देने में लोग

बुद्धिकौशल ही समझते हैं।राष्ट्रपिता की जगह राष्ट्रनिर्माता या राष्ट्रनायक शब्द अधिक अविवादित हैं। उपाधि का महत्व नहीं रहगया है। उच्च पदस्थ उपाधिवितरक लोग भी मूर्खता और लोभ में आगे रह सकते हैं। उचित शब्द के प्रयोग द्वारा, सही अर्थ को प्रकाशित करना विद्वत्ता और पांडित्य का लक्षण है।

इन सभी शास्त्रादेशों से लाभ पाने के लिए जीवनचर्या में सत्य और ईमानदारी का विकल्प नहीं है। शिवसंकल्प आवश्यक है।

## ( 126 )

## योगक्षेम

1- सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्याभ्यासेन रक्ष्यते।

मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते।।

सुभाषितम्

सत्य से धर्म, निरंतर अभ्यास से विद्या, स्वच्छता यानी निष्कलंकता से स्वरूप तथा सदाचार से कुल की रक्षा होती है। इन चारों मूल्यों के पाने तथा सुरक्षित रखने के लिए यही चार उपाय हैं। इनकी व्याख्या नीचे है।

इनका उलटा करना विनाशकारक है। इससे बचें क्योंकि-

नहिं असत्य सम पातक पुंजा।गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा।। स्वभावतः झूठा और बेईमान व्यक्ति हर संभव पाप करता है और अधोगति को प्राप्त होता है।

- अनभ्यासे विषं विद्या।। अभ्यास न करने पर विद्या का अहंकार मात्र रह जाता है जो निन्दा का कारण बनता है।

- मृजा का अर्थ है निर्मल, लांछन रहित है। सुन्दरता से नहीं निष्कलंकता से ही व्यक्ति मुहं दिखाने योग्य बनता है।

- अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतोहतः।।

गरीब होने से अपूरणीय क्षति नहीं होती है। कुमार्ग पर चलना बुरा है जिससे व्यक्ति कुल के साथ नष्ट हो जाता है।

धर्म, विद्या, रूप और कुल जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। उनके उत्कर्ष तथा क्षेम के लिए उपर्युक्त नीतियां हैं।

2- ओऽम् सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। माविद्विषावहै।। शान्तिपाठ, तैत्तिरीयोपनिषद्।

ऋषिआश्रम परंपरा में शिष्य भी गुरु केलिए पुत्रवत होता था। इस मंत्र में गुरु और शिष्य ने परमेश्वर से प्रार्थना किया है कि हम दोनों का हित साधन साथ-साथ करें। रक्षा करने में, भरण-पोषण करने में और विद्या से प्राप्त होने वाला वर्चस्व प्रदान करने में हम दोनों को सहभागी बनाये रक्खें। हम दोनों का विद्याभ्यास तेजस्वी बने। हम एकदूसरे से द्वेष कभी न करें।

अब इस मंत्र का प्रयोग अपवित्र ढंग से हो रहे सहभोज में करके, लोग पंडित बनरहे हैं। सामूहिक प्रयोग केलिए यह मंत्र है ही नहीं। परिवर्तन हास्यास्पद है। पुरानी परंपरा में व्यक्तिनिर्माण और परंपरा के स्थायित्व केलिए अद्भुत निष्ठा थी। भारतीय गुरुशिष्य परंपरा को मैकाले (अंग्रेजों) ने विगाड़ना चाहा था। भारतीय अंग्रेज उनकी योजना को पूर्ण करदिये हैं। सुधार होना चाहिए।नई शिक्षानीति में जोड़ने केलिए इससे महत्वपूर्ण कुछ नहीं है। देश भर में सहस्त्र आचार्य भी वैदिक विधि से व्यक्तिनिर्माण करना आरंभ करें तो शिक्षा और समाज मे नवयुग का संचार होजायेगा। शिक्षा से ही विकास व उसका संरक्षण होगा।

3- जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्विजोच्यते।

विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः ब्राह्मण उच्यते।।

यह श्लोक किस जगह का है, यह निश्चित नहीं ज्ञात है। एक जगह स्कंद पुराण में कहा है। इसे मनुस्मृति के नाम से भी संदर्भित किया जाता है किन्तु उसमें नहीं है। कहीं न कहीं होगा ही। हमारे शास्त्रों में बौद्धकाल से लेकर ब्रिटिश काल तक इतने प्रक्षेप हुये हैं कि उनका स्वरूप विवादित हो गया है। मनुस्मृति में भी बहुत प्रक्षेप हैं जो सामाजिक विद्वेष के कारण बनगये हैं। शास्त्रों में यह कार्य सुनियोजित ढंग से होतारहा है। अब भी मनमानी संस्करण और व्याख्यायें प्रचारित हो रही हैं। किसी संस्कृति और देश को नष्ट करने के लिए वहां की शिक्षा-व्यवस्था और शास्त्रों को दूषित करना पर्याप्त है। यहां यह समस्या विकट होचली है।

कुछ रखने के लिए आधार को सुरक्षित बनाना आवश्यक है अन्यथा फूटे घड़े से जल की तरह सब व्यर्थ जाता है। योगक्षेम दोनों के सहचर होने में ही सुरक्षा है। अतः अपने शास्त्रों से लाभान्वित होने के लिए प्राचीन महापुरुषों का अद्भुत चरित्र, मनोविज्ञान और तर्क तथा विभिन्न क्षेत्रों में विश्वसनीय आधुनिक वैज्ञानिक खोजों के आधार पर शास्त्रों, रामायण, महाभारत, कथासाहित्य, नाटक आदि का शुद्धीकरण विद्वानों द्वारा होना चाहिए। वेद में प्रक्षेप संभव नहीं हो पाया किन्तु पंडितमन्यों द्वारा उनके अनर्थकारी नये भाष्यों से वेदार्थ में सतही बातें बताई गई हैं। वह चरवाहों की गीत बन गये हैं। ऐसी दुर्गति से उद्धार होने पर हम वास्तव में आस्तिक बन सकेंगे, शास्त्रों के अर्थ का संरक्षण होगा और उनके प्रयोग मे सफलता मिलेगी। हम परमेश्वर में श्रद्धा रखते हुये आत्मस्वरूप में उसका निरंतर चिंतन करेंगे, तभी वह योगक्षेम का निर्वाह करेगा। गीता से भी समर्थित होने पर यह बातें श्रद्धेय हैं-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

## ( 127 )

## जीवन की सार्थकता

धर्मार्थकाममोक्षाणाम् यस्य कोऽपि न विद्यते।

अजागलस्तन इव तस्य जन्म निरर्थकम्।।

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत पशुभिः नराणाम्।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।

इन दोनों नीतिवचनों की समन्वित व्याख्या से तात्पर्य अधिक स्पष्ट होगा। काम स्वाभाविक इच्छा है जो पशुपक्षी से लेकर मनुष्य और ऊपर की योनियों में भी पाया जाता है। अर्थ काम का साधक है। चूहा भी अन्न संग्रह करके संपन्न रहता है। यह भी स्वभावगत प्रवृति होजाती है।स्वास्थ्य भी काम है जो अर्थ और काम दोनों का साधक है। इसके लिए अपनी सहज या विशिष्ट बुद्धि के अनुसार सभी प्राणी प्रयास करते हैं। इस तरह अर्थ और काम स्वयं में पुरुषार्थ नहीं ,मूल प्रवृत्तियां हैं। यह कमोवेश सब में होती हैं।इनको पुरुषार्थ का रूप देने केलिए

मनोबल और बुद्धिबल से संवर्धित धर्म की आवश्यकता होती है। धर्मसम्मत अर्थ और काम से सुख तथा यश दोनों मिलते हैं। इन दोनों प्रवृत्तियों को धर्म के द्वारा पुरुषार्थ का रूप बनाने में जीवन की सार्थकता है।

धर्म के बिना मनुष्य और पशु में भेद नहीं रहजाता है। धर्म, अर्थ व काम को त्रिवर्ग कहते हैं। मानव केलिए, सांसारिक जीवन मे,त्रिवर्ग ही साध्य है।त्रिवर्ग के किसी क्षेत्र में विशिष्ट व्यक्ति को पुरुषार्थी कहते हैं। काम (स्वस्थ शरीर आदि), अर्थ (धन, जन आदि) तथा धर्म (अभ्युदय तथा निःश्रेयस् का साधन) उत्तरोत्तर विशिष्टतर पुरुषार्थ हैं। अपनी क्षमता और स्वभाव के अनुसार इनकी सिद्धि का प्रयास सभी करते हैं। मनचाही कामना की प्राप्ति को जीवन की सार्थकता नहीं कह सकते हैं क्योंकि मन स्वभावतः इन्द्रियों के साथ रमण करने में ही संतुष्ट होता है किन्तु यह पतन का मार्ग है। बुद्धिसम्मत सुख की खोज धर्म है।इससे पतन नहीं, उत्थान होता है। चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष है। इससे जीवन ही नहीं, जन्म लेना भी सार्थक हो जाता है। शुकदेव, आचार्य शंकर, रमण महर्षि जैसे अंतिम जन्म लेने वाले अनेक सिद्ध पुरुष इस कोटि के हुये हैं।

सांसरिक जीवन की सबसे ऊंची स्थिति का आदर्श है-

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सबकर हित होई।।

महापुरुषों की जीवनी यही शिक्षा देती है। अपनी आकांक्षायें समाप्त हो जाती हैं तभी वास्तविक लोकसेवा आरंभ होती है। इस उत्तम धर्म का साक्षात्कार हो सके, इसी में जीवन की सार्थकता है।

**( 128 )**

## राष्ट्रवाद

राष्ट्र की कल्पना के पहले परंपरा, भाषा आदि के साथ संस्कृति सबसे महत्वपूर्ण और अनिवार्य तत्व है। संस्कृति के अनुसार राष्ट्र भी विशिष्ट और व्यापक बनता है। संस्कृति में लोकपरलोक केलिए उच्च आदर्श तथा मानवीय गुणों का होना, उसको स्थयित्व प्रदान करते हैं।

धर्मस्थलों को सारी सुविधा संपन्न पर्यटन केन्द्र बनना, मेला और मनोरंजन के कार्यक्रमों में राजकीय धन लगाकर जनता को आकर्षित करना धार्मिक व

सांस्कृतिक कार्य नहीं हैं। विकृत धर्म और संस्कृति पर आधारित राष्ट्रवाद तथा अनेकधा भ्रष्टाचार से समन्वित विकास से किसी देश की उन्नति तथा शान्तिव्यवस्था असंभव है। बहु सांस्कृतिक देश में विशेष सतर्कता अपेक्षित है।

जैसे कुल और वस्त्र को निष्कलंक रखने केलिए आचार-व्यवहार की शुद्धि आवश्यक है, उसी तरह देश और राष्ट्र को सुरक्षित रखने के लिए पाखंडमुक्त एवं निर्विवाद धर्म तथा संस्कृति रखना ईमानदारी है। निर्दोष आधार पर राष्ट्रनिर्माण करने पर राष्ट्रवाद स्वतः स्थापित होजाता है।

## ( 129 )

## भारत की राजनैतिक स्थिति

किसी देश के लिए राजनीति सबसे महत्वपूर्ण विषय है। सब विषय इसी में समाहित होजाते हैं।सर्वे पदाः हस्तिपदे निमग्नाः। इस समय यह भारत में विशेष रूप से चिंतनीय है। अंधेर नगरी बने देश में ईमानदार और योग्य व्यक्तियों में कुछ ही लोग राजनीति में जाने की इच्छा करते हैं। व्यवसाय के रूप में राजनीति करनेवालों का भेड़ियाधसान है। टके सेर भाजी टके सेर खाजा होने से, प्रबुद्ध लोग इसे कार्यक्षेत्र नहीं बनाना चाहते हैं। तो भी उन्हें इसे विचारक्षेत्र अवश्य बनाना चाहिए। अपने देश में समाज और लोकनीति की सुरक्षा के लिए इस विषय पर भी पढ़ना-लिखना विद्वान् केलिए स्वधर्म का आवश्यक अंग है। सत्य, न्याय, नैतिकता, पारदर्शिता आदि शुभ एवं इनके विपरीत अशुभ मानना स्वाभाविक है। पाखंड, मिथ्या प्रदर्शन, आत्मप्रशंसा, कृतघ्नता जैसे दोष अक्षम्य हैं। कूटनीति सर्वत्र नहीं, अपनों के साथ राजनीति या राजधर्म ही उचित है। मंदिर, मेला, सांप्रदायिक एकता जैसी अफीम तथा पद- प्रतिष्ठा, दलाल बनाने के प्रलोभन, जातिवाद के आधार पर निर्णय आदि से जनता को दुधारू गाय, भेंड़, अंधभक्त, चापलूस, भयाक्रांत आदि नहीं सम्मानीय नागरिक बनाना नेता का कर्तव्य है। इसका नीरक्षीर विवेक न करके मौन रहने वाले विद्वानों की निन्दा इतिहास में होगी।

सभी प्रभावशाली दल रामराज्य की बात करते हैं किन्तु आचरण में, देश के साथ धोखा, अपनों से ही छलकपट, आदि करते हुए रावणराज्य से भी हीन कोटि के दिखाई पड़ते हैं। रावण आहंकारी था किन्तु परम उपासक, स्पष्ट

उद्देश्यवाला, देशप्रेमी, दुश्मन को रुलाने वाला तथा पुरजन का पोषक तो था ही। इन नेताओं में सत्तालोभ के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अहंकार प्रबल है।

देश के विभिन्न दलों का निष्पक्ष विश्लेषण करने पर लगता है की भाजपा और कांग्रेस के अलावा राष्ट्रीय स्तर पर कोई नहीं है। अन्य दल क्षेत्रवाद, जातिवाद, संप्रदायवाद, जैसी संकीर्णता से ग्रस्त हैं या प्रसार करने की प्रारंभिक स्थिति में हैं। अतः वर्तमान में दो ही दल विचारणीय हैं। कांग्रेस राज्यों में कार्य करने में सफल लगती है। उसका शीर्ष भाग अक्षम और अपरिवर्तनीय हो गया है।अतः वर्तमान नेत्रृत्व में केन्द्र की सत्ता केलिए योग्य नही लगती है। भाजपा के वर्तमान शीर्ष नेता तानाशाह, स्वार्थी, बदनाम, गुंडों के संरक्षक, पूंजीपतियों के सहयोगी आदि दोषों से आरोपित होने के कारण अविश्वसनीय हैं। जनता में असंतोष है। देश का भविष्य सुरक्षित रखने के लिए इस नेत्रृत्व का परिवर्तन आवश्यक है। विकल्प अपेक्षित है।

एक विकल्प यह भी है कि वर्तमान नेताओं की जगह स्वच्छ व्यक्तित्व, अविवादित और ईमानदार लोगों को स्थान दिया जाय। ऐसे व्यक्ति भी भाजपा में मिलसकते हैं। कच्चा माल में, पुराना होने पर, सड़न होने लगती है। माली द्वारा बाग की तरह दल में भी कटाई-छटाई आवश्यक है। दल की कार्यप्रणाली में परिवर्तन भी करना होगा। भाजपा के कुछ सत्यनिष्ठ नेता भी ऐसा मानने लगे हैं, यह शुभलक्षण है। इससे लगता है कि भाजपा में संजीवनी शक्ति अवशिष्ट है, वह विकल्प को कल्पित करके अपनी प्रतिष्ठा को सुदृढ़ रख सकती है।

## ( 130 )

## ज्योति का पर्व, दीवाली

वैदिक ऋषि ने कामना किया - असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय।। असत्य और अज्ञान अंधकार स्वरूप हैं। इनसे बचाकर हमें सत्य और ज्ञान से ज्योतिर्मय करें। यही अभीष्ट प्रार्थना है।

आज के दिन गृह तथा मंदिर में दिया देकर अंतर्मन को प्रकाशित करने की संस्कृति रही है। नदीघाट आदि पर लाखों दीप देने की अत्याधुनिक परंपरा का, जो भी कारण हो, सांस्कृतिक उद्देश्य नहीं है।

सामूहिक दीपदान को राष्ट्रीय अस्मिता, स्वाभिमान, प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा, सत्य, न्याय, ईमानदारी, ज्ञानोपासना, अज्ञान का नाश आदि उच्च सामाजिक और राष्ट्रीय मूल्यों के स्मरण से जोड़ने पर इस कार्य का सदुद्देश्य बन जायेगा। स्वाभिमान का दीप जलाने वाले तिलक, शिक्षा का दीप जलानेवाले मालवीय, शौर्य और बलिदान का दीप जलाने वाले नेताजी, आजाद, भगतसिंह आदि सहस्त्रों बलिदानियों तथा, अहंकार रहित होकर विभिन्न क्षेत्रों में देश के लिए जीवनदान करने वाले लोगों के लिए एकएक दीप देकर हम स्वयं उनसे प्रेरणा लें। हृदय का कालुष्य समाप्त करना ही पर्व का उद्देश्य होना चाहिए।

## ( 131 )

## सन्मार्ग की खोज

अपने देश में अनेक विभूतियां उत्पन्न हुई हैं जिन्होंने व्यक्ति और समाज को प्रेरणा देने तथा उनको सृष्टि के शीर्ष पर पहुंचाने के लिए अद्भुत काम किया हैं। संबंधों के निर्वाह तथा स्वधर्म के पालन के लिए मानदंड स्थापित करनेवाले सहस्त्रों महापुरुषों का इतिहास उपलब्ध है।दिशाहीन विकास का भ्रम छोड़कर ,हम पीछे मुड़कर भी देखें। देश को पुनः सत्पथ पर लाने के लिए, ऐसे लोगों को आदर्श बनाकर, उनका अनुकरण करना आतुर समाज के लिए ओषधि है। आज केलिए प्रासंगिक कुछ महापुरुषों का नाम व काम यहां दिया जारहा है।

महामानव राम को बनानेवाले ऋषिशृंग, वसिष्ठ, विश्वामित्र व अगस्त्य थे। रामराज्य की ख्याति पताका राम हैं और ऋषिगण उसके दंड हैं। संयमी राम के वश में रहने वाले पराक्रमी भाई लक्ष्मण तथा स्वयं को कुछ न चाहने वाले हनुमान जैसे सहायक का नाम अमर है। रामराज्य केलिए यज्ञाहुति देने वाले रामायण के ऐसे पात्र तथा ऋषियों की लंबी परंपरा स्मरणीय हैं।

परशुराम और द्रोणाचार्य जैसे धनुर्वेद के गुरु, जिन लोगों ने अनेक अजेय योद्धाओं को पैदा करके भारत का वर्चस्व विश्व में प्रदर्शित किया, धर्मराज युधिष्ठिर और उनके वश में रहनवाले भीम और अर्जुन जैसे भाई , अर्जुन जैसा कृतज्ञ शिष्य, कर्ण जैसा अडिग मित्र, तथा कृष्ण जैसा कूटनीतिज्ञ मित्र आदि महाभारत के पात्रों के जीवन का संदेश अब भी प्रासंगिक है।

कौटिल्य जैसा संकल्पसिद्ध ब्राह्मण, महाराजा बनने योग्य चन्द्रगुप्त जैसा उत्साही शिष्य, विक्रमादित्य जैसा प्रजापालक राजा, बौद्धों का पाखंड समाप्त करनेवाले आचार्य शंकर जैसे धर्मोद्धारक युगपुरुष, कबीर, तुलसी, नानक जैसे धर्मसुधारक, प्रचार और प्रदर्शन से रहित तथा भारतीय रहस्यात्मक साधना के प्रतीक संत रमण महर्षि, शिवाजी को अजेय बननेवाले समर्थ गुरु रामदास अपने योगदान के लिए इतिहास में अमर हैं। धर्मपरिवर्तन रोकने और हिन्दू संगठन बनाने के लिए धर्मप्रवर्तक तथा सामाजिक संस्थायें बनाने वाले भी हुये किन्तु उनके कार्य से सनातन धर्म का मूलाधार ही लुप्त होने लगा। लाभ कम हानि अधिक करने वाले उन लोगों की चर्चा यहां नहीं की जा रही है।

पत्रकारिता तथा संगठन द्वारा जनजागरण करके स्वतंत्रता को जन्मसिद्ध अधिकार बताने वाले तिलक, परोपकारी तथा शिक्षा के द्वारा युगनिर्माता मालवीय, आनंदमठ में बंदेमातरम् के नारे से देश की आवाज बुलंद करने वाले बंकिम चन्द्र चटर्जी, 'आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्' की नीति को अपनाने वाले स्वाभिमानी चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह, खुदीराम बोस आदि, अप्रतिम साहसी तथा प्रखरबुद्धि, संगठन के जादूगर, सेनानायक बनकर पूर्वी भारत में स्वतंत्रता का प्रथम झंडा फहराने वाले नेताजी सुभाष आदि अब भी पूर्ववत प्रासंगिक और अपेक्षित हैं।

विशाल भारत देश को वर्तमान स्वरूप में प्रतिष्ठित करने वाले, अमरकीर्ति सरदार पटेल से महान कार्य करने की विधि तथा जय जवान जय किसान का नारा देने वाले, स्वच्छ हृदय नेता, किन्तु कूटनीति से अनभिज्ञ लाल बहादुर शास्त्री से राजनीति में शुचिता का संदेश ज्ञातव्य है। इन दोनों ईमानदार नेताओं से देश का और अधिक कल्याण हो सकता था। इनके जीवन से सबक लिया जासकता है कि देश को पाखंडी और असंस्कारी हाथों में जाने से बचाने केलिए धूर्तों की दुरभिसंधि से सावधान व कूटनीतिज्ञ भी होना चाहिए। नीति है कि बहुत सरल नहीं दिखाई पड़ना चाहिए। राम ने भी खरदूषण की चौदह सहस्त्र सेना को मारने केलिए माया का सहारा लिया था। जंगल में सीधे पेड़ ही काटे जाते हैं, टेढ़े बचे रहते हैं। यही चाणक्य नीति में है-

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम्।
छिद्यन्ते सरला वृक्षाः कुब्जाः तिष्ठन्ति पादपाः।

अपनी जीवनी से वर्तमान के लिए उपयोगी शिक्षा देने वाले कुछ महापुरुषों का परिचय यहां उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कियागया।इसतरह के चरित्रों का विषद भंडार हमारे इतिहास में है। संस्कृति और स्वाभिमान की रक्षा तथा सर्वतोमुखी विकास केलिए सुदृढ़ आधार हेतु अपनी पृष्ठभूमि को सुरक्षित, निर्विवादित, आदर्शस्वरूप, आदरणीय और शिक्षा का स्रोत बनाये रखना इस समय भारत को आवश्यक है। यही निष्कंटक सन्मार्ग विश्वगुरु की विशिष्टता है। इस पुराने मार्ग के उत्तराधिकारी हम ही हैं। इसे खोजना नहीं है। घर में ही मधु मिल जाय तो उसके लिए जंगल नहीं जाना चाहिए। यह उक्ति प्रसिध्द है- 'अक्के चेन्मधु विन्देत् किमर्थं काननं ब्रजेत्।'

## ( 132 )

## अलक्ष्मी मूर्तिकथा

एक राजा ने आदेश प्रसारित किया कि उत्कृष्ट कलात्मक रचना करके बाजार में लानेवाले को, उचित मूल्य पर, बिक्री की सुविधा राज्य की ओर से दी जायेगी। एक मूर्तिकार ने अलक्ष्मी (दरिद्रा) की अद्भुत मूर्ति बनाया। बाजार में उसका कोई ग्राहक नहीं मिला। अन्त में अपनी घोषणा के अनुसार राजा ने मूर्ति खरीद लिया।

उसी रात्रि में एक भव्याकृति देवी राजमहल से निकल करजाने लगी। राजा के पूछने पर उसने कहा मैं आपकी लक्ष्मी हूँ। दरिद्रा के रहने पर मैं यहां नहीं रहूंगी। इतना हककर वह चली गई। इसके बाद लक्ष्मी से संबद्ध कुछ और देवियाँ भी, वही कारण बताते हुए चली गईं। अन्त में एक भव्य पुरुष घर से निकलने लगा तो राजा ने उसे रोका। पुरुष ने परिचय दिया कि मैं धर्म हूं। सबके साथ मैं भी जाना चाहता हूं। राजा ने कहा कि आपकी ही रक्षा केलिए हमने सबको छोड़ा है। धर्म प्रसन्न होकर लौट आये। थोड़ी देर बाद लक्ष्मी सहित सभी देवियां लौट आईं। इसमें शिक्षा है कि जहां धर्म है वहाँ सभी सहचर रहेंगे। धर्मो रक्षति रक्षितः।

यह कहानी हाई स्कूल में, संस्कृत की पुस्तक में पढ़ा था। अब भी इसमें विश्वास है। स्वधर्म के पालन से मनोबल और बुद्धि की निर्मलता मिलती है। हाल में ही एक अन्य ज्ञानस्रोत मिला। किसी ने बताया कि बलिया में एक साधू की

अरक्षित छोटी झोपड़ी के सामने लिखा है 'बटलै का बा,घटलै का बा'। यानी यहां कुछ है नहीं किन्तु कुछ घटा भी नहीं है। असंग, अकाम, साधू, फकीर का संतोष ही परम सुख है। इन प्रसंगों से स्वधर्म पर आरूढ़ रहने की प्रेरणा मिलती है। इनका निजी प्रभाव निवेदित है।

एक सामाजिक संस्था के माध्यम से समाज, लोकनीति और भारतीय संस्कृति की रक्षा तथा शिक्षा के क्षेत्र में कार्य किया जा रहा है।व्यक्तिगत रूप से पाखंड, असत्य, अनीति आदि को उजागर करके जनता को इनका विरोध करने केलिए भी प्रेरित करने का प्रयास हम करते हैं। राजनैतिक दल बनाने का ऊहापोह रहा किन्तु कई कारणों से उसे स्थगित कर दिया। लोकसंग्रह को स्वधर्म के रूप में स्वीकार करके, कुछ कार्यक्रम किये जाते हैं। इसके लिए कई पुस्तकं प्रकाशित किया है। इस समय यह प्रयास तथा साहित्य बहुमूल्य किन्तु अवांछित सामग्री की दूकान की तरह, समाज द्वारा उपेक्षित है। अलक्ष्मीमूर्ति की कथा से गृहीत शिक्षा से आशा बनती है कि, हमारी धर्मनिष्ठा ठीक है तो, हमारे प्रयासों को कभी सामाजिक स्वीकृति मिलेगी। तब तक स्वधर्म के पालन से प्राप्य संतोष का सुख तो है ही। जीवन अल्पकालिक है किन्तु विचार अमर होते हैं। ऐहैं कबहुँ बसन्त ऋतु।

## ( 133 )

## नेता नहीं ब्राह्मण

कर्मकांड, ज्योतिष, आश्वासन, दुराशा, पाखंड, प्रचार, प्रवचन आदि हथकंडों से लोगों को अंधभक्त बनाने का काम, एक हजार वर्षों तक ब्राह्मणों ने किया। इस सरल काम को कोई भी कर सकता है, यह बात अल्पबुद्धि लोगों को अब समझ में आई है। इस काम में श्रम और खतरा नहीं है। अतः फौज में जाने, व्यापार करने, पशुपालन करने, खेती करने आदि को छोड़कर ब्राह्मण बनने का गुरुमंत्र उन्हें समझ में आगया है। ब्राह्मण को अपदस्थ करके उसकी जगह लेने का प्रयास सभी करने लगे हैं। लेकिन हींग खतम होने पर गंध की तरह, अब भी, ब्राह्मण में कुछ विशिष्टता दिखाई ही पड़ती है। पाखंड आदि तो संभव है किन्तु विशिष्टता दिखाना कठिन है। उनके सामने यही समस्या है।

एक और सरल मार्ग निकल आया है। इस युग में नेता बनने में कोई सद्गुण

अपेक्षित नहीं है। सारे दुर्गुणों के साथ बेहयाई होना पर्याप्त है। अतः नेता बनने की होड़ तेज हो गई है।ब्राह्मण नहीं नेता बनना बेहतर हो गया है। मनुवाद की पुरजोर निन्दा करना नेता बनाने में सहायक है।

इस व्याधि को ब्राह्मणों ने पैदा किया है जिसे समाप्त करना भी ब्राह्मण ही के वश में है। ब्राह्मण राख ही नहीं है, उसमें चिनगारी बची है। राख में गधा भी लोटपोट कर सकता है। चिनगारी से आग पैदा होने पर उसके सामने श्रद्धा रखनेवाला चकोर ही ठहर सकेगा।

ब्राह्मण अपने स्वधर्म का स्मरण करें। सदाचार, त्याग, तपस्या, संतोष आदि के साथ विद्वान्, विशेषज्ञ, सत्यनिष्ठ, लोकसंग्रही बनने का प्रयास करें। अस्ति ब्राह्मणे तपः -अब भी सही है। संस्कार की शिक्षा मिलने और उनके जाग्रत होने पर सारी विद्यायें प्रगट होती हैं, ऐसा महापुरुषों के जीवन से सिद्ध है। शालीन विद्वान् होने पर ब्रह्मतेज का आधान होगा। अकेले बालक आस्तीक ने जनमेजय की जाति नाशकारी नागयज्ञ को समाप्त करा दिया था। यहां जातिवाद की बात नहीं कही जा रही है। ब्राह्मणत्व स्वभाव में होता है। सत्यकाम जाबाल की तरह सत्यजन्य वर्चस्व ही उसका लक्षण है। सूर्य में प्रकाश की तरह ब्राह्मणत्व में तेज होता ही है। आई.ए.एस. में लाखों बैठते हैं। कुछ ही चुने जाते हैं किन्तु योग्यता में वृद्धि सबकी होजाती है। लाखों लोग प्रयास करें तो कुछ तेजस्वी ब्राह्मण पैदा होंगे ही। दुर्लभ तेजस्वी ब्राह्मण ही नेताओं पर अंकुश लगासकते हैं।नेता नहीं सत्यनिष्ठ ब्राह्मण बनना शुभ है।

## ( 134 )

## अनारक्षण का औचित्य

आरक्षण से लाभ कोई नहीं है, हानि अनेक हैं। जो तात्कालिक लाभ दिखाई पड़ता है वह भी दूरगामी विशेष हानि है। आरक्षण के पक्ष में जो तर्क दिये जाते हैं उनका आधार ही सदोष है। तर्क नहीं अल्पज्ञान व दुराग्रह के बल पर अपना पक्ष प्रस्तुत किया गया है। इन बातों को प्रमाणित करने के लिए कुछ तथ्य तथा तर्क प्रस्तुत हैं।

इसके पक्षधर लोगों का मुख्य तर्क और आक्षेप है कि आकर्षण की व्यवस्था मनु ने आरंभ किया और तीन हजार वर्ष तक सवर्णों तथा विशेषकर ब्राह्मणों के

लिए सारी सुविधाएं आरक्षित करके शूद्रों से सेवा लिया और विकास से वंचित रक्खा। शूद्रों को पढ़ने नहीं दिया जिससे उनका शोषण होतारहा। यह पूर्वपक्ष है।

इसका उत्तर स्वस्थ बुद्धि से मनुस्मृति के पढ़ने पर मिल जाता है। वर्णव्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण आदि चार भेदों में समाज बंटा है। इसको जातिव्यवस्था के रूप मे समझना प्राथमिक गलती है जिससे अनेक कुतर्क उत्पन्न होते हैं। मनु ने आरंभ में जातिव्यवस्था नहीं बनाया था। चारों वर्णों का कार्य-विभाजन गुण, योग्यता तथा स्वभाव के अनुसार किया गया है। गीता आदि धर्मग्रंथों में भी यही है। मनुस्मृति को उनसे भिन्न मानना नासमझ है।

सभी वर्णों में भी विभिन्न स्तर के लोग हैं। सभी स्तर के लोग अपनी योग्यता व रुचिके अनुसार कार्य स्वयं निर्धारित कर लेते थे। यज्ञ में हृदय से बपा नामक विशेष पदार्थ को हवन के लिए निकालने में कुशल ब्राह्मण को बपई कहते हैं। इस तरह सहज कुशलता ही कार्य करने की योग्यता थी। इन कार्यों को पैतृक परंपरा बनाने से जातियां बनती गईं। सभी जातियां अपनी- अपनी विद्या में शिक्षा पाते थे। शूद्र भी कला, शिल्प आदि विशिष्ट क्षेत्र में शिक्षित होकर समाज में सम्माननीय बनते रहे। इसी तरह ब्राह्मणों और अन्य वर्णों में भी कई स्तर की जातियां बनी हैं। स्वाभाविक रूप से बनने वाली जातियों को सामाजिक मान्यता मिलती गई। कुछ काल बाद, वर्णसंकरत्व रोकने के लिए स्मृतियों मे भी जातिप्रथा को व्यवस्थित किया गया। जन्म तथा कर्म दोनों से वर्णसंकर बनते हैं। यह मान्य है कि वर्णसंकरत्व से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष ,विनाश के कई कारण उत्पन्न होते हैं। अतः इसे रोकने केलिए भी जातिव्यवस्था की आवश्यकता समझी गई होगी। जातिव्यवस्था मनुस्मृति में संशोधन के रूप में आई है और वर्तमान में अनावश्यक अंश हटाये जासकते हैं।

बौद्धकाल से मनुस्मृति में अनेक प्रक्षेप करके इसे अतार्किक और विवादास्पद बनाने का प्रयास आरंभ हुआ। अब भी इसके, अतार्किक व मनमानी संस्करण निकालना संभव है। तर्क, व्यवहार, मनोविज्ञान, आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषण आदि के द्वारा स्मृतियों का शोधन हो सकता है। इन हीरा के टुकड़ों की खराद आवश्यक है। यह अनमोल ज्ञान के भंडार हैं। इन्हें फेंकना और जलाना स्वार्थपरक पूर्वाग्रह है। यह कार्य हीरा फेंककर गुंजा उठाने की तरह अज्ञानमूलक है।

मनु ने ही नहीं, प्लेटो ने भी इसीतरह के चार भागों में समाज को विभाजित किया था।वहां भी दार्शनिक, योद्धा, व्यवसाई तथा सेवक कोटि के लोग योग्यतानुसार होते थे। बलात् कोई वर्ण नहीं बनाया जाता रहा। अब भी रुचि और योग्यतानुसार स्वयं पेशा चुना जाता है। बौद्धिक योग्यता को मनु तथा प्लेटो ने भी सर्वोपरि मान्यता दिया है। किसी स्तर पर दार्शनिक को राजा बनाने की व्यवस्था भी प्लेटो ने दे दिया था। उसको मनु ने नहीं पढ़ादिया था।पूरे विश्व में योग्यता के अनुसार कार्यविभाजन अब भी होता है। यह स्वाभाविक व्यवस्था है जिसको बदलने से विनाश होगा। इसके आदि चिंतक मनु प्लेटो के पहले हुये थे। उनके प्रतिभा की प्रशंसा होनी चाहिए। आक्षेप करना मतिभ्रम या निहित स्वार्थ है।

अन्य देशों और संस्कृतियों में भी गरीब-अमीर, योग्य-अयोग्य सभ्य-असभ्य आदि का अन्तर है। इसके अनुसार सामाजिक व्यवहार होता है। सामाजिक विषमता होना स्वाभाविक है। भारत में इसे मानवकृत मानकर वितंडा खड़ा करना राजनैतिक षडयंत्र है। यहां आरक्षण की व्यवस्था में चौथी पीढ़ी लाभ लेने लगी है किन्तु किसी के सामाजिक स्तर में सुधार नहीं है। सवर्ण और असवर्ण का झगड़ा बढ़ता जा रहा है। समस्या को यथावत बनाये रखने के लिए आरक्षण एक अनिष्टकारी दुर्नीति है। शत-प्रतिशत आरक्षण करने पर भी कोई अन्तर नहीं आयेगा। व्यवहार में कटुता बढ़ रही है। इसका सही उपाय एकदम भिन्न है। भारत में छोड़कर, विश्वस्तर में सामाजिक विषमता दिनोंदिन कम हो रही है। कहीं आरक्षण से लाभ नहीं है। सही उपाय आरक्षण नहीं संरक्षण है।

आरक्षण और संरक्षण में भेद है। आरक्षण से लाभान्वित होनेवालों की योग्यता में वृद्धि नहीं होती है। उनमें मनोबल और स्वाभिमान नहीं पैदा होपाता है। अतः हीनभावना बनी रहती है। संरक्षण द्वारा योग्यता बढ़ने पर व्यक्ति आत्मनिर्भर होता है। वह समाज व देश के लिए भार नहीं रह जाता है। विश्व में यही नीति है।

सांसद और विधायक का वेतन तथा आरक्षण की अवधि बढ़ाने के लिए सभी नेता एकमत होते हैं, अन्यत्र कहीं एक-दूसरे का समर्थन नहीं करते हैं। ऐसा होने से जातीय जनगणना, तदनुसार आरक्षण आदि के रूप में सुरसा का मुंह बढ़ता जारहा है। इस स्थिति मे विकास का प्रदर्शन भ्रम या पाखंड है। इसके कारण

मुफ्तखोरी में धन देकर निठल्ले पैदा किये जारहे हैं। इसे रोकने का उपाय बहुत सरल है। ईमानदारी होनी चाहिए।

सभी दल एकमत होकर आरक्षण को समाप्त करने तथा संरक्षण द्वारा अविकसित लोगों को योग्य बनाने की नीति स्वीकार करलें तो देश का भला हो जाय। सनातन धर्म को निर्विवाद बनाने केलिए भारतीय संस्कृति के प्रेमी विद्वानों, समाजशास्त्रियों तथा वैज्ञानिकों की सभा द्वारा मनुस्मृति आदि धर्मग्रंथों और ऐतिहासिक रचनाओं का शोधन तथा प्रक्षेपों का निष्कासन करना भी अपेक्षित है। मौलिक संस्कृति को सुरक्षित रखते हुए, धार्मिक मान्यताओं को देशकाल के अनुरूप बनाना आवश्यक है। इससे आरक्षण की मांग का काल्पनिक आधार समाप्त हो जायेगा। आरक्षण की समाप्ति से आरंभ करके धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक कायाकल्प करने पर वास्तविक स्वतंत्रता की अनुभूति होगी।।

## ( 135 )

## उपासना के स्तर

प्राथमिक स्तर में गुरु की सेवा ही उपासना है। इससे जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के अनुरूप उपासनाएं, उनकी योग्यता तथा विधि का ज्ञान मिलता है। माता-पिता से प्राप्त अनौपचारिक शिक्षा तथा अपने पैतृक गुण तथा संस्कार के अनुसार गुरु का वरण करने के कारण व्यक्तियों के स्वभाव व क्रियाकलाप में अन्तर यहीं से आरंभ हो जाता है। प्रथम अवस्था में उपासना को संपन्न करने वाले, आचार-संपन्न परिवेश में पलने वाले बालक को वयस्क होने पर अन्य उपासनाओं केलिए कुछ मार्गदर्शन यहां प्रस्तुत है।

प्रथम चरण से आगे बढ़ने पर, पूर्वावस्था में प्राप्त ज्ञान का प्रयोग आरंभ होता है।द्वितीय चरण में स्वधर्म ही उपास्य है। देवोपासना के साथ स्वधर्म का पालन करना कर्तव्य है। देवता की विधिवत आराधना के बाद उससे आशा करनी चाहिए। उपासना द्वारा प्रसन्न किये बिना याचना व्यर्थ जाती है।

देवता और प्रेतादि की उपासना में भेद ज्ञातव्य है। शीघ्र सिद्धि के लिए, प्रेतादि की उपासना का सरल मार्ग लेना बाद में कष्टकर होता है। देवता अनिष्ट नहीं करता है, वह आगे का मार्ग प्रशस्त करता है। किन्तु प्रेतादि स्थायी बंधन के कारण होते हैं। अतः उनसे मुक्ति और विकास असंभव होजाते हैं।

तृतीय चरण में देवता नहीं, ईश्वर की उपासना का समय आ जाता है। देवता अनेक हैं, ईश्वर एक है। वह व्यापक और सर्वज्ञ है। लौकिक जीवन के लिए सर्वश्रेष्ठ उपास्य ईश्वर है। श्रेयस्कर और मनोवांछित फल वह स्वयं देता है। उससे कुछ मांगना नहीं पड़ता है। मांगना तो ईश्वर की सर्वज्ञता में अविश्वास है।

चौथे चरण में ब्रह्म या आत्मतत्व की उपासना होती है। इस स्थिति में अकामता होने से मनोवांछित का अभाव होजाता है। यह उपासना सर्वसाधारण केलिए नहीं है। इसके लिए वैराग्य रूपी विशेष योग्यता होनी चाहिए। वैराग्य होने पर किसी स्तर से चतुर्थ श्रेणी की उपासना होसकती है। यही कहा है- यदह एव विरजेत् तदह एव प्रब्रजेत्।

इन सब उपासनावों केलिए आश्रम व्यवस्था बनी थी। स्वभाव में परिवर्तन और वैराग्य से आश्रम का निर्णय स्वतः भी हो सकता है। इन चार चरणों में क्रमशः जाना आवश्यक नहीं है। प्रथम चरण सब केलिए अनिवार्य है। इससे उत्तम नागरिक, विश्वसनीय तथा सत्यसंकल्प व्यक्ति बनने पर सभी क्षेत्र में सफलता संभव है। दूसरे और तीसरे चरण सब के लिए उपयोगी हैं। इनमें सफलता केलिए प्रथम चरण की उपासना अनिवार्य है। द्वितीय चरण में ही पूरी आयु रहने वाले महापुरुष हुये हैं। ईशोपनिषद में है - 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेत् शरदः शतम्।' वशिष्ठ की तरह, अग्निहोत्रादि करते हुये आजीवन रहने वाले ब्राह्मण बहुमान्य रहे हैं।

तृतीय चरण तक में ही रहने वाले तपस्वी भी हो सकते हैं। यह अवस्था भी उद्धारक है। नियमानुसार प्रब्रज्या लेकर चतुर्थ आश्रम में जाने के लिए अटल वैराग्य आवश्यक है क्योंकि पुनः लौटने का रास्ता बन्द होजाता है। इस मर्यादा को तोड़ने पर भूसी की आग में जलना ही प्रायश्चित है। कलियुग में इस उपासना का विकल्प यह है कि निवृत्तराग होकर, आत्मचिंतन या अच्छे कार्य में प्रवृत्त रहते हुये अपने आवास पर ही रहे। लिखा है- 'अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवृत्तः निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्।'- हितोपदेश।

चारों स्तर की उपासनाओं का पालन स्वभाव और क्षमता के अनुसार विहित है। प्रथम चरण की उपासना के बिना अन्य स्तर पर कुछ भी करने वाले लोग पाखंडी होकर समाज केलिए कंटक बनते हैं। वे स्वयं भी अधोगति को प्राप्त

करते हैं। अतः प्रथम चरण की उपसना को अनिवार्य मानना आवश्यक है। अन्य स्तर की उपासनायें ऐक्षिक हैं।

## ( 136 )

## पशु या पशुपति

पशु कुछ कह नहीं सकता है। पशुपति मौन समाधि में रहकर कुछ नहीं कहतेहैं हैं। दोनों के पास संग्रह किया हुआ कुछ नहीं रहता है। दोनों में भावनात्मक विकार नहीं हो़ते हैं। इस तरह की कुछ समानताओं के आधार पर दोनों को एक तरह का नहीं माना जा सकता है। दोनों की विशिष्टताओं के कारण उनमें आकाश-पाताल का अन्तर है।

मानव योनि का लक्षण- हाथ-पैर आदि तथा रक्त का लाल रंग जैसी समानताओं के कारण प्रत्येक मनुष्य या स्त्री-पुरूष को समान नहीं माना जा सकता है। इनमें गुण, स्वभाव तथा प्राकृतिक रचना में विशिष्टता होती है जिससे बहुत बड़ा अंतर हो जाता है। अपने क्षेत्र में योग्यता को ही समानता का आधार बनाया जा सकता है। योग्य बनाकर समानता लाने का प्रयास करना उचित है। समानता की अंधी खोज में पशु को ही पशुपति न मान लिया जाय। पशुतुल्य मनुष्य भी ज्ञातव्य हैं।

शासन की सत्ता पुलिस, मिलिटरी तथा अनेक प्रबल संगठनों के बल पर रहती है। इन संगठनों का नियंत्रण कानून और नियम द्वारा होने पर, इनका गठन न्याय और व्यवस्था के लिए हितकर सिद्ध होता है। मंत्री, सांसद, विधायक आदि से प्रभावित होकर कार्य करने पर, इन संगठनों के प्रयोग में निष्पक्षता का अभाव हो जाता है। तब चाटुकार कर्मचारी पुरस्कृत होते हैं और भ्रष्टाचार व्याप्त होता है। इससे अन्याय, अव्यवस्था, अविश्वास और विनाश का तांडव होता है। शासक वर्ग इनका प्रयोग निजी स्वार्थ में करते हुये, सत्य और न्याय के प्रति अंधे हो जांय तो वह लोग मानवता की दृष्टि से पशुवत हैं। विवेकभ्रष्ट होने पर उनका पतन होता चला जाता है। तब जंगल राज स्थापित हो जाता है।ऐसा करनेवाले ही पशुपति (सर्वसमर्थ) बन जांय तो अनर्थ है। फिर सभी मानदंड और आदर्श ध्वस्त हो जायेंगे और न्यायालय विवश मूकदर्शक बन जायेंगे।

पशु और पशुपति के बीच मानव की भी एक सत्ता है। पशु या तत्तुल्य मानव केलिए पशुपति बनना असंभव है। पशुपति के प्रसन्न होने पर, नृपशु के किये गये सारे हथकंडे मनुष्य ही नष्ट कर सकता है। मन के अधीन रहनेवाले स्वार्थी पशु से बुद्धिमान मनुष्य प्रबलतर है। मनुष्य बनने पर समाज जीवित रह सकता है।हम मनुष्य बनें। कवि ने ठीक कहा है- 'यही पशुप्रवृत्ति है कि आप ही चरे। वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।।' पशु नहीं मनुष्य के लिए ही, साधना द्वारा, पशुपति बनना या उनको प्रसन्न करना संभव है।

## ( 137 )

## मूल्यों का मूल्यांकन

आप्टे के शब्दकोश में मूल्य शब्द के अर्थ कीमत, लाभ, मूलधन आदि हैं। पाश्चात्य दर्शन के 'वैलू' शब्द का हिन्दी अनुबाद मूल्य माना गया है। इससे मूल्य शब्द के अर्थ में बहुत विस्तार हो गया है। चैंबर शब्दकोश में वैलू के 'इंट्रिंजिक वर्थ आर गुडनेस, हाई वर्थ, दैट ह्विच रेंडर्स एनी थिंग यूजफुल आर इस्टिमेबुल' आदि अर्थ हैं। व्यवहार में, अब, आन्तरिक तृप्ति, उच्च योग्यता, उपयोगिता या इन्हें प्रदान करने वाला पदार्थ मूल्य है, ऐसा अर्थ मान्य है। इस मूल्य को पहचानना और आदर देना मूल्यांकन है।

कामनाओं की सिद्धि के साधन किसी पदार्थ, गुण या सिद्धांत में मूल्य निहित होता है। वह अदृश रहकर अपने प्रभाव से अनुभूत होता है। मूल्यों के मूल्यांकन का अर्थ है मूल्यवान पदार्थादि की पहचान और उनका सम्यक् आकलन। वस्तुनिष्ठ मूल्य होने पर, जानकार व्यक्ति मूल्यवान की पहचान कर सकता है। हीरा की पहचान जौहरी करता है, गड़ेरिया नहीं कर सकता है। व्यक्तिनिष्ठ होने पर मूल्यांकन में एकरूपता होना कठिन है क्योंकि 'भिन्नरुचिर्हि लोकः', 'मुण्डेमुण्डे मतिर्भिन्ना।' रुचि में वैभिन्य स्वाभाविक है। एकरूपता के विषय में आगे विचार होगा।

व्यक्ति, समाज तथा शासन के लिए मूल्यों में भेद है। आचार, शील, विद्या, ज्ञान-विज्ञान आदि के द्वारा व्यक्ति मूल्यवान होता है। परस्पर सौहार्द, सहयोग, विश्वास, स्वधर्म में निरति और कौशल आदि के द्वारा समाज मूल्यवान होता है। शांति-व्यवस्था, आपदाओं से त्राण, न्याय, निष्पक्षता और समानता आदि के होने

पर शासन मूल्यवान होता है। इससे सभी सहमत होंगे किन्तु जिन गुणों के कारण व्यक्ति, समाज या शासन मूल्यवान होते हैं, उन गुणों के स्वरूप में मतभेद होजाता है।मतभेद का कारण हृदय का कालुष्य और पूर्वाग्रह है। शुभ फल की इच्छा सब करते हैं किन्तु अशुभ साधनों के प्रयोग से परहेज नहीं करते हैं। 'न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः' - महाभारत की बात चरितार्थ होती है। मतैक्य होने में यही समस्या है।

मूल्य के सहायक कारणों को भी मूल्य कहा जाता है। सुख-सुविधाओं को देने में और अनेक कार्यों के लिए आवश्यक होने के कारण अर्थ भी मूल्य है, स्वतः निर्मूल्य है। अर्थार्जन में सहायक साधनों में भी मूल्य है। इस तरह कार्य कारण की शृंखला बनती है और समस्त पदार्थों में कुछ न कुछ मूल्य दिखाई पड़ता है। अर्थ से वैराग्य होने यानी परम मूल्य का त्याग होने पर, उसके लिए बनी कारण की श्रृखंला टूट जाती है। व्यक्ति के विषय में मूल्य बदलते रहते हैं। समाज और शासन के लिए देशकाल के अनुसार स्थाई बने रहते हैं।

मूल्यों के मूल्यांकन तथा तारतम्य के निर्धारण में एकरूपता होना उपयोगी है। इसके लिये, ऊपर कही गई, कार्यकारण शृंखला की एकरूपता संस्कारों के जागरण और शिक्षा से संभव है। मूल्यांकन करने के लिए मूल्यवान व्यक्ति चाहिए। योग्य व्यक्ति का ही मूल्यांकन सही होगा। योग्यता के लिए संस्कार और शिक्षा में तद्रूप गुणात्मकता होने से लाभ होसकता है। मूल्यांकन के लिए गीता में बताया गया उपाय निर्विवाद हो सकता है। उसमें है--

'किं कर्म किमकर्मेति कवयोप्यत्र मोहिताः', तथा अन्यत्र- 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थतौ।' इन दोनों वाक्यों का अर्थ है कि शुभाशुभ का निर्णय कठिन है, अतः शास्त्रादेश को प्रमाण मानना चाहिए। रामायण, महाभारत, तथा धर्म और नीति के अनेक के शास्त्रों में कर्तव्याकर्तव्य, शुभाशुभ आदि का विशद वर्णन है। शास्त्रों में श्रद्धा होनी चाहिए। इन शास्त्रों को विश्वसनीय आप्तवचन मानकर, उनके अनुसार, मूल्यों का मूल्यांकन करना निर्विवाद हो सकता है।

## भक्ति और अंधभक्ति

कर्मयोग की सिद्धि केलिए,गीता में ईश्वर की भक्ति का महत्व प्रतिपादित है। 'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध च' (गीता-8/7)। यहां स्वधर्म के पालन के समय भी सतत स्मरण रूपी भक्ति का उपदेश है।अंत में – 'विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।' (गीता-18/63)। ऐसा कहकर कर्ता को, अंधभक्ति से मुक्त करते हुये, स्वविवेक का उपदेश है। भक्ति का फल अज्ञान नहीं, ज्ञान होता है। यही सिद्धांत है –'भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते।'

भक्ति की पराकाष्ठा होने पर आत्मज्ञान होता है। ईश्वर को आत्मसमर्पण करने के पहले तात्विक ज्ञान के लिए उपदेश है - 'ततो मां तत्वतोज्ञात्वा विशतेतदनन्तरम्'। (गीता-18/55)। भक्ति के कारण नहीं, ज्ञान के आधार पर ईश्वर को आत्मार्पण करना उपदिष्ट है। निग्रह तथा अनुग्रह का करिश्मा दिखाकर भूत, प्रेत, यक्ष, गंधर्व और राक्षस भी भक्ति और समर्पण के पात्र बनकर फंसाने का प्रयास करते हैं। अतः ईश्वर के विषय में भी अंधभक्ति वर्जित है, तत्त्वतः ज्ञान आवश्यक है। मनुष्य तो अंधभक्ति क्या भक्ति का पात्र भी नहीं होसकता है क्योंकि उसकी मति और मान्यता परिवर्तनशील है। कहा है- सोना परखे एक बार पुरुष परखे बार-बार। चौदह वर्ष बाद, अयोध्या लौटते समय, राम ने भरत की उस समय की मानसिकता को जानने के लिए हनुमान जी को भेजा। भरत को अपरिवर्तित जानने के बाद ही अयोध्या गये। मनुष्य सदैव परीक्षणीय रहता है। अतः मनुष्य की भक्ति करना बुद्धिमानी की जगह मनमानी है तथा उस पर अंधभक्ति करना जड़ता है। मनुष्य रूप में माता-पिता और गुरु ही श्रद्धाभक्ति के पात्र माने गये हैं। गुरु लोग व्यवसायी हो गये हैं। अतः घर के बाहर भक्ति का पात्र खोजना मूर्खता है।

भक्ति का पात्र बनने के लिए आत्मप्रशंसक और स्वर्णिम भविष्य की आशा देकर योजना बनाने वाले धूर्त हैं। अपने को स्वयं विश्वसनीय कहना, भविष्य में भीषण छल का लक्षण है। इस तरह का आचरण करने वाले संत, गुरु, धर्माचार्य, राजनेता आदि विश्वास के योग्य नहीं रह गये हैं। अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन कार्य से करने वाले विश्वसनीय होते हैं, मुंह से प्रकाशित करने वाले

निन्दनीय हैं। आत्मप्रशंसा करने वालों की बात सुनना ही अहितकर है। उनकी मंशा और कार्य को भलीभांति जानकर, तदनुसार व्यवहार करना चाहिए। उन्हें सदैव परीक्षणीय मानना ही बुद्धिमानी है। उनकी भक्ति का प्रश्न ही नहीं। भक्ति का पात्र नहीं, विश्वसनीय होना ही मनुष्य की सर्वोपरि उपलब्धि है। यह अंतःकरण की निर्मलता से ही सुलभ है। निर्मलता से ही ईश्वर का सान्निध्य मिलता है। वही भक्तिभाजन है।

निर्मल मन जन सो मोहिं पावा।

मोहि कपट छलछिद्र न भावा।।

## ( 139 )

## शिक्षा की दिशा और दशा

महामना मालवीय जी ने बीसवीं सदी के आरंभ में एक विश्वविद्यालय स्थापित करने का संकल्प लिया। राजनीति में अशुचिता का भय उन्हें रहा होगा अतः अपनी रुचि के अनुकूल संकल्प लेकर एक अलग क्षेत्र भी बनाया। तब राष्ट्रीयता की भावना के साथ ही निःस्वार्थ दान देने की रुचि और क्षमता वाले लोग थे। उन्हें आभास था कि देश-सेवा के लिए अच्छी शिक्षा से बढ़कर कोई अन्य कार्य नहीं है। मालवीय जी ने दूरदृष्टि को प्रमाणित करते हुये, सही दिशा और अनुकूल दशा में परिश्रम करके काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना किया। इससे उनकी अमर कीर्ति और देश केलिए सरस्वती की स्थाई पताका फहरा रही है।

मालवीय जी के आचरण से शिक्षा मिलती है कि समाज सेवा करने के लिए सही दिशा में प्रयास सार्थक होता है। गलत या रुचि के विपरीत दिशा में किया गया प्रयास व्यर्थ जाता है या विपरीत परिणाम देता है। दिशा ही नहीं तत्कालीन दशा के अनुसार निर्णय लेने पर सफलता मिलती है। अन्यथा परिश्रम व्यर्थ जाता है। देशकाल के अनुसार दिशा का निर्धारण न कर पाना सबसे बड़ी समस्या है। इसके लिए अंतर्दृष्टि चाहिए।

समाज केलिए शिक्षा का मूल्य स्थाई है। इस दिशा में व्यवसायी और माफिया लोगों की भीड़ तथा सदोष राजकीय नीतियों से शिक्षा की दशा खराब हो

गई है। पढ़ाने व पढ़ने वालों का उद्देश्य अर्थार्जन मात्र हो तो शिक्षक ज्ञान का दुकानदार और विद्यार्थी उसका ग्राहक मात्र बन जाता है। शिक्षा ग्रहण करने का मुख्य अधिकारी बालक है जिसमें जिज्ञासा होती है। उसमें चरित्र-निर्माण से लेकर सारी संभावनाओं का बीजारोपण सार्थक होगा। राजकीय व्यवस्था की प्रतीक्षा न करके, शिक्षक दो-चार बालकों को भी अनौपचारिक शिक्षा देने लगें तो वास्तविक लाभ दिखेगा। बड़े-बड़े सेमिनार के साथ ही यह छोटा कार्य भी लाभकारी है।

शिक्षा का महत्व कभी कम नहीं होगा। दिशा का महत्व यथावत है। दशा को बदलकर उपयोगी बनाने का प्रयास, सार्थक होगा। शिक्षा क्यों, किसके लिए, कैसी और कैसे, इन बिन्दुओं पर गहन विचार करके, चरित्र-निर्माण को प्राथमिकता देते हुये, अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करना सबसे बड़ी समाज सेवा है।

## ( 140 )

## भक्तों की भीड़

किसी व्यथित साधकभक्त के उद्गार हैं--

सोचा मैंने उषःकाल में मां का दीप जलाऊं।
अभिनवअर्थ उपार्जितकरके मैं भी भेंट चढ़ाऊं।।
किन्तु भक्तपद प्रक्षेपों से धूल यहां भर आई।
रहा बुहार उसी को तब से यों ही जनम गवांई।।

संस्कृत के भज् धातु से भक्ति शब्द बनता है। इस धातु के कई अर्थ हैं किन्तु विशेषतः, आराधना करने, सेवा करने तथा उपभोग करने के अर्थ में भक्त शब्द बनता है। मुख्य रूप से देवता की आराधना ही भक्ति मानी जाती है। इसके अलावा रक्षा की सेवा, जनता की सेवा, धर्माचार्यों द्वारा धर्म की सेवा, साहित्य की सेवा, शिक्षक की सेवा आदि क्षेत्रों में कार्य करनेवाले भी अपने उपास्य के सेवक या भक्त बनते हैं। उपभोक्ता के अर्थ में कोई भक्त नहीं कहलाता है जबकि वास्तव में सारे भक्त इसी कोटि के हो गये हैं। आरंभ में प्रस्तुत कवि की वेदना, मंदिर के उपलक्षण से, सभी क्षेत्रों के भोक्ता भक्तों के लिए है।

किसी देवालय में जानेवालों की भीड़ उपास्य की आराधना या सेवा के लिये नहीं, अर्थ और काम की याचना, भय से त्राण हेतु या पर्यटन केलिए होती है। आतुर लोग मंदिर में पहुंचते ही अपनी याचना सुनाने लगते हैं। देवता की सेवा में कुछ पदार्थ रखकर उपासक नहीं याचक की तरह बाहर जाते हैं।

साहित्य के सृजन के क्षेत्र में विद्वान् भक्तों द्वारा प्राचीन ग्रंथों में प्रक्षेप करने या अपने संप्रदाय के पोषण के लिए वाल्मीकि, व्यास, शंकराचार्य आदि के नाम से लिखने की परंपरा चल पड़ी है। सौ पुराण और दो सौ उपनिषद बाजार में आ गये हैं। नवीन साहित्य- सेवक इतिहास और स्थापित मान्यताओं को ध्वस्त करके प्रगतिशील बनते हैं। सस्ती जनभावनाओं का उपभोग ही उनकी साहित्य सेवा है।

धर्म के सेवक शिष्यों की भीड़ को सामूहिक दीक्षा देते हैं। अर्थार्जन उनका उद्देश्य है। अब - हरइ शिष्य धन शोक न हरई। सो गुरु घोर नरक में पड़ई।। तथा-बेचहिं वेद धररम दुहि लेहीं, आदि बातें चरितार्थ हो रही हैं। शिष्यों के धन का उपभोग ही धर्मगुरुओं की भक्ति से हो रही है।

राजनीति और उसके व्यवसायियों की भीड़ सबसे वृहद् है। राजनीति और राजधर्म के लक्षण समाप्त हैं। जनसेवा या देशसेवा की भावन नहीं रह गई है। सत्ता के सारे दुर्गुण आक्रांत कर लिये हैं। सत्ता का उपभोग ही राजधर्म बन गया है।

अन्य क्षेत्रों में भी यथासंभव विकार आ गये हैं। शिक्षक ज्ञान के दुकानदार हो गये हैं। गुरुशिष्य का पुराना संबंध समाप्त हो रहा है। रक्षक ही भक्षक बन जाता है। लोकसेवक अपनी ही सेवा कराता है। जिस किसी क्षेत्र में उपासना करने चलें वहीं उपभोक्ता भक्तों की भीड़ और गंदगी भरी है। गंदगी हटाने में ही जीवनदान करना पड़े तो नया उपहार समर्पित करना संभव नहीं है। यही वेदना उपर्युक्त कविता में है।

देश, संस्कृति, जनता, धर्म, शिक्षा आदि में श्रद्धा भक्ति नहीं तो इनकी सेवा करना असंभव है। श्रद्धा होने पर ही सेवा होती है, अन्यथा उपभोग होता है। भक्ति नहीं भोग की भावना से सभी भक्त ग्रस्त हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति का यही परिणाम है। संयम की संस्कृति के साथ भक्त बनने पर सेवा का कार्य होगा।

इस समस्या का निराकरण है कि नये तरीके से कोई सेवाकार्य आरंभ करें।

स्वच्छ रहकर, थोड़ा ही शुभ कार्य करें। उसका परिणाम बड़ा हो सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में यह करना अधिक साध्य और उपयोगी है। बालक को आचार तथा अन्य अनौपचारिक पाठ और उसके अभिभावक को बालक के प्रति, कर्तव्यबोध की शिक्षा देना तथा ऐसी शिक्षा देने वालों को तैयार करना अपने को संतोष तथा समाज के लिए संजीवनी शक्ति प्रदान कर सकता है।

**( 141 )**

## शुचिता

मनुस्मृति के बारह अध्यायों में मानव जीवन के समस्त पुरुषार्थों को सिद्ध करने के लिए ज्ञानामृत निहित है।सब कार्यों की सिद्धि केलिए प्रथम आवश्यकता शुचिता (पवित्रता) की होती है। छिद्ररहित सुपात्र में ही पदार्थ सुरक्षित और शुद्ध रहता है। इसके लिए उपाय मनुस्मृति के पाचवें अध्याय में वर्णित हैं। शारीरक, मानसिक तथा वाह्य पदार्थों की शुद्धि के लिए यह आचरण और उपाय, बिना किसी भेदभाव के, मानव मात्र के लिए उपदिष्ट हैं। उदाहरण के लिए प्रस्तुत हैं म.स्मृ. श्लोक 5/105,6,7-

ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वार्युपार्जनम्।

वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तृणि देहिननाम्।

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।

योर्थ्रे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः।

क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः

प्रच्छन्नपापा जाप्येन तपसा वेदवित्तमाः।।

इनका संक्षिप्त अर्थ है कि ज्ञान, तप, अग्नि, आहार, मिट्टी, मन, जल, लेपन, वायु, सुकर्म, सूर्य और समय यह बारह पदार्थ प्राणी को शुद्ध करते हैं।

सभी तरह की शुद्धि में अर्थ (अन्नादि सभी धन) की शुद्धि सर्वश्रेष्ठ कही गयी है। इसके बिना शुद्धि असंभव है।

विद्वान् को क्षमा, बुरा कर्म करने वाले को दान, गुप्त पाप करने वाले को जप तथा वेदज्ञ को तपस्या शुद्धिकारक है।

अर्थशुद्धि (रोजीरोटी), धन के प्राप्ति की विधि को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। यह बात लोक में भी प्रचलित है। जैसा अन्न वैसा मन, सभी कहते हैं। गोरखनाथ ने कहा--

सहज मिला सो दूध है मांग लिया सो पानी।
छीन लिया सो रुधिर है यह गोरख की बानी।।

बिना मांगे मिला हुआ या अपने परिश्रम, स्वधर्म पालन से प्राप्त धन सहज प्राप्ति है। तत्काल खाद्य पदार्थ को छोड़कर, संग्रहणीय धन कोई स्वयं दे जाय वह संदेहास्पद है क्योंकि दाता की धनार्जन विधि अज्ञात होती है। एक पौराणिक कहानी है-एक सुविख्यात ऋषि याचना के लिए कई राजाओं के पास गये। प्रत्येक राजा धन देने के लिए तैयार होजाता था। ऋषि आयव्यय और अवशेष का विवरण जानने की इच्छा व्यक्त करते थे। विवरण जानने पर ज्ञात हो जाता था कि राजा के पास निजी धन नहीं है। जो है वह प्रजा का अंश है। ऐसा जानने पर दान लेने से इंकार कर देते थे। अन्त में एक राजा ने ऋषि से कहा कि रात्रि-विश्राम करें, सुबह अपना धन देंगे। राजा ने रात्रि में, वेश वदलकर, एक लोहार के यहां रातभर धौंकनी चलाकर आधा रूपया कमाया। सुबह ऋषि को वही धन दिया। ऋषि के आशीर्वाद से राजा की संपन्नता कई गुना बढ़ती गई। ऋषि के लिए वही कुबेर का खजाना हो गया। पवित्र धन और दान की महिमा में यह कहानी वर्णित है।

आज के समय में व्यक्ति, परिवार तथा वृहत् समाज और संगठन सभी में रोगव्याधि, दुर्बुद्धि, कलह तथा अनेक प्रकार की व्याधियों का कारण छीनकर खाया गया पदार्थ है जिसे गोरखबानी में रुधिर कहा है। शुद्ध अन्न दुर्लभ है। इसके लिए उपाय ढूंढना चाहिए।

अपरिग्रह एक व्रत है। पातंजल योग में जीवन की सार्थकता केलिए इसका बड़ा महत्व बताया गया है। दूसरे के अंश का लेलेना ही नहीं, संग्रह केलिए शुद्ध दान लेना भी परिग्रह है। अपरिग्रह का फल योगशास्त्र में लिखा है-अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः। अर्थात् अपरिग्रह महाव्रत से पूर्वजन्म कैसा था, वर्तमान कैसा है तथा भविष्य कैसा रहेगा, यह सब विदित हो जाता है। इससे मनुष्य अपनी कमी को दूर कर सकता है तथा धैर्य बना रहता है। अर्थ की शुचिता के लिए यह महाव्रत है।

अर्थ की शुचिता सभी तरह के शौचाचार, सत्य, तप आदि के लिए भी, प्राथमिक कर्तव्य है। अर्थार्जन करने में दोष नहीं है। उसके अर्जन की विधि और उसका उपयोग स्वधर्म सम्मत होना चाहिए। इससे सर्वत्र शुचिता रहती है और आगे के सभी कार्य स्वतः शुभ होते हैं।

## ( 142 )

## वैदिक और वैज्ञानिक दृष्टि

वैदिक ऋषियों ने पिंड और ब्रह्मांड के ऐक्य को समझा था। वे ध्यानस्थ होकर पिंड में ही ब्रह्माण्ड के सत्य और ऋत को जान जाते थे। आत्मतत्व को जानना ही ब्रह्मज्ञान है, यही उपनिषद् कहता है- 'यस्मिन् ज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति'। सूक्ष्म से वृहद् को, सूत्र से भाष्य को, समास से व्यास तथा व्यष्टि से समष्टि को जानने की सशरीर जंगम प्रयोगशाला हमारे ऋषि लोग थे। लोक-परलोक दोनों के लिए, समस्त विषयों पर गूढ़ ज्ञान ऋषियों के माध्यम से वेद के रूप में प्राप्त है। उनके अन्वेषण को व्यवहार द्वारा सत्यापित किया जाता था या उनकी प्रयोग की विधि जानने केलिए वैसा ही होना पड़ता था। इस ज्ञान का संशोधन नहीं करना पड़ता था, अपरिवर्तनीय रहे हैं। एक ही विषय पर दो मत होने पर देशकाल के अनुसार दोनों मान्य होते हैं। योग्य शिष्य को ही विद्यादान करने के लिए अपनी प्रयोगशाला को आत्मस्थ ही रक्खा जाता था। सुपात्र के अभाव में बहुत सी विद्यायें लुप्त हो गईं क्योंकि कुपात्र को दी गई विशिष्ट विद्या का दुरुपयोग होता है।

वैज्ञानिकों ने अनुसंधान करके भौतिक जगत के रहस्यों को सुलझाया। अभी बहुत कुछ करना बाकी है। दूरसंचार, दूरदर्शन, विद्युत, वायुयान, आयुर्वेद, धनुर्वेद, ब्रह्मास्त्र, ग्रहण तथा सूर्यचंद्रनक्षत्र ग्रह के किरणों प्रदूषण व उनका प्रभाव, मनोविज्ञान, ज्योतिष, सृष्टिविज्ञान, पुत्रेष्टि से अति-मानव राम, बेन की शरीर के मंथन से मांधाता जैसी सृष्टि, शाप से परीक्षित को सर्पदंश, जनमेजय को कुष्ट आदि अनेक घटनाओं और विषयों पर वैदिक साहित्य में मिथक और काल्पनिक मानी गयी बातें विज्ञान के प्रयोगों द्वारा सत्यापित हो रही हैं। पौराणिक मान्यताएं संदिग्ध हो सकती हैं किन्तु किसी भी वैदिक सिद्धांत को बड़ा वैज्ञानिक संशोधनीय या गलत नहीं कहता है। वैज्ञानिक अन्वेषणों में संशोधन होते रहते हैं।

अन्तिम निर्णय वैदिक मान्यता तक पहुंच सकता है।

वैदिक धर्मादेशों, आचार संहिता तथा ऐतिहासिक पुरुषों के कुछ उदाहरण तथा उनसे संबंधित कुछ वैज्ञानिक सिद्धांतों के दृष्टांत द्वारा दोनों तरह के अनुसंधानों के संयुक्त अध्ययन की उपयोगिता और उसकी सीमा के विषय में कुछ चिंतन यहां प्रस्तुत किया जारहा है।

पितृपक्ष से समान गोत्र में और मातृपक्ष से पांच पीढ़ी (सपिण्ड) में विवाह संबंध निषिद्ध है। अनुलोम व विलोम का विचार भी विवाह संबध में विहित है। संपर्क से दोष का संक्रमण होता है। अतः अपने कुल को पवित्र रखने केलिए कठोर नियम, जातिनिष्काशन आदि भी पुराने समय में होता था। व्यभिचार से सुरक्षित रखने के लिए स्त्री की विशेष सुरक्षा की जाती थी। वर्णसंकरता( दोगलापन) अपने लिये ही नहीं, कुल के दिवंगत पितरों केलिए भी अनिष्टकारी मान्य है। गीता में है -

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।

पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।।

पितरों के लिए तर्पण आदि, देवपूजन, स्वाध्याय, अग्नि में आहुति, अतिथि को भोजन, यह पांच महायज्ञ कहे जाते हैं जिनको नित्य करना तथा सूर्यार्घ्य देना सब के लिए विहित है।

शादी में गोत्र-पिण्ड के अलावा कुलपरंपरा, नाड़ीदोष, गुणों की गणना कीजाती है। ज्योतिष से निर्धारित योग, शारीरिक रचना के लक्षण आदि भी महत्वपूर्ण माने जाते हैं। कुल में किसी व्यक्ति की सुकृति या दुष्कृति का प्रभाव इक्कीस पीढ़ी या सात पीढ़ी तक पड़ना भी लिखित है। जातिमात्र से वर्ण-निर्धारण नहीं होता है। वर्ण परिवर्तन की व्यवस्था स्मृतियों में है -

शूद्रो ब्राह्मणतां याति ब्राह्मणो याति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।। म.स्मृति 10/65,
वर्णोत्कर्ष का विधान या.स्मृति 2/96में भी है।

विशेष प्रकार से विवाह संस्कार के द्वारा शूद्रा से सात पीढ़ी में, वैश्या से पांच पीढ़ी में और क्षत्रिया से तीन पीढ़ी में ब्राह्मण वर्ण होता है। इसी तरह

ब्राह्मण से सात, पांच और तीन पीढ़ी में शूद्र, वैश्य और क्षत्री वर्ण बन जाता है। इसी तरह अन्य वर्णों के भी परिवर्तन दो पीढ़ी के अंतर से होते हैं।

वर्ण ही नहीं योनि परिवर्तन भी कर्म और संकल्प के अनुसार होना शास्त्रोक्त है - ईशोपनिषद में 'यथाकर्म यथा श्रुतम्' पुनर्जन्म लिखा है। कामासक्त नहुष का अजगर होना, धर्म में च्युति से नृग का गिरगिट होना, परिग्रह से बुडिल का हाथी होना आदि घटनाएं विख्यात हैं। स्मृतियों और पुराणों में योग्यतानुसार नीच योनियों मे पतन का विवरण सविस्तार मिलता है। शाप और आशीर्वाद से भी तत्काल काग आदि की योनि, राक्षस या कुष्टरोगी होना आदि लिखा है। वाणी से ही नहीं नेत्र से देखने या मनःसंकल्प से भी ऋषि निग्रह या अनुग्रह करने में समर्थ थे।

भौतिक विज्ञान, आयुर्वेद, धनुर्वेद, कर्मकांड, ज्योतिष, सृष्टिविज्ञान आदि सभी विषयों पर वैदिक साहित्य उपलब्ध है। इनमें से बहुत क्षेत्रों में वैज्ञानिक ढंग से भी अनुसंधान किये गये हैं। ऊपर लिखे गये सभी विषयों पर वैज्ञानिक शोध की उपयोगिता होगी। इनमें से धार्मिक और सामाजिक व्यवहार में सहायक के रूप में जीन्स के सिद्धांत, डीएनए, ज्योतिष, मनोविज्ञान जैसे कुछ विषय विशेष अन्वेषण के योग्य हैं।

आचार व्यवहार केलिए सबसे उपयोगी जीन्स के सिद्धांत हैं। जीन्स के सिद्धांत से स्मृतियों में वर्णित वर्णव्यवस्था, वर्णपरिवर्तन, शारीरक रचना, गुण और स्वभाव का वैज्ञानिक ढंग से भी सत्यापन होता है। डी.एन.ए. का ज्ञान उपयोगी है। शुद्ध गुण के जीन्स नहीं संभव हैं। गुणदोष सब में रहते हैं। प्रबल तत्व ही विज्ञान पकड़ता। दुर्बल छिपा रहता है। सत्यानृत मिथुनीकृत ही लोकव्यवहार चलता है। अतः पूर्ण सत्य जानने में विज्ञान के सिद्धांत को वैदिक मान्यता के समान होने तक अन्वेषण करना होगा।

अति होने पर चंदन से आग निकलती है। अति संघर्ष करने पर ऋषि को भी क्रोध आसकता है। सूक्ष्म दोष भी प्रगट हो सकता है। समस्त गुणदोष सब पदार्थों में पायेजाते हैं, जो अधिक है वही मुख्य कहा जाता है। सृष्टि-विज्ञान का पंचीकरण सिद्धांत यही बताता है। भौतिक विज्ञान की खोजें पंचभूतों तक तथा मनोविज्ञान की खोज अंतःकरण तक सीमित होती हैं। अति उद्वेग होने पर मुनियों

की मनोदशा व अंतःकरण पर भी पंचभूतों का प्रभाव पड़ सकता है। बुद्धि या महत्तत्त्व प्रकृति के क्षेत्र की अंतिम सीमा है। गीता में है - बुद्धेः परतस्तु सः, अर्थात् बुद्धि से परे परमात्मा ही है। बुद्धि तक पंचीकृत पदार्थों के गुणदोष प्रगट होते रहते हैं। वैदिक क्रियाओं और साधनाओं से दोषों का निवारण किया जा सकता है। जीन्स के वैज्ञानिक भी उच्च कोटि के जीन्स बनाने में सफल हो सकते हैं। रावण नहीं राम बनाने का प्रयास सार्थक होगा।

ज्योतिष में फलित अंश (भविष्यवाणी) के विषय मे वैज्ञानिक ढंग से विश्वसनीयता का तरीका खोजना उस शास्त्र के लिए उपकारक होगा। अभी, केवल गणना से नहीं नक्षत्रों का बलाबल साधना से जानने वाला ज्योतिषी ही सही भविष्य बताने में समर्थ है। मनोविज्ञान मन के विविध क्रिया कलापों, उनका प्रभाव, दशा, परिवर्तन आदि का बड़ा उपयोगी अध्ययन कर रहा है। मनोरोग, मनोनिग्रह जैसी समस्याओं पर सिद्ध मंत्रतंत्र की तरह प्रभावी क्रिया खोजना उपयोगी होगा। मंत्रादि के प्रयोक्ता दुर्लभ हो रहे हैं। फ्रायड का काममूलक प्रवृत्ति का सिद्धांत गीता के श्लोक - *काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः। महाशना महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।* से पुष्ट होता है। प्रकृति के क्षेत्र तक मनोविज्ञान भी अन्वेषण कर सकता है। प्रकृति का क्षेत्र अलिंग पर्यन्त है। सूक्ष्मविषयत्वं चालिंगपर्यवसानम् 1/45, पातंजल योग। मूलप्रकृति (गुणों की साम्यावस्था, माया) के पहले तक सूक्ष्म विषयों का क्षेत्र है। सूक्ष्मतम पुरुष (परमेश्वर)है। लिखा है- अव्यक्तात्पुरुषः परः (श्रुति)। ऋषि उस अलिंग क्षेत्र को भी जानकर करके, स्वर्गादि अन्य लोक या जन्ममरण से मुक्ति दे सकते हैं। यह बातें वैज्ञानिक के लिए अगम्य हैं। वह लिंगपर्यंत ही अन्वेषण कर सकता है। विशिष्ट वैज्ञानिक गूढ़ वैदिक सिद्धांत को नकारता नहीं वल्कि उसे भी अपने तरीके से सिद्ध करने का प्रयास करता है। किसी प्रामाणिक व्यक्ति की बात को अज्ञान के कारण नकारना मूर्खता है। बुद्धिमान अंधा भी किसी से पूछकर दिन का होना जान जाता है।

धार्मिक या सामाजिक मान्यताएं और परंपरायें, जो वेदविहित नहीं हैं और वैज्ञानिक शोध में यदि गलत या हानिकारक सिद्ध होती हैं तो उनका त्याग करने से व्यक्ति और समाज को लाभ होगा। वैदिक मान्यताएं यदि वैज्ञानिक दृष्टि से असिद्ध रह गई हैं तो उन्हे सिद्ध करने के लिए विज्ञान को लक्ष्य बनाना होगा। परस्पर विश्वास और सहयोग से समाज और विज्ञान दोनों की प्रगति हुई है तथा

आगे भी संभव है। जिन विद्याओं से मानवता का पतन और विनाश संभव है उनका प्रसार निषिद्ध करने की शिक्षा वैज्ञानिक को, वैदिक ऋषियों से लेनी चाहिए।

— इत्यस्तु शमथः।।

## परिशिष्ट

1- नव वर्षारंभ

समय लौटकर नहीं आता है तो प्रत्येक क्षण, दिन, पक्ष, माह, वर्ष, शताब्दी, युग सब नित नूतन हैं। पूरा जीवन उत्सवमय हो सकता है। पहली जनवरी को उत्सव मनाने की प्रथा असफलताओं को भूलने और नवीन इच्छाओं की पूर्ति के लिए आशा पालने का एक तरीका है। वर्ष के प्रत्येक दिन किसी के नाम से मनाने की प्रथा भी चल गई है। इस दृष्टि से पहली जनवरी को ग्रेगेरियन कलेंडर के स्वागत दिवस के रूप में मनाया जा सकता है। आज, इसे मनाने वालों को बधाई है।

सूर्य की बारह संक्रांतियों में मकर संक्रांति प्रमुख है क्योंकि इस दिन सूर्य की उत्तरायण यात्रा आरंभ होती है।यहां से देवताओं का दिन आरंभ होता है। छः माह के बाद दक्षिणायन यात्रा होती है।यहां से देवताओं की रात्रि आरंभ होती है। दिन प्रकाश (ज्ञान) है, रात्रि अंधकार (अज्ञान) है। इस तरह पूरा वर्ष एक दिन-रात्रि हो जाता है। दिनरात और वर्ष दोनों सूर्य के सापेक्ष्य गति पर निर्भर करते हैं। सूर्य ही चराचर जगत की आत्मा हैं – 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'। अतः नित नवदिन और मकर संक्रांति को नववर्षारंभ मानना तर्क, ज्योतिष और वेदवाक्य के अनुसार संगत है। सन्निकट मकर संक्रांति की शुभकामनाएं।

2- व्यक्ति को विश्वसनीय बने रहने के लिए सत्यनिष्ठ रहना पड़ता है। कृतज्ञता इसका प्रमुख लक्षण है। कठोर कानून बनाने से नहीं, विश्वसनीयता से कानून-व्यवस्था सुदृढ़ रहती है। अतः शासक को सत्यनिष्ठ रहना आवश्यक है।

3- अनन्त में ही सुख है। सीमित में दुख का भय बना रहता है। इसीलिए राज्य छोड़कर वन-गमन करने की प्रथा थी। भूमा एव सुखं नाल्पे सुखम्-श्रुति।

4- आयु बढ़ने पर शरीर और इन्द्रियों में परिवर्तन स्वतः होते हैं। मन और अहंकार पर नियंत्रण का प्रयास किया जाता है। यह कार्य सक्षम शरीर होने पर नहीं किया तो वृद्धावस्था में असंभव है। वे यथावत बने रहते हैं। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'। वृद्धावस्था में बुद्धि और स्मरण शक्ति के दुर्बल होने पर मनोनिग्रह करना असंभव है। मृत्यु के पहले अपने को जानने में जीवन की सार्थकता है-'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति।' श्रुति।

5- अधिकांश लोग समझौतावादी हो जाते हैं। संघर्षशील होना साहसी व्यक्ति का स्वाभाविक गुण होता है। यह अच्छा है, किन्तु यही बुरा हो जाता है जब साहसी लोग, कुसंग और प्रलोभन से, तुच्छ स्वार्थ हेतु संघर्षशील हो जांय। तब समाज और देश के लिए संघर्ष करने वाले नहीं रह जाते हैं। मनुष्य बनना साहस का काम है। 'वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।'

6- कायिक, वाचिक और मानसिक कर्मों का फल शरीर, वाणी और मन से मिलता है। जिसका संबंध जहां से है, प्रकृति उसे वहां स्वतः पहुंचा देती है। तीनों पर संयम ही सुरक्षा का कवच है। पुनर्जन्म, कर्मवाद और ईश्वर में विश्वास तथा शास्त्रों में श्रद्धा होने पर विचलन नहीं होता है।

7- यह सृष्टि आदान-प्रदान की परंपरा से संचालित हो रही है। कोई वस्तु बिना मूल्य के नहीं मिलती है। देने वाला, उसके बदले में, और अधिक वसूल करता है या पा जाता है। निष्पृह परोपकारी को भी, ईश्वर अमूल्य वरदान देता है। आदान-प्रदान में यज्ञ की भावना होना कल्याणकारी है। दान देने पर बदले में बहुत कुछ मिलता है। कुंडल कवच देने पर कर्ण को इन्द्र ने वज्र दिया था। मांगी हुई मात्रा में धन पाकर आचार्य वरदन्तु के शिष्य कौत्स ने राजा रघु, जिनको केवल संतान का अभाव था, को पुत्र प्राप्ति का अभीष्ट आशीर्वाद दिया था जो सत्य हुआ।

8- आज मकर संक्रांति का पावन पर्व, पृथ्वी लोक पर नववर्ष और देवताओं

का प्रातःकाल है। छः मास तक, सूर्य के उत्तरायण रहने पर देवताओं का दिन होता है। यज्ञादि शुभकार्य इस समय होते हैं। भगवान भाष्कर प्रत्यक्ष देवता हैं और सब के आत्मस्वरूप हैं। प्रसिद्ध गायत्री मंत्र में सूर्य के भर्ग (ब्रह्मवर्चस्) का ध्यान करके बुद्धि की कामना की गई है। हम भी अपनी श्रद्धा को समर्पित करते हुए कामना करते हैं कि भगवान सूर्य के आशीर्वाद और समस्त देवताओं की कृपा के साथ सद्बुद्धि और स्वास्थ्य का लाभ हो। नववर्ष का यह आगमन हम सब को भविष्य केलिए नवोन्मेष के साथ मंगलकारी बना रहे।

9- जितना कष्ट किसी अनिष्ट की प्राप्ति या सुख के अभाव से नहीं होता है उससे अधिक अनिष्ट के भय और भाग्यमान से ईर्ष्या करने से होता है। ईर्ष्यालु होने से ही दुर्योधन का नाश हो गया। ईर्ष्या से मुक्ति के लिए मुदिता (दूसरे के सुख में सुखी होने) का गुण अपेक्षित होता है।

बहुधा जो भूलना चाहते हैं वह याद रहता है और जो याद रखना चाहते हैं वह भूल जाता है। यह रजोगुणी अहंकार की प्रबलता और क्षमा तथा धैर्य में सक्षम सात्विक बुद्धि की दुर्बलता से होता है। अहंकार के सेनापति मन के निग्रह और बुद्धि के मंत्री विवेक के प्रबल होने से समस्या का समाधान संभव है। त्राटक, प्राणायाम आदि से मन को एक केन्द्र पर स्थिर रखने या एक तत्व का अविरल चिंतन करने से मनोनिग्रह होता है। एक परम तत्व का चिंतन उत्कृष्ट साधना है जिसमें पतन का भय नहीं रहता है। सदाचार पर आरूढ़ होने से निर्मल बुद्धि होने पर सब कुछ सिद्ध होता है।

10- तुलसीदास ने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम या विष्णु के अवतार के रूप में ही नहीं, परब्रह्म रूप में प्रतिष्ठित करने का अभूतपूर्व प्रयास किया है। संप्रदाय के अनुयायियों और भक्तों केलिए अन्य रूप उपास्य हैं किन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम का स्वरूप सर्वसामान्य के लिए अद्भुत प्रभावशाली है। मानवमात्र को आचार व्यवहार एवं नैतिकता की शिक्षा राम के आचरण में मिलती है। आदर्श रामराज्य अब भी उदाहृत किया जाता है। विभिन्न स्वरूपों के बानगी हेतु कुछ चौपाइयां द्रष्टव्य हैं -

राम करहिं भ्रातन पर प्रीती। नाना भांति सिखावइ नीती।। भ्रातृप्रेम।

धन्य जनम जगती तल तासू। पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू।। पितृभक्ति।

प्रथमहिं विप्रचरन अति प्रीती। निजनिज धर्म निरत श्रुतिरीती।। विद्वत्सेवा, स्वधर्म।

जौ अनीति कछु भाषउं भाई।तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।। प्रजापालन।

इस तरह के संदर्भों से भरा हुआ है मानस।

राम के आचरण का अनुकरण और उनके आदेशों का पालन ही उनकी महत्ता का सार्थक आकलन है। उन्हें मर्यादापुरुषोत्तम मानने का यही फल है। मानस में राम ने स्वयं कहा--

निर्मल मन जन सो मोहिं पावा। मोहिं कपट छलछिद्र न भावा।।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुशासन मानइ जोई।।

11- नेता जी कहने पर खून के बदले स्वतंत्रता दिलाने वाले सुभाष चन्द्र बोस ही याद आते हैं और रोमांच हो जाता है। उनका सपना नहीं पूरा हो सका अतः खून चूसकर गुलाम बनाने की प्रवृत्ति नहीं जा सकी। आज नेता जी को श्रद्धा सुमन समर्पित करते हुए उनके पुनः अवतरण की कामना करता हूं।

12- नैतिकता अपने में ही मूल्य है। इसका मूल्यांकन सफलता-विफलता, लाभहानि, जय-पराजय आदि के आधार पर करना सोने को पत्थर के बाट से तौलना है।लोकहित, यशकीर्ति, आत्मसुख आदि इसके मापदंड हैं। जीवनकाल में विश्वसनीयता तथा यश और बाद में सुकीर्ति और सद्गति इसके फल हैं।

13- अंधा वह है जिसे अंधेर न दिखाई पड़े, गूंगा वह है जो अनीति पर न बोले, बहरा वह है बोले और दूसरे की बात अनसुनी करे, विकलांग और काहिल वह है जो पराश्रित रहता है, गुलाम और स्वाभिमान शून्य वह है जो नीच की सेवा करे तथा विदेशी की जीत पर विजय दिवस मनाये, मूर्ख वह है जो दूसरे की बुद्धि से चलता है (मूढ़ः परप्रत्ययनेयबुद्धिः)। धूर्त वह है जो असत्य को सत्य सिद्ध करे। धर्मांध वह है जो धर्म के नाम पर अधर्म पर दृढ़ है। व्यावहारिक लक्षणों के आधार पर, इस तरह के

व्यक्तियों के कई वर्गीकरण हो सकते हैं। अपने देश में इन्हीं कमजोरियों को समझकर विदेशियों ने राज्य किया। अब भी इनसे ग्रस्त लोगों की भरमार है।

शिक्षा द्वारा इन कमजोरियों को समाप्त करना सही विकास और देशसेवा होगी। स्वतंत्र व योग्य शिक्षामंत्री से यह संभव है। नवीन विशेषज्ञों के साथ ही, प्राचीन संस्कृति के ज्ञाता विद्वानों का संग्रह प्रथम कार्य है।

14- चिरजीवी का अर्थ अमर नहीं है। बहुत समय तक जीने वाला चिरजीवी कहा जाता है। अश्वत्थामा बलिर्व्यासः हनुमांश्च विभीषणः। कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः।। यह श्लोक प्रसिद्ध है जिसके अनुसार लोग इन सातों को अमर मानकर, अब भी देखने की इच्छा करते हैं। यह असंभव है। 'जातस्य हि ध्रुवा मृत्युः।'-गीता।

15- जन्म लेनेवाला जीव मरणधर्मा होता है, यह ध्रुव सत्य है। किसी तरह से पैदा होकर, ईश्वर भी स्वयं मरणधर्मा नहीं बनना चाहता है। विवादास्पद अवतारवाद अवैदिक मान्यता है जिससे सैकड़ों भगवान अवतरित हो रहे हैं। सबके मंदिर बन रहे हैं। कोई विशिष्ट व्यक्ति होने पर वह ईश्वर की विभूति के रूप में आदरणीय है, पूज्य नहीं। पूज्य तो ईश्वर या देवता ही हैं। गर्भ से नहीं, प्रकृति के तत्वो से अलौकिक शक्ति का रूप प्रगट हो सकता है। यह शक्ति विशेष कार्य करके लुप्त हो जाती है। उसे अवतार कहते हैं। इसमें भी स्थूल अंश प्रकृति का ही होता है। ईश्वर चैतन्य द्वारा उसे प्रकाशित करता है। अवतार, मनुष्य ही नहीं किसी भी शक्ल का या अदृश्य भी होसकता है। जिसे ईश्वर की सर्वविध अनन्तता में विश्वास है, वह इसे स्वीकार करेगा।

16(क)-आगम-निगम या लोकवेद के नाम से दो धारायें भारतीय सामाजिक परंपरा में बहुत पहले से चली आ रही हैं। सब का मूल वेद ही है। निगम का सरलीकृत स्वरूप आगम में है। आगम के उपासक अर्थ, काम और दासत्व हेतु भक्ति, यही तीन पुरुषार्थ मानते हैं। निगम में धर्मार्थकाममोक्ष चार पुरुषार्थ हैं। इसमें भक्ति ज्ञान में सहायक कार्य है, पुरुषार्थ नहीं है। इस पृष्टभूमि में दोनों परंपराओं में विशिष्ट सृष्टि के विषय में विवेचन

यहां प्रस्तुत किया जा रहा है ।

**आगम का मत-**

स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक, गोलोक, साकेत लोक आदि विख्यात हैं। इसी तरह से अनन्त लोक हैं। इन लोकों के अधिष्ठाता भूलोकवासियों की अपेक्षा कुछ विषयों में अधिक समर्थ होते हैं। दैवी ही नहीं आसुरी लोक भी हैं। ईश्वर की योजना में विशेष कार्य हेतु, आसुरी तथा दैवी लोकों के अधिष्ठाता तथा उनके गण, इसलोक में जन्म लेते हैं। वे अपना कार्य करके अपने लोक को, गणों के साथ, लौट जाते हैं। आसुरी लोक के अधिष्ठाता युगांत में यहां आतंकित करने आते हैं। उत्पन्न होने वाले दैवी संपदा के लोगों, से उनका निग्रह और नाश होता है। पुराणों तथा आगम साहित्य से यह बातें प्रचारित हैं। इन मान्यताओं से कई संप्रदाय चल रहे हैं। दश-बारह शताब्दी से भागवत आदि पुराणों के प्रभाव से, लोकों से भूलोक पर पैदा होने वाले महापुरुषों को साक्षात ईश्वर या ब्रह्म तक प्रतिपादित करने की परंपरा चल पड़ी है। यह भक्त आकाश को कपड़े की तरह लपेटकर मुट्ठी में लेना चाहते हैं। रामायण तथा महाभारत कालतक ऐसा बिलकुल नहीं था। भक्ति ठीक है किन्तु अतिरेक करके ईश्वर की महिमा और मर्यादा का अतिक्रमण अशोभनीय और हानिकर है। मृतव्यक्ति की मूर्तिपूजा प्रेतपूजा ही है। मानसिक संकल्प से उपास्य की प्रतिष्ठा अभीष्ट हो तो लिंग या शालिग्राम जैसे प्रतीक में अपनी क्षमतानुसार अनन्त, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान देवता की कल्पना से स्थापना व उपासना करना अविवादित और श्रेयस्कर रहेगा।

क्रमशः-

**16( ख ) निगम का मत-**

मानवीय आचरण के प्रभाव से प्रकृति के सत, रज, तम गुणों में से किसी के बहुत बढ़ने और दूसरों के क्षीण होने पर, विषमता के परिणाम स्वरूप, सृष्टि में आश्चर्यजनक घटनाएं होती हैं। सत गुण के उद्रेक से सतयुग आजाता है। जब मनुष्य का आचारगत प्रदूषण बढ़ जाता है तब रज और तम गुण बढ़ते हैं। तमोगुण का उद्रेक होने पर आसुरी प्रकृति के लोगों का

वर्चस्व होता है। इसे समाप्त करने केलिए सत गुणी महापुरुष का उद्भव होता है। उसे अवतार नहीं विभूति कहा जाता है। यह माया शक्ति का प्रपंच है। दृष्ट प्रकृति अपना संतुलन स्वतः बनाती रहती है। ईश्वर इस प्रपंच के पार है, सर्वदा एकरस है।चेतन पुरष और जड़ प्रकृति का समन्वित रूप, ईश्वर की ही कृति है जिसे प्रजापति कहते हैं। सारी सृष्टि ही प्रजापति का रूप है- 'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर्जायमानो बहुधा विजायते'। ऐसी वैदिक मान्यता है। सारे लोक-लोकांतर की सृष्टि में प्रजापति ही अवतरित हो रहे हैं। ईश्वर के अवतार की कल्पना अवैदिक है। ईश्वर चर्मचक्षु से नहीं ज्ञानचक्षु से दिखाई पड़ सकता है।

17- दयानंद सरस्वती में सूक्ष्म दृष्टि थी। उनका योगदान हिन्दुओं केलिए बहुत सराहनीय रहा है। अपनी प्रतिभा के अनुसार उन्होने लोकहित किया। उनमें ऋषियों की दिव्यदृष्टि या आचार्य शंकर जैसी अलौकिक शक्ति का अभाव था अतः अभीष्ट संशोधन नहीं हो सका। इस समय सनातन धर्म बाह्य प्रभाव से विकृत हो चला है। उस धर्म के मौलिक तत्वों को सुरक्षित रखना, उसकी विकृति को दूर करना और भारतीय संस्कृति की वर्तमान स्थिति में संशोधन करना आवश्यक है। आचार्य शंकर द्वारा उद्धारित वैदिक साहित्य तथा दयानंद सरस्वती के सामयिक अध्ययन का समन्वित स्वरूप अपने धर्म और संस्कृति का उद्धारक हो सकता है।

18- राजतंत्र में प्रजातंत्र और प्रजातंत्र में राजतंत्र या निरंकुश तंत्र हो सकता है। समाज में सत्ता पर नियंत्रण करने की क्षमता होना ही प्रजातंत्र का मुख्य लक्षण है। ऐसा न होने पर, चाहे जो नाम दें, निरंकुशतत्र या जंगल राज्य ही रहता है। देश की सामाजिक व सांस्कृतिक दशा के अनुसार लागू संविधान और शासनतंत्र से ही आकांक्षा की पूर्ति हो सकती है। जहां जनता अनपढ़, गरीब व गुलाम प्रकृति की हो तथा वोट का ध्रुवीकरण जाति, धर्म, प्रलोभन, आरक्षण, बाहुबल, आदि से होता है। वहां के प्रजातंत्र में शासनतंत्र मूर्ख, धूर्त, गुंडे आदि चलाते हैं। वहां प्रजातंत्र व योग्यता का उपहास होता है तथा न्याय और कानून-व्यवस्था ध्वस्त होती हैं।अतः योग्य व्यक्तियों के हाथ में सत्ता रहने का ध्यान रखकर संविधान और शासन प्रणाली रखना परमावश्यक है। शासनतंत्र के स्वरूप नहीं गुणों

से देश का विकास और गौरव संभव है।

19- इस वर्ष हमारी लिखी पुस्तक 'वैदिक आचारशास्त्र' उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा पुरस्कृत हुई है। 'निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होइ अथवा अति फीका।।' अपनी कृति सबको अच्छी लगती है। एक दूसरी दृष्टि भी है 'वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तूनि', प्रेम होने पर किसी निर्गुण वस्तु में भी गुण ही दिखाई पड़ते हैं। लेकिन विद्वान लोगों की दृष्टि निरपेक्ष होती है। वे पसन्द करें तभी अच्छाई प्रमाणित होती है। पुरस्कृत होने से इस पुस्तक में निहित हमारी बातों को पढ़ने के लिए किसी की इच्छा हो सकती है, अतः इससे हमें प्रसन्नता है।

हमने 'अहंवेद' नामक एक लेख संग्रह, जो ढ़ाई सौ पेज से अधिक है, हिन्दी संस्थान में पुरस्कार हेतु भेजा था। व्यक्ति, समाज, धर्म तथा संस्कृति के लिये हितकर सामग्री, विद्वानों के द्वारा अनुमोदित विचारों के साथ, इस पुस्तक में है। इसे बहुत परिश्रम करके लिखा और प्रकाशित किया गया है।इस पर पुरस्कार नहीं मिला। तब, आगे पुरस्कार के लिए प्रयास न करने का ही मन हम ने बनाया था किन्तु मित्रों की सम्मति से इस वैदिक आचारशास्त्र को, बिना किसी फलाशा के, भेज दिया था। लिखते रहना हमरा स्वधर्म हो गया है। यह हमारे वश में है। इसका फल मिलना दैवायत्त है। सही है - आशायां परमं दुखं निराशा परमं सुखम्।।

20- आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषितम्।

संभ्रमः प्रीतिमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्।।

इस श्लोक में आचार से कुल-स्वभाव, भाषा से देश-स्वभाव, आतुरता से प्रीति और शरीर के आकार से व्यक्ति के भोजन का ज्ञान होना लिखा है।देश से भाषा और स्वभाव का संबंध देखाजाता है। उज्बक शब्द उज्बेकिस्तानी मनमानी करनेवाले के अर्थ में, कज्जाक शब्द कजाकिस्तानी चालाक के अर्थ में, तुर्क शब्द टर्की के गन्दे ढंग से खानपान वालों के अर्थ में तथा ऐसे बहुतेरे शब्द लोक में प्रचलित हैं। देश के नाम पर नामकरण प्रचलित है। कैकेयी, कौशल्या, पांचाली, मुसलगांवकर, गुलेरी

आदि ऐसे अनेक नाम देश से संबद्धित हैं।

किसी देश के विशिष्ट स्वभाव, गुणदोष, तदनुसार प्रथा और परंपरा का सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अध्ययन करके, तदनुसार वहां केलिए संवैधानिक व्यवस्था सफल होती है।

21- **आदर्श भारतीय राजतंत्र-**

बरसत हरसत सब लखें करसत लखे कोय।

तुलसी अति बड़ि भाग से भूप भानु सम होय।।

सूर्य भगवान वृष्टि कराते हैं, गर्जन ध्वनि और वर्षा से लहलहाने के आनंद के प्रदाता हैं, जो सबको प्रत्यक्ष होते हैं। जल का शोषण भी करते हैं जो अप्रत्यक्ष ही रहता है। राजा का अवदान और कराधान इसी तरह का होना प्रजा के भाग्य की बात है। मधुमक्खी के द्वारा फूल से रस लेने की तरह राजकर की उपमा दी गई है। मधु और फूल दोनो आवश्यक हैं। हाथी की तरह पेड़ उखाड़ने पर फूल और मधु दोनों का अभाव होजाता है। इसी तरह अधिक राजकीय कर जनता के दुर्भाग्य और क्षोभ का कारण बनता है। यह आदर्श रामराज्य किसी प्रजातंत्र से अच्छा है। आज के लिए बाध्यकारी संदेश है।

22- अपराध करने पर कायर लोग क्षमा मांगते हैं। कर्म के मर्म को जाननेवाला धैर्यवान व्यक्ति निरहंकार होकर, अपराध के लिए स्वयं दण्ड मांगता है। दण्ड भोगने पर वह व्यक्ति निष्पाप होजाता है। जिसके प्रति अपराध किया है वह स्वयं क्षमा करता है तो भी अपराधी निष्पाप नहीं होता है। कर्मगति से उसे दण्ड भोगना ही पड़ेगा। अपने भाई शंख के आश्रम में फल तोड़ लेने के अपराध का स्वतः दण्ड भोगकर, तपस्वी लिखित निष्पाप हुये थे।

क्षमाशील को चित्त की प्रसन्नता का लाभ होता है तथा बैरभाव समाप्त हो जाता है। क्षमा करना तथा प्रायश्चित के लिए दंड भोगना, दोनों उदात्त मानवोचित गुण हैं।

23- महाकवि कालिदास ने लिखा है-

सूश्रूषस्व गुरून् कुरु सखीवृत्तिं सपत्नी जने,

भर्तुः विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीमंगमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,
यान्तेवं गृहिणीपदं युवतयः वामा कुलस्याधयः।।

श्रेष्ठजनों की सेवा करना, ईर्ष्या रहित होना, पति के साथ अविवाद, उदारता और भाग्योदय पर निरहंकार रहना यह सब स्त्री के शील हैं। इन गुणों के कारण स्त्री गृहिणी पद को प्राप्त करती है। अन्यथा आचरण होने पर वही कुल, परिवार सबके लिए कलंक या व्याधि स्वरूप हो जाती हैं।

परिवार में गृहपति राजा और गृहिणी रानी होती है। राजा-रानी प्रत्येक आदर्श परिवार में होते हैं। शासन की सबसे छोटी इकाई परिवार है। इसकी बाह्य समृद्धि पुरुष के और आन्तरिक व्यवस्था स्त्री के हाथ में होती है। व्यवस्था करने के साथ वह उच्च पदस्थ भी हो सकती है। स्त्री के दुष्ट होने पर कुल का नाश और अभाव में, बिनु घरनी घर भूत का डेरा कहा गया है।भारतीय संस्कृति में नारी का सशक्तीकरण और सर्वोच्च सम्मान गृहिणी पद पर पूज्य बनना है। ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः''। *म. स्मृ.*।

24- इस समय भारत में, राजनैतिक दृष्टि से चार तरह की जनता है। पहला- मुसलमान, कभी सत्तापक्ष में, कभी बेबसी में हैं, दूसरा- भ्रष्टाचारी और बाहुबली लोग जो अवसरवादिता व भय से सदैव सत्तापक्ष में हैं, तीसरा- अधिकांश संख्या में, गरीब, अनपढ, दलाल और भक्तलोग जो लालच या धर्म के अफीम की नशे से सत्ता के पक्ष में हैं तथा चौथा -असंगठित विपक्षी दल और प्रबुद्ध लोग जिनमें अधिकांश प्रमादग्रस्त हैं। कुछ लोग परिवर्तन के असफल प्रयास में हैं। अज्ञानी लोग प्रसन्न या निरपेक्ष हैं। यहां, जनता की कमजोरी जानने वाले ही हुकूमत किये और करते रहेंगे। स्वतंत्रता का जलता हुआ दीपक अंग्रेजों नें हमारे ही हाथों से बुझवा दिया था। हम गुलाम ही रह गये। अब स्वतंत्रता के लिए पुनः दीप जलाने के इच्छुक थोड़े से देशभक्त और संस्कृतिप्रेमी लोगों में किसी के पास तेल नहीं, किसी के पास बाती नहीं तो कोई दियली भी नहीं पा रहा है। सब प्रबन्ध मे असफल हैं। इसके लिए सर्वविध सक्षम व्यक्ति की प्रतीक्षा है। चतुर्थ कोटि के लोगों द्वारा स्थिति को समझने वाले, उत्साहसम्पन्न लोगों

को उत्पन्न करने वाली शिक्षा अपेक्षित है। इस तरह का एक भी योग्य शिष्य पैदा करके अध्यापक कृतकृत्य हो जाता है। उसकी कीर्तिपताका शिष्यों के दण्ड पर फहराती है।

25- आचार-व्यवहार सबसे महत्वपूर्ण और सर्वजनीन धर्म हैं। व्यवहार केलिए समाजशास्त्र और राजनीति का ज्ञान भी सबको आवश्यक है। इन विषयों में शिक्षित होना व इनका चिंतन तथा विश्लेषण करते रहना केवल कौटिल्य, कामन्दक आदि राजनीतिज्ञों का ही काम नहीं था। ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, दार्शनिक सभी इन विषयों पर सूक्ष्म दृष्टि रखते थे और समय पर हस्तक्षेप भी करते थे।

पाश्चात्य तथा अपनी परंपरा के अवलोकन से स्पष्ट है कि राजधर्म पर नियंत्रण मनीषियों का कर्तव्य है। सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, ईसा तथा आधुनिक दार्शनिक विदेशी लोग एवं मनु, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, माघ, भारवि, तुलसीदास, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, गुरु गोविंद सिंह, तिलक, मालवीय, नेताजी आदि सहस्त्रों स्वदेशी चिंतकों की परंपरा रही है। वर्तमान पुरी के शंकराचार्य भी इस विषय के गंभीर चिंतक हैं। यह कार्य प्रशंनीय है।

इस समय, प्रबुद्ध लोगों के द्वारा राजनीति को उपेक्षणीय या असामयिक विषय समझना समाज और देश के लिए कुलक्षण है। ''सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः, मज्जेत्रयी दंडविधौ निमग्ने'', राजा कालस्य कारणम् जैसे वाक्य अब भी सही हैं। राजनीति में सभी क्रियाकलाप समाहित हैं। राजनीति ही दंड है। दंड के प्रसुप्त या दूषित होने पर सारी व्यवस्था रसातल मे चली जाती है। दंड को जाग्रत और निर्दोष राजधर्म बनाने के लिए सभी मनीषियों का योगदान आवश्यक होता है।

26- ऋषिऋण, देवऋण और पितृऋण यह त्रिविध ऋण धर्मशास्त्र में विख्यात हैं। इन्ही ऋणों के कारण भवचक्र में आनाजाना लगा रहता है।इनके ब्याज से प्रत्यक्ष आपदाएं भोगना पड़ता है। ऋषिऋण से मानसिक व बौद्धिक दुर्बलता, कुतर्क, विक्षिप्तता आदि, देवऋण से दरिद्रता, अभाव, वियोग, अर्थ और परोपकार के ऋण आदि तथा पितृऋण से अनेक शारीरिक

व्याधियां, विकलांगता आदि का प्रकोप इस लोक में होता रहता है। इन ऋणों का अपाकरण करने के बाद ही मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है। सदाचार से यह मार्ग सुलभ होता है।तब सात्विकता आती है जिससे ऋणों से मुक्ति पाने की भावना उत्पन्न होती है। ऋणों से मुक्ति होने पर ज्ञानमार्ग मिलता है जो मुक्ति का एकमात्र साधन है। सरल मार्ग बतानेवाले आज के उपदेशकों से सावधानी आवश्यक है। बिना उऋण हुये मुक्ति केलिए साधना करने पर पतन होता है।यही मनुस्मृति में लिखा है-

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मोक्षे बुद्धिं निवशयेत्।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो पतत्यधः।।

27- इस देश में भारतीय, हिन्दुस्तानी, ब्राह्मण, हिन्दू, विश्वगुरु, धर्मगुरु, आचार्य, नेता, राजा, समाज- सेवक आदि कोई भी सम्माननीय उपाधि पाने के लिए, जाति या संप्रदाय नहीं, एक गुण की अपेक्षा सभी को है।अपनी संस्कृति का आनुपूर्वी (सदाचार से लेकर परमार्थ तक) ज्ञान और आचरण ही वह गुण है।इसके अभाव में कोई भी निर्माण बालू की दीवार, विकास ही विनाश का कारण तथा समस्त महत्वाकांक्षायें धूर्तता और पाखंड में परिणित हो जाती है। प्रदर्शन नहीं, सत्य, न्याय आदि उच्च मानवीय गुण ही हिन्दुत्व के लक्षण हैं। उच्चतम न्यायालय के एक वाद मे भी ऐसा ही मानागया है। यही गुण ब्राह्मणत्व आदि केलिए भी आवश्यक हैं।यह गुण आकस्मिक नहीं आते हैं। इनके लिए परंपरागत पद्धति से संस्कृति का शिक्षण, प्रशिक्षण, तथा सामाजीकरण अपेक्षित हैं। इनके होने पर कोई भारतीय व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में, सही अर्थ में, सम्माननीय बन सकता है।

28- देश और समाज दोनों के हितचिंतन को प्राथमिकता देना जनसेवक के लिए अनिवार्य गुण है। इन गुणों की रक्षा केलिए सत्ता को छोड़कर विपक्ष में रहना भी प्रशंसनीय है। सत्ता और समाज के हित में टकराव होने पर लोकनीति को राजनीति के ऊपर प्रतिष्ठित करना उचित है। बहुधा सत्ता का हितकर्ता लोकनिन्दित होता है और लोकहित करनेवाले को सत्ता का कोपभाजन होना पड़ता है – ‘नरपति हितकर्ता द्वेषतां याति लोके। जनपद हितकर्ता द्विष्यते हि नृपेंद्रैः’। दोनों के सामंजस्य का उपाय न बने तो सत्ता

का पक्षधर बनना कुकर्मी, गुलाम और लोक का पक्षधर सत्कर्मी, स्वाभिमानी कहा जाता है।

शासक जनमत के अधीन होता है। अनीति के सहारे वोट ले लेना समाज के साथ छल और देशद्रोह है। इसका विरोध होना चाहिए। 'जुल्म सहने से भी जालिम की मदद होती है' गालिब। सत्ता अहंकार तृप्त करने का अधिकार नहीं सेवा का अवसर है। शासक को आंख और कान खोलकर रहना पड़ता है। केवल बोलना और आदेश देना अहंकार है। ईश्वर से बड़ा कोई नहीं है ।शुद्ध जनमत ईश्वर का आदेश है। विदेशी संस्कृति में भी है- 'बजा जिसको कहे आलम बजा समझो, जबानें खल्क नक्कारे खुदा समझो'। शासनसत्ता का कर्तव्य जनमत को सुनना, समझना, न्याय देना, लोकसेवा तथा लोकरंजन करना है।

29- देश की सरकार के पास जो भी धन है उसमें से अधिकांश किसान मजदूर के पसीने से, जनता के द्वारा दिये गये टैक्स से, सरकारी संपत्ति के विक्रय से या बढ़ते हुये विदेशी कर्ज से प्राप्त है। सरकारी उपक्रमों का घाटे में जाना विख्यात है। राजनैतिक दलों के पास जो धन है वह भी, प्रच्छन्न रूप से, इसी राजकोष का हिस्सा है।इस धन का दुरुपयोग, सार्वजनिक कार्य के लिए निजी धन देने जैसा एहसान का प्रदर्शन और प्रचारतंत्र द्वारा जनता को सुनहला भविष्य प्रदर्शित करना धूर्तता है। राजनैतिक दल बेइमान हो गये हैं, अतः, उनके दबाव में राजकर्मचारी भी बेइमान हैं।

जैसे, व्यक्ति के आयव्यय में पारदर्शिता हेतु राजकीय तंत्र हैं, उसी तरह शासन तथा राजनैतिक दलों के विषय में भी पारदर्शिता की व्यवस्था आवश्यक है। यह कार्य संविधान में संशोधन या अन्य वैधानिक उपाय से, स्वतंत्र न्यायालयों तथा नियंत्रण में सक्षम राजकीय तंत्रों के सशक्तीकरण द्वारा किया जाय। इसकी मांग केलिए जनता को जागरूक होना है।

30- मानवीय क्रियाकलापों के प्रेरक तत्व का अध्ययन आकर्षक विषय है। आधुनिक चिंतकों में फ्रायड ने काम को और मार्क्स ने अर्थ को ही मूल वासना सिद्ध किया और इन्हीं को प्रबलतम माना है। इस समय के लिये

यह दोनों सिद्धांत मान्य हो सकते हैं किन्तु यह सार्वकालिक सत्य नहीं हैं। जिजीविषा सबसे प्रथम उत्पन्न होती है। अतः आत्मरक्षा सब का अधिकार है।ऐसा भी समय था जब धर्म और मोक्ष की साधना के लिए अर्थ और काम उपेक्षणीय थे। राजा भी विश्वजित यज्ञ में सर्वस्व दान कर देते थे। बहुत लोग विवाह, संतानोत्पत्ति तथा अर्थसंग्रह नहीं करते थे। समय के अनुसार संस्कार प्रबल या दुर्बल होते हैं तब मान्यतायें बदलती हैं।

प्रजापति को सृष्टिकर्ता कहा गया है। प्रजापति ने मानसी सृष्टि करके ऋषियों को पैदा किया लेकिन उनसे जनसंख्या में वृद्धि नहीं हुई। तब अपने को पुरुष और प्रकृति के दो रूपों में विभक्त करके मैथुनी सृष्टि किया। ऋषियों के प्रभाव से तथा संस्कार जाग्रत होने पर, बाद में भी जरत्कारु, शुकदेव, आचार्य शंकर, रमण महर्षि आदि को अर्थकाम आकर्षित नहीं कर सके। सृष्टिक्रम के विच्छिन्न होने की भी स्थिति बन सकती थी। अतः वेदोपनिषद् में चार आश्रम और सब के सेवन का विधान बना है। तैत्तिरीय उपनिषद् में गुरु का दीक्षांत भाषण है-

'आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः'। यहां धन और विवाह दोनों की व्यवस्था का आदेश शिष्य को है। सृष्टि का संतुलन बनाये रखने केलिए वैदिक व्यवस्थायें युगानुकूल हैं। इस समय संतुलन बनाने के लिए काम और अर्थ की प्रवृत्ति पर नियंत्रण हेतु ईशोपनिषद् का मंत्र 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।' स्मरणीय और उपास्य है।

इस तरह स्पष्ट है कि बदलते हुये समय की परख करना द्रष्टा ऋषि का काम है। मनुष्य की आकांक्षाओं और दुर्बलताओं का युगानुकूल अध्ययन करना मानवीय मेधा का काम है। जो समस्यायें उपस्थित होती हैं, उनके निराकरण के उपाय वेदों में हैं।

31- राम में ईश्वर को देखना और राम को ही ईश्वर मान लेना, यह दोनों दृष्टियां भारतीय चिंतन को दो दार्शनिक संप्रदायों में विभक्त करती हैं। प्रथम दृष्टि अद्वैत तक पहुंचाती है जहाँ राम में ही नहीं सर्वत्र ईश्वर है। इससे नानात्व का अभाव, 'नेह नानास्ति किञ्चन्' की दृष्टि उत्पन्न होती है।

द्वितीय दृष्टि द्वैतवादी भक्ति का आधार है। इसमें पाखंडी करिश्माई लोगों को ईश्वर मान लेने से सामाजिक समस्याएं पैदा होती हैं। अतः, लोक की व्यवस्था पर ध्यान देते हुए, अपनी श्रद्धा और योग्यता के अनुसार संप्रदाय का वरण करना उचित है। अंधभक्ति ने सनातन धर्म को लुप्तप्राय कर दिया है। भक्ति में श्रद्धा है तो उसका परिष्कृत स्वरूप अपनाना श्रेयस्कर है। कर्मयोग में सहायक गीता में उपदिष्ट भक्ति की साधना सनातन धर्म के अनुकूल है। स्वधर्म का पालन और उसके फलाफल को ईश्वरार्पण करना सनातनी भक्ति है। गीता-9/27-

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।<br>
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

32- 'विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातो शतमुखः'- विवेकशक्ति के अभाव में सभी क्रियाकलाप विपरीत फल देते हैं। जैसे व्यक्तिगत जीवनचर्या में स्वविवेक महत्वपूर्ण है उसी तरह लोक या देश के संचालन में मुखिया या नेता के विवेक की भूमिका होती है। सार्वजनिक क्षेत्र में नेता के अविवेक का फल पूरे समूह या देश को भोगना पड़ता है - 'एकः करोति पापानि फलं भुङ्क्ते महाजनैः'। इसलिए लोककल्याण चाहने वाले समाजसेवी तथा विद्वान् लोग स्वयं को शुद्ध रखते हुए विवेकशील लोकनायक बनाने केलिए सजग रहते हैं।

अनपढ़, मूर्ख और अभावग्रस्त समाज में प्रजातांत्रिक व्यवस्था होने पर विद्वनों का अनादर और पाखंडियों का वर्चस्व हो जाता है। ऐसी दशा में सत्ता दल को भ्रष्टाचार वरासत में मिलता है और वे उत्तरोत्तर उसी का विकास करते हैं। अरबपतियों, गरीबों तथा बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि के साथ, महंगाई, अन्याय आदि से चतुर्दिक पतन विकास के परिणाम हैं।इस विकास का अन्त सामूहिक विनाश में है।

भ्रष्टाचार के इस विकास को रोकने के साथ सुव्यवस्था के लिए पाखंडियों के मौखिक तथा लिखित दर्शन के साथ ही उनके व्यक्तिगत जीवनदर्शन का भी प्रचार वैधानिक व्यवस्था से होना चाहिए। उनके कथनी और करनी को साथसाथ देखलेने पर, अंधभक्तों के आलावा अन्य लोगों को वस्तुस्थिति

का ज्ञान होगा। पाखंड का विरोध और विवेक जाग्रत करनेवाले संघर्षशील नवयुवकों को तैयार करना प्रबुद्ध जन का कर्तव्य है।

33- ईशावास्योपनिषद् में मृत्यु के पूर्व चैतन्यावस्था में, साधक द्वारा अन्तिम इच्छा इसतरह व्यक्त की गई है-

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् -
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां
ते नम उक्तिं विधेम।।

अर्थ है कि- हे कर्मों को जाननेवाले सर्वज्ञ अग्निदेव! आप से भूयोभयो प्रार्थना है कि हमारे दुखद पापों को बाधित करके, हमें मोक्षप्रद सन्मार्ग से ले चलें।

मृत्यु के समय रजोगुण लुप्त हो जाता है। तब तामस या सात्विक स्वरूप प्रगट हो जाता है। उस समय सत्य बात नहीं छिपाई जासकती है। अतः मृत्युकालीन बयान विश्वसनीय माना जाता है। उक्त मंत्र में प्रार्थना करने वाला साधक आजीवन पवित्र रहने वाला होता है। अंत भला सो सब भला। मृत्यु को संवारना ही जीवन और साधना का सुफल है।

34- न्यायाधीश या प्रशासनिक निर्णय लेने वाले व्यक्ति को योग्य होना अपेक्षित है ही, उससे अधिक निष्पक्ष होना महत्वपूर्ण है। ऐसा न होने पर चतुर व्यक्ति द्वारा योग्यता का पाखंडपूर्ण दुरुपयोग सफलता पूर्वक होता है।समानता का अधिकार सुरक्षित रखने के लिए निष्पक्षता चाहिए। स्वतंत्रता संग्राम का आरंभ समानता के अधिकार के लिए हुआ था। ब्रिटिश लोग विशेषाधिकार नहीं छोड़ना चाहते थे अतः इस अधिकार को पाने के लिए पूर्ण स्वराज्य का संग्राम आरंभ किया गया। दुर्भाग्य ने देश का साथ नहीं छोड़ा तो स्वतंत्रता के बाद भी समानता का अधिकार नहीं मिला। पक्षपाती लोगों का वर्चस्व होगया। एक हाथ से देकर दूसरे हाथ से छीनने की व्यवस्था अब भी बनी है। स्वतंत्रता की हालत ऐसी है की कोई निर्दोष व्यक्ति भी जातीय आधार पर तत्काल जेल जा सकता है और जमानत नहीं होगी। ऐसी स्वतंत्रता भी परतंत्रता है। इसका दुष्प्रभाव देश की

छबि, संस्कृति, समाज और शासन के प्रत्येक स्तर पर पड़ रहा है। देश की प्रतिभा गुलामी और अंधकार में विलीन हो रही है।

अन्य प्रलोभनों का त्याग करते हुये, देशप्रेमियों को अभीष्ट पूर्ण स्वतंत्रता के लिए शासन और समाज दोनों स्तर से प्रयास करना चाहिए। स्वतंत्र होने पर हम विश्वगुरु मान्य हो सकते हैं। वैदिक परंपरा से प्राप्त हमारा ज्ञान अब भी सुरक्षित है।

35- किसी देश में शासनव्यवस्था वहां की सांस्कृतिक धरोहर, जनता की आकांक्षा, सामाजिक स्थिति तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ वहां की स्वभावगत विशेषताओं के अनुसार रखनी चाहिए। किसी समृद्ध देश का अनुकरण कर लेना घातक होता है। पूर्व, पूर्व रहेगा तथा पश्चिम, पश्चिम, दोनों मिल नहीं सकते हैं। अतः एशिया को अमेरिका और यूरोप बनाना हानिकारक है। विश्व बन्धुत्व सीमित क्षेत्रों में ही संभव है।

भारत में राजतंत्र में भी प्रजातंत्र रहता था। वह जगद्गुरु रहा है। शिष्य बनजाने पर, अब, विदेशी अनुकरण से प्रजातंत्र में निरंकुश राजतंत्र का दृश्य है। अच्छे को बुरा, न्याय को अन्याय, नीति को अनीति आदि विपरीत भावनाओं ने सीधे को उलटा बना दिया है। उलटा ही सीधा लगने लगा है। विकराल कलियुग भौतिक प्रगति के आधार पर सतयुग के सिर पर पैर रख रहा है। संख्या का महत्व गुण से अधिक होने का परिणाम है कि तारों का समूह चन्द्रमा का उपहास कर रहा है। आह्लादक चन्द्रमा का स्थान भयानक धूम्रकेतु के लेने पर अनर्थ हो रहा है। इस परिस्थिति को झेलने के लिये साहसी लोगों का बुद्धिबल, अब भी, पराजित नहीं होना चाहिए। ब्रह्मास्त्र उसके अधिकार में है।

आध्यात्मिक शक्ति तथा अपनी क्षमता को बढ़ाना, सन्मार्ग और सुनीति पर दृढ़ रहना, चारों वर्णों द्वारा क्रमशः कलाकौशल, अर्थव्यवस्था, न्याय तथा धर्म की रक्षा और शिक्षा द्वारा सब को अपने क्षेत्र में योग्य बनाकर स्वधर्म के पालन हेतु प्रेरित करना, आत्मकल्याण के साथ सामाजिक जागरण के प्रयास आदि सुकृत करते रहने पर आत्मसंतुष्टि मिलेगी। यथासमय युगपरिवर्तन होगा। ईश्वरीय व्यवस्था को स्वीकार करें। पकजाने पर फल

स्वतः गिर पड़ता है। अति सर्वत्र वर्जित है। परिवर्तन ईश्वर की चित् शक्ति से अनुप्राणित प्रकृति का स्वभाव है।

36- योग्यता और क्षमता के अनुसार ही व्यक्ति की उपलब्धि शोभनीय होती है। इससे अधिक मिल जाने पर वस्तु का दुरुपयोग, उपहास या अनिष्ट होता है। भूख से अधिक भोजन अन्न का दुरुपयोग और अजीर्ण कारक है। धन, सम्मान, पद आदि सब के विषय में ऐसा नियम है। महल के शीर्ष पर बैठने से कौवा गरुड़ नहीं बन जाता है। किसी का उपकार उसकी योग्यता और पात्रता बढ़ाने से होती है, पदस्थ करने से नहीं। भर्तिहरि ने भी कहा है- 'कूपे पश्य पयोनिधावपि घटः गृह्णाति तुल्यं जलम्।' किसी घड़े में पानी बराबर मात्रा में रहता है, कुयें या समुद्र में उसे डुबोने से अन्तर नहीं होता है। कागज के फूल में सुगंध नहीं होती है। अतः योग्यता के अनुसार महत्वाकांक्षा क्षेमकरी है। विशेष पद केलिए नीतिसम्मत योग्यता बढ़ाना हितकर है।

37- मनुष्य की शास्त्रसम्मत तर्कशक्ति, कार्यकारण के संबन्ध और प्रकृति के नियमों का ज्ञान, यह तीनों भूत, भविष्य और वर्तमान का बहुत कुछ आकलन कर सकते हैं। उपलब्ध साहित्य, प्रत्यक्ष सामाजिक स्थिति और सूचनाओं के आधार पर भारत के भविष्य का अंदाज करना संभव है। सामान्य जनता के विकृत धर्म की अफीम के नशे में अंधभक्त हो जाने, प्रबुद्ध लोगों के निराश होकर उदासीन रहने, भ्रष्टाचार के राजनीतिज्ञों का आक्सीजन होने, सत्ता के सक्रिय विरोधियों को लक्ष्य बनाकर जेल में पहुंचाने और सत्ता के नियंत्रक लोगों के सारे दुर्गुणों में लिप्त होने पर भी उन्हें निर्दोष मानकर हो रहे खुलेआम पक्षपात से देश का निकट भविष्य अंधकारमय है।

ऐसी दशा में भी, निराश होने से बच सकते हैं। यह धरती बीरप्रसवा रही है। करनी का फल देकर शोधन तथा परिवर्तन करना प्रकृति का नियम है। धैर्य के साथ स्वधर्म पर रहने पर ईश्वर भी सहायक होते हैं।

38- ईश्वरीय दंड, राजदंड, प्रायश्चित और धर्म की रक्षा, इन चार कारणों से कष्ट भोगना पड़ता है। कर्मों के फल ही इन चारों रूपों में प्रगट होते हैं।

यह कष्ट तपस्या स्वरूप हैं जो व्यक्ति को निष्पाप करते हैं। ईश्वरीय और राजदंड दण्ड भोगने में विवशता रहती है। विवेक बुद्धि होने पर शास्त्रादेश के अनुपालन हेतु प्रायश्चित किया जाता है। धर्मरक्षा के लिए उठाये गये कष्टों का विशेष फल है। यह कष्ट स्वेच्छया उठाये जाते हैं। इससे स्वधर्म का पालन करके निष्पाप होने के साथ ही बहुत बड़ा पुण्य भी मिलता है। धर्म में निष्ठावान और साहसी ही इसे कर सकता है। ऐसा व्यक्ति आत्माहुति देकर, परमगति का पात्र हो जाता है। दधीचि से लेकर बन्दा वैरागी आदि तथा स्वतंत्रता संग्राम में प्राणोत्सर्ग करने वालों की कीर्ति अमर है। परिवार, कुल, लोकनीति के साथ समाज, देश, मानवता, सम्पूर्ण प्राणिमात्र और विश्व, इन्हीं की अव्यवस्था का विरोध और निराकरण करने के लिए प्राणों का मोह छोड़ना धर्मरक्षा है। आत्मशक्ति, सामर्थ्य, क्रियाक्षेत्र और निष्ठा में भेद के अनुसार वलिदानी के कीर्ति की व्यापकता होती है। धर्मरक्षा और लोकव्यवस्था केलिए जीने वाले धन्य हैं।

39- आध्यात्मिक चिंतकों के अनेक संप्रदाय हैं। कुछ लोग सीधे आनंदमय कोष में पहुंचने की विद्या बताते हैं और कुछ लोग विज्ञानमय कोष से आरभ करके साधना सिखाते हैं। अधिकांश संप्रदाय मनोनिग्रह (मनोमयकोष) को प्रमुखता देते हैं। ज्ञानेन्द्रियों के संयम व प्रणायाम (प्राणमय कोष) या आसनादि से शरीर (अन्नमय कोष) की साधना के उपदेशक भी हैं। इस तरह साधना के पांच प्रस्थान बना दिये गये हैं। इनको आर्षग्रंथों से सम्मत या सामान्य बुद्धि से उत्पन्न होने के आधार विश्वसनीय मानना संगत है। तर्क, मनोरंजन और तात्कालिक लाभ के आधार पर संचालित संप्रदाय प्रवंचना हैं।

मन को बाह्यकरण और अंतःकरण दोनों मे उभयनिष्ट माना गया है। बाह्यकरण के रूप में उसका महत्व प्राण से बाद में है। अंतःकरण के रूप में यह प्राण से अधिक प्रबल है। अन्नमय कोष से आरभ करके आनन्दमय कोष तक उत्तरोत्तर श्रेष्ठता का क्रम है। इन तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में, कोषशोधन द्वारा, साधना का पूर्वापर क्रम निर्धारित है। उत्तर के कोष के जाग्रत होने पर पूर्व कोष का महत्व नाममात्र रह जाता है। यह शास्त्रीय विधान है।

आनन्दमय कोष से आरंभ करके, नीचे के कोषों को सिद्ध करने का प्रयास अशास्त्रीय और भ्रामक है। पूर्वजन्म की सिद्धि के अनुसार, किसी भी प्रस्थान (कोष) से आरंभ करने के पहले सच्चरित्र होना अनिवार्य है। 'आचारः परमो धर्मः' शास्त्रवचन है। दुश्चरित्र से विरत, शान्त चित्त, इष्ट तत्व में समाहित तथा एकाग्रमन होने पर ही परम तत्व की अनुभूति होती है। कोरे ज्ञान से तत्वबोध नहीं होता है। आचार से लेकर तत्व के निदिध्यासन तक यही पूर्वापर क्रम है। ठीक यही बात कठोपनिषद में भी है-

नाविरतो दुरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

40- ईश्वर या शास्त्र में विश्वास न होने पर मनुष्य निराश होता है। बुद्धि, तर्क या लौकिक शक्तियों की सीमा होती है। इनके समाप्त होने पर आध्यात्मिक शक्ति सहायक होती है। इस शक्ति का स्रोत शास्त्र और सत्य स्वरूप ईश्वर में से दोनों या एक भी हो सकता है। इन दोनों का आधार परम धर्म आचार है। आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः। शास्त्र से विपरीत काम करने वाले कुमार्गी व्यक्तियों के साथ और समर्थन से विरत रहना भी सदाचार का आवश्यक अंग है। जीवन में निश्चिंत रहने केलिए यह सुविचारित मंत्र है।

41- स्वतंत्रत के चार स्तर हैं। प्रथम पशुप्रवृत्ति की स्वतंत्रता है। सभी तरह की जिम्मेदारी और अनुशासन के त्यागपूर्वक ताड़ना और व्यज्जती को सहन करते हुये प्रसन्न रहना निकृष्टतम कोटि है। इस प्रकृति का आदर्श गरियार बैल के विषय में प्रचलित यह लोकगीत है- डंडा चारि बबुर कर सहबइ। राजा होग गोरुन में चरबइ।। यह व्यक्तिगत तामस स्वतंत्रता है। गुलाम रहकर सुरक्षित समझने वाला व्यक्ति या समुदाय भी इसी कोटि में है।

दूसरी स्वतंत्रता सामाजिक और नैतिक मर्यादा से हीन महत्वाकांक्षी लोगों की होती है। भ्रष्टाचार, बाहुबल, धनबल आदि दुराचार इसमें आवश्यक हैं। अहंकार की तृप्ति इसका लक्ष्य है। यह तामस विशिष्ट राजस स्वतंत्रता है। इसमें कुछ संगठित लोग स्वतंत्र होकर सबको परतंत्र रखते हैं।

तीसरी स्वतंत्रता धार्मिक मान्यताओं के आधार पर होती है। अपने की तरह

ही समाज और देश का हितसाधन करना इसका लक्ष्य है। इसमें मानसिक पवित्रता के साथ क्षत्रिय स्वभाव प्रधान है। रामराज्य इसमें लक्ष्य है। बड़े-बड़े बलिदानी महापुरुष, समाजसेवी, चिंतक और प्रजापालक इसके पक्षधर होते हैं। यह लोक और राष्ट्र की सात्विक प्रधान राजस स्वतंत्रता है।

चतुर्थ, पूर्ण सात्विक दुर्लभ स्वतंत्रता आध्यात्मिक साधकों की होती है। इसमें परम स्वतंत्र होकर, जीवनमुक्त पुरुषों द्वारा जगत को निर्भय करने और 'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु' की भावना होती है।

42- ब्रह्म और ओंकार में कारण और कार्य का संबंध है। उस परमतत्व के अव्यक्त से व्यक्त होने की प्रक्रिया में सर्वप्रथम ओंकार की ध्वनि होती है। निकटतम होने के कारण वह ब्रह्मतुल्य है।यह ध्वनि अनन्त तक व्याप्त होकर सृष्टि का आधार बनती है। इस बात के समर्थन में 'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञिरे' वाक्य प्रसिद्ध है। यद्यपि, यह वाक्य किस ग्रंथ का है, यह विद्वानों के भी जिज्ञासा का विषय बना है। वैसे, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की शक्ति वाणी हैं, यह विश्रुत है। वेद, उपनिषद्, गीता आदि सभी ग्रथों में ओंकार का महत्व प्रतिपादित है। ओंकार की अर्धमात्रा ब्रह्म ही है। प्रणव एकाक्षर ब्रह्म है।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' मानने पर सृष्टि के सभी पदार्थ उपास्य हो सकते हैं। इन उपासनाओं को हीन या श्रेष्ठ मानना, व्यवहार में, सात्विकता और चैतन्य के प्रत्यक्ष होने की मात्रा पर निर्भर करता है। सृष्टिक्रम में ब्रह्म के निकटतम ओंकार है। सात्विक होने से यह चित् तत्व से अनुस्यूत है। अतः ब्रह्मज्ञान के लिए लिए प्रबलतम और सर्वोत्कृष्ट साधन प्रणव ही है। अव्यक्त ब्रह्म लक्ष्य है। उसकी उपासना नहीं संभव है। अतः उसके सूक्ष्मतम व्यक्त स्वरूप, ओंकार की उपासना प्रशस्त है। माण्डूक्य आदि कई उपनिषदों में चतुष्पाद प्रणव साधना के विधान उपलब्ध हैं।

43- सनातन धर्म से भिन्न है भागवत संप्रदाय। एक में वैदिक ज्ञान-विज्ञान प्रधान है, दूसरे में स्वधर्म के साथ भक्तिप्रधान है। दोनों की परंपरा और संस्कृति में बहुत समानता भी है।संत रामानंद ने भक्ति साधना को शिखर पर पहुंचाया जिससे छोटी कही जाने वाली जातियों में अनेक भक्त संत हुये

हैं। वेदज्ञान के लिये बौद्धिक और स्वभावगत अक्षमता वालों के लिए यह सुरक्षित आश्रय है। तुलसीदास आदि कुछ ब्राह्मण व क्षत्री भी इस संप्रदाय में बड़े संत हुये हैं किंतु मूलतः शूद्र और वैश्य के लिए भक्ति एक विशेष व्यक्तिपरक उपासना पद्धति है। अब भक्त नहीं आंधभक्त रह गये हैं।

सनातन धर्म में ब्राह्मण का कर्मकांड बड़ा प्रबल अस्त्र है। ऋषि ऋंग ने राम को पैदा करके इसे प्रमाणित किया। बड़े-बड़े क्षत्रियों को उत्पन्न और सशक्त करके और धर्म तथा देश की रक्षा ब्राह्मणों नें किया। वैदिक उपासना अधिकांशतः ब्राह्मण और क्षत्री में रही है। यह सर्वहित यज्ञ और लोकपरक जीवन पद्धति है। आज वैदिक परंपरा लुप्तप्राय है। अधिकांश लोग अंधभक्त बन रहे हैं। सनातन धर्म की सुरक्षा हेतु वैदिक विज्ञान के पुनरुद्धार की आवश्यकता है। दोनों परंपराओं के परस्पर सहयोग पर भारतीय संस्कृति आधारित रही है। मूर्ख से विद्वान तक के विकास हेतु इसमें विशिष्ट व्यवस्था रही है। इसी से भारत विश्वगुरु रहा है, अब भी संभव है। उत्साह होने पर उपाय मिल जायेगा।

44- अपने देश में सबसे अधिक शोषण मध्यवर्ग का हो रहा है। इस वर्ग में भी दरिद्र और सामान्य दो तरह के लोग हैं। सरकारी नौकरी पाने वाला दरिद्र नहीं, सामान्य श्रेणी में आ गया है। सवर्ण, दरिद्र, किसान तथा सामान्य श्रेणी के लोगों का शोषण खूब हो रहा है। किसानी पर निर्भर मध्यमवर्गी की बचत दुगनी की जगह आधी हो गई है। सरकारी नौकरी वालों का शोषण, नेताओं व गुंडों के हस्तक्षेप से बढ़ता जा रहा है। सत्ता का दुरुपयोग खूब हो रहा है।

दलित का शोषण के साथ पोषण भी हो जाता है। उच्च आय वाले नेता और पूंजीपति को महंगाई और कराधान से कष्ट नहीं है। बीच के लोग, विशेषकर बेरोजगार सवर्ण, बेहद शोषित हैं। महंगाई और बेरोजगारी के प्रभाव से सवर्णों और किसानों को भी सुरक्षा आवश्यक है। इनका हितचिंतक कोई दल नहीं है।राजनीति में ईमानदारी दुर्लभ है। अतः प्रबुद्ध लोगों में नोटा की वोटिंग बढ़ रही है। प्रजातंत्र की गरिमा सुरक्षित रखने केलिए वोट लेने के अधिकारी विश्वसनीय दलों का होना जरुरी है।

45- मैकाले की शिक्षापद्धति के प्रभाव से पढ़े-लिखे लोग यहां के धर्म, संस्कृति और हिन्दुत्व को ठीक से नहीं समझ सके। वे लोग अंग्रेजियत पसंद करने लगे। प्रभावशाली लोगों द्वारा कीटभृंग न्याय (अनवरत एक ही बात सुनाना, ब्रेनवाशिंग) से, सामान्य जनता को दृढ़ रूप से स्वाभिमान रहित और गुलाम प्रकृति का बना दिया गया। समाज में सांप्रदायिक भावना पहले से थी। आगे की घटनाओं केलिए यह पृष्ठभूमि रही है।

ऐसी दशा में बीसवीं शदी में कुछ दूरदर्शी लोगों ने, जनता की कमजोरी के अनुरूप लक्ष्य और सिद्धांत के साथ, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना किया। इसमें सनातन धर्म या मूल भारतीय संस्कृति को महत्व नहीं दिया गया है।

इस कारण से हिन्दू की परिभाषा भी बदल गई है। यह संघ हिन्दुत्व और धर्म के नाम पर एक प्रच्छन्न राजनैतिक संगठन बन गया है। सत्ता का स्रोत होकर, यह सत्ता का संरक्षण पाने में सफल है। पूर्व अनुभव है कि राजा द्वारा राजधर्म को छोड़कर, देश की संस्कृति के बजाय विशेष संप्रदाय को संरक्षण देने पर राष्ट्र को अपूरणीय क्षति हुई है। भारत मां यहां की वैदिक संस्कृति रक्षणीय है। हिन्दू या मुसलमान किसी को वरीयता देना दल के हित में देश का अहित करना है। अतः आरएसएस की उपयोगिता सामाजिक और सांप्रदायिक संतुलन के लिए ही हो सकती है, अन्यत्र नहीं। इस पर कानूनी अनुशासन और इसे सत्ता के संरक्षण से दूर रखना भी अपेक्षित है। अन्यथा यह राष्ट्रहित के लिए साधक न होकर बाधक है।

इस तरह जनता की कमजोरियों का लाभ ही सभी लेते रहे हैं। अब शिक्षा और लोकनीति द्वारा इन कमजोरियों को दूर करने का प्रयास होना चाहिए।

46- अनेक क्षेत्र हैं जिनमें पद और प्रतिष्ठा से विभूषित लोगों का नाम सुनने में आता है। सात प्रमुख क्षेत्र हैं- प्रशासन, राजनीति, शिक्षा/साहित्य, उद्योग, मनोरंजन/कला, धर्म और विज्ञान। इन सात क्षेत्रों के लिए अलग-अलग तरह की उपाधियां होनी चाहिए। सब एक तराजू से नहीं तौलना चाहिए। इन लोगों के प्रति जो प्रारंभिक भावना दूर से बनती है, वह सन्निकट जाने

पर बदल जाती है। तब ऐसा लगता है कि जितना सोच रक्खा था उतने महान यह नहीं हैं। आचरण में पारदर्शिता न होने पर सत्य छिपा रहता है और विपरीत ज्ञान भी होता है। कभी-कभी, उनके दुर्गुणों का ज्ञान होने पर घृणा भी हो सकती है। प्रथम दृष्टि से अति सामान्य किन्तु पूर्ण परिचय प्राप्त करने पर सम्मान और श्रद्धा में उत्तरोत्तर वृद्धि के योग्य व्यक्ति दुर्लभ है।

बाह्य आकर्षण वाली बातों को छोड़कर, व्यक्ति के अन्दर निहित सत्यनिष्ठा, मानवता, उच्चाशयता, दूरदर्शिता आदि का ज्ञान करके ही व्यवहार करना बुद्धिमानी है। आचार व बुद्धि से कृपण की सेवा मृत्युतुल्य है। लोभरहित विद्वान् के लिए धन और प्रतिष्ठा तृणवत है।

47- 'एकं सद् विप्रा बहुधा बदन्ति।'-ऐसा लिखकर इन्द्रादि वैदिक देवताओं की एकता ऋग्वेद में प्रतिपादित है। परमेश्वर एक ही है।इसी आधार पर पौराणिक और ऐतिहासिक देवताओं की भी एकता सिद्ध है। देवताओं में बड़ा-छोटा की भावना अल्पज्ञता या जड़ता का परिचायक है। निर्मल बुद्धि होने पर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर एक ही अव्यक्त परमेश्वर के सगुण स्वरूप लगते हैं। सभी एक हैं। खेत को बोने वाला, उसे सींचने वाला और पकने पर काटनेवाला किसान तीन नहीं एक ही रहता है। सृष्टिकर्ता भी उद्भव, पालन और प्रलय के लिए तीन सगुण स्वरूप धारण करता है। सभी स्वरूप में वह समान रूप से सर्वसमर्थ रहता है। यही एकेश्वर की उपासना है। ऐसा न समझ पाने वाले बड़े-बड़े धर्माचार्य, कुछ शंकराचार्य भी हैं। वे लौकिक भागवत संप्रदाय से प्रभावित हो चुके हैं। शुद्ध वैदिक स्मार्त धर्म को समझना आवश्यक है। इससे एकेश्वरवाद स्थापित होगा तथा सांप्रदायिक विवाद समाप्त होंगे।

48- भाव (संपन्नता) या अभाव (विपन्नता), दोनों से समस्यायें हो सकती हैं। वस्तु में नहीं, अन्तःकरण में सुखशांति का स्रोत है सक्रियता या निष्क्रियता से नहीं। विवेकपूर्वक कार्य करने से धर्मरक्षा और सुयश मिलता है। प्रदर्शन नहीं, त्याग और परोपकार की भावना से दान देना सात्विक है। इस तरह समस्त कार्यकलापों में अंतःकरण का महत्व है। वह पवित्र है तो कोई बंधन नहीं है। पृथ्वी, जल, वायु और आकाश यह प्रदूषित हो सकते

हैं किन्तु अग्नि नहीं। शास्त्रसम्मत कार्य अग्नि की तरह है जो निर्दोष रह कर सब कार्यों को निर्मल करता है। लौकिक अग्नि की अपेक्षा ज्ञानाग्नि अधिक प्रबल है। इससे समस्त कर्मफल भस्म हो जाते हैं। 'ज्ञानाग्निः सर्वे कर्माणि भस्भसात् कुरुते तथा'। गीता।

49- यात्रारंभ के लिए पूर्व की दिशा को सुबह और पश्चिम को शाम का समय प्रशस्त माना जाता है। 'पश्चिम सायं पूरब ऊषा। पोथी पत्रा एक न देखा।'- यह उक्ति प्रचलित है। इन समयों में परछाई पीछे पीछे आती है। विपरीत समय में परछाईं आगेआगे भागती लगती है। परछाईं कार्य की सफलता का लक्षण है। इसका पीछे-पीछे चलना शुभ है और आगे-आगे जाना अशुभ है। सन्मुख सूर्य व चन्द्र शुभ हैं।

जीवन के आरंभ, मध्य और अंत के समय मे प्रारब्ध कार्यों से इसकी तुलना शिक्षाप्रद है। 'शैशवऽभ्यस्त विद्यानाम्' कहकर कालिदास ने संकेत किया है कि बाल्यकाल में विद्यार्जन करना चाहिए। उस समय अध्ययन न करनेवालों की विद्या शंकास्पद होती है। शैशवावस्था में विद्यार्जन पूर्ण होने पर, युवा काल में, मध्याह्न की परछाईं कीतरह, सफलता पैरों के नीचे रहती है। 'यौवने विषयैषिणाम्' होने पर कार्य सरलता से सफल होता है। वृद्धावस्था में कार्यारंभ करने में सफलता की उपलब्धि कठिन है। वह समय अनारंभ और लौकिक कार्य से सन्यास की शिक्षा देता है। वृद्धावस्था में लौकिक कामना नरक में पतन का कारण है। तब, आरंभ करने योग्य कार्य यात्रा रहित, भिन्न कोटि के होते हैं। 'वार्धक्ये मुनिवृत्तीनाम्, योगेनान्ते तनुत्यजाम्।' यही हमारी संस्कृति का आदर्श है। अपवाद नहीं, निर्धारित नियम विश्वसनीय और आचरणीय होता है।

50- अपने दुराचरण को स्वयं प्रकाशित करना और पुनः वैसा न करने का संकल्प लेना अच्छी बात है। प्रायश्चित करना शास्त्रीय विधान है। उसे स्वयं प्रकाशित करके पुनरावृत्ति करना बेहयाई है। बड़े लोगों द्वारा ऐसा करना अमर्यादित रहने को प्रोत्साहित करना है। ऐसे लोगों को त्याज्य और निन्दनीय श्रेणी में मानना उचित है।

बोल्डनेस शब्द बेखौफ, निर्भीक, संकल्प पर अडिग आदि अच्छे अर्थ में

समझा जाता था। आजकल अंगप्रदर्शन, बेपर्दगी और व्यभिचार को सार्वजनिक करने वाली सिनेमा की रूपगर्वित स्त्रियों को बोल्ड और सशक्त कहा जाता है। कुछ नेताओं और मनचलों का भी यही आचरण है। इन लोगों को आचरण में पारदर्शिता दिखाने की अपेक्षा चुप रहना अच्छा है। वे अपना कोढ़ अपने तक सीमित रक्खें। अमर्यादा के प्रचार से समाज को उत्तरोत्तर दूषित करना जघन्य अपराध है। समाज निःशक्त होचुका है। अतः, संस्कृति की सुरक्षा केलिए बाह्याडंबर नहीं, कानून द्वारा, आचार-व्यवहार को मर्यादित रखने केलिए विवश करना एकमात्र सरकार का उत्तरदायित्व हो गया है।

51- आध्यात्मिक स्वतंत्रता का महत्व और साधन ब्राह्मण जानता था। इसी के लिए वह स्वेच्छया अकिंचन और असंग्रही बना रहता था। ईसा मसीह ने इसे जाना था तभी उन्होंने राजकुमार से कहा कि सुई की छेद से ऊंट भले निकल जाय किन्तु धनवान व्यक्ति ईश्वर के धाम में नहीं प्रवेश कर सकता है।कलियुग में 'तपसी धनवंत दरिद्र गृही' देखने को मिल रहा है। ऐसे लोग ही आध्यात्मिक गुरु भी हैं। अतः, सामाज के लिए यह स्वतंत्रता तो त्याज्य है, अब दूसरी देखें।

भौतिक स्वतंत्रता में समाज और देश की दशा द्रष्टव्य है। इस समय समाज राजनीति का गुलाम है और राजनीति विदेशी राजनीतिज्ञों के विचारों का गुलाम है। स्वदेशी स्वतंत्रता केलिए समाज को राजनीति की दासता से मुक्त करना आवश्यक है। भारत में स्वतंत्रता और सत्ता पर्यायवाची हो गये हैं। जो सत्ता में है केवल वही स्वतंत्र है। अतः व्यक्ति और पूरा समाज राजनैतिक शोषण के शिकार बने हैं।

स्वतत्रता का महत्व लिंकन, वाशिंगटन, मंडेला आदि ने जाना था और अपने देशवासियों केलिए वैसी व्यवस्था किया। तिलक, नेताजी सुभाष, चन्द्र शेखर आजाद,भगत सिंह आदि बलिदानियों को स्वतंत्रता का मूल्य ज्ञात था। किन्तु वे सत्ता में नहीं आ सके। जार्ज वाशिंगटन की सेना से पराजय का अनुभव अंग्रेजों को था इसलिए भारतीय नेताओं को ही नेताजी सुभाष का विरोधी बना दिया गया। अतः नेताजी विदेशियों को नहीं भगा सके। अब भी, उनकी भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता हो तो यह देश

विदेशी विचारों और उनकी संस्कृति से मुक्त हो सकता है। देश के प्रति ईमानदारी और निष्ठा चाहिये।

52- पश्चिम का नकल करने के कारण तथाकथित स्वतत्रता भी यहां सांस्कृतिक और सामाजिक गुलामी है जिससे नई तरह की गुलामी संभव है। संविधान की प्रस्तावना (प्रीएम्बल), में भारतीय संस्कृति और स्वाभिमान की सुरक्षा को प्राथमिकता देना चाहिये था किन्तु कुछ और ही किया गया। संविधान निर्माण के समय विदेशी संस्कृति के समर्थक प्रबल रहे जिससे अंग्रेजों की इच्छानुसार संविधान बनाने की योजना सफल हुई। इसका प्रभाव भारतीय समाज, संस्कृति और देश की सम्प्रभुता पर स्पष्ट है।

संविधान की प्रस्तावना में भारतीयता की प्रतिष्ठा होती तो वेदाधारित मनुस्मृति को जलाने के बजाय पूज्य ग्रंथ माना जाता। योग्यता की इज़्ज़त होती। सतीत्व का आदर, विवाह आदि केवल उत्सव नहीं संस्कार, मर्यादा आदि शील, योग्यता, कार्यकुशलता तथा गृहिणी पद के आधार पर नारी का सशक्तीकरण होता। वेशभूषा, रहनसहन मर्यादित होता। ब्वाय और गर्ल फ्रेंड का व्यभिचार यहां नहीं फैलने पाता। लिव इन, समलैंगिक संबन्ध, स्वच्छंद व्यभिचार आदि के कानून नहीं बन सकते। नग्नता व अंग प्रदर्शन को बोल्डनेस नहीं अपराध माना जाता। होटलों और शहरों के गलीगली में व्यभिचार के अड्डे और पुलिस की कमाई के साधन न बनते। ऐसी अनेक समस्यायें उत्पन्न हैं। यौनाचार संबधी अपराधों को रोककर, सामाजिक प्रदूषण से बचाने के लिए नियमों से नियंत्रित वेश्यावृत्ति को मान्यता देना उचित है। इससे मनचलों की इच्छापूर्ति तथा अनेक बुराइयों से बचत होगी। गंदगी को सब जगह फैलने से बचने के लिए नाली में बहाने की व्यवस्था की जाती है। पुराने जमाने में शासक अधिक कुशल और संस्कृति प्रेमी थे। उन्हें मनोविज्ञान और मानवीय दुर्बलता का ज्ञान था। वर्णसंकरता (दोगलापन) निन्दनीय थी। इसी दृष्टि से पूर्ण विकसित संस्कृति में यह प्रथा विधिसम्मत थी। विदेश कि संस्कृति में यौन संबंध के नियम अपने से बहुत भिन्न हैं। वह हमारे लिए अनुकरणीय नहीं है। पाश्चात्य स्ंस्कृति की धूलभरी आंधी में भारतीयता उड़ रही है। हम सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से एकदम गुलाम होते चले जा रहे हैं। जो मुगल और अंग्रेज नहीं

कर सके, वह स्वतंत्र भारतीय अंग्रेज कर रहे हैं। इसका प्रभाव प्रत्येक क्षेत्र में पड़ रहा है। इस आंधी को रोकना आवश्यक है।

वर्तमान स्थिति में, संविधान के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय भी संस्कृति विरोधी आदेश देने को बाध्य है। विकल्प नहीं है। अतः राष्ट्रीय स्वाभिमान, समाज और संस्कृति की रक्षा तथा बहुत सी समस्याओं के निवारण के लिए संविधान की प्रस्तवना में यथेष्ट संशोधन तथा तदनुसार कानूनों का प्रवर्तन विचारणीय है।

53- किसी अनाचारी के छूने से अपना प्रिय पवित्र पदार्थ त्याज्य नहीं हो जाता है। संस्कारित करके उसे अपना बनाये रखना बुद्धिमानी और धर्मसम्मत है। निशिचरों द्वारा यज्ञ विद्धवंश होने पर भी, ब्राह्मण अपने उपकरण बचाते थे।

आजकल तीर्थस्थलों को पर्यटन स्थल बनाने में महंतों और धर्माचार्यों द्वारा सरकार का सहयोग करना निराशाजनक कृत्य है। संतों को मठ की मर्यादा पर दृढ़ रहना शोभनीय है। उनके द्वारा, सैकड़ों वर्ष की परंपरा से प्राप्त अपने अधिकार को सत्ता के पक्ष में समर्पित करने और किसी दल का चाटुकार बनजाने से धर्मप्रेमी असमंजस में हैं। उन स्थलों में रोज होली-दीवाली मनाने से तीर्थ की शांति और पवित्रता प्रभावित हो रही है क्योंकि दर्शकों के वेशभूषा और आचारव्यवहार पर्यटक संस्कृति के हो रहे हैं। कुछ धर्माचार्य अपनी जगह दृढ़ हैं, यह शुभ है। पुराने दर्शकों को उन स्थलों में अपनी श्रद्धा के बल पर जाना ही चाहिए। अन्यथा वे एकदम बेकाबिज हो जायेंगे।

इसी तरह ऋषि, महर्षि, कोई देवता, राम, कृष्ण, आचार्य, प्रतिष्ठित महापुरुष, नेता, चिंतक, विद्वान आदि को अवसरवादियों द्वारा अपना लेने पर वे उन्हीं के नहीं होजाते हैं। कृतघ्न लोग, उपयोगिता समाप्त होने पर, उन्हे छोड़ देंगे। उन महापुरुषों के प्रति अपनी अच्छी भावना पूर्ववत बनाये रखने और प्रदर्शित करने में कमी करना अदूरदर्शिता है। उनके आचरण और संदेश का अनुकरण करते रहना उचित है। ईर्ष्याद्वेश का त्याग करके आत्महित को ही ध्येय बनाये रखना बुद्धिमानी है।

54- **सामयिक विचार**

इस सत्र 2024 के संसदीय चुनाव में अब तक का अनुभव है कि वोट डालने में जनता की इच्छा बहुत कम हो गई है। वोट पड़ने का प्रतिशत घट रहा है। इसका कारण गर्मी नहीं है। चुनाव तो गर्मी में होते रहे हैं। ऐसा लगता है कि वर्तमान समय में प्रमुख दलों से प्रचारित प्रधान मंत्री और उनके सहयोगी होने वालों से जनता क्षुब्ध और निराश है। इसका कारण देश विदेश तक विख्यात हो रहा है। सामान्य जनता में भी सुनने को मिलता है।

चुनाव आयोग द्वारा वोट डालने को प्रेरित करने के लिए कुछ पुरस्कार देने की योजना बनाई है, ऐसा अखबार में है। मुफ्त की प्रेमी यहां की जनता को यह प्रभावित कर सकता है। वोटिंग दर बढ़ाने के लिए किसी दल से होने वाले प्रधान मंत्री का नाम संदिग्ध रखना कारगर उपाय हो सकता है। प्रधानमंत्री को दल के बहुमत से चुनना प्रजातांत्रिक है।

किसी के विरोध में नहीं, देश और प्रजातंत्र के हित के लिए उपयोगी समझकर यह मत व्यक्त किया गया है।

55- इस देश को, धार्मिक नहीं सांस्कृतिक हिन्दू राष्ट्र घोषित करना, देश की स्वतंत्रता और विभाजन के समय, नीतिसम्मत था। तब विरोध का प्रश्न नहीं था। लेकिन स्वतंत्रता सेनानी मर गये थे और हिन्दुस्तानी अंग्रेजों का वर्चस्व हो गया था। तब से समस्या जटिलतर होती जा रही है। अपने दल के राजनैतिक हित के लिए नहीं, देश के हित के लिए ईमानदारीपूर्वक सोचने पर भारत को सांस्कृतिक आधार पर हिन्दू राष्ट्र बनाना अब भी कठिन नहीं है। यह देश एक विशाल सांस्कृतिक साम्राज्य का केन्द्र रह चुका है। अमेरिका आदि ने भी अब विकास को संस्कृति पर आधारित किया है।

जातिवाद और हिन्दुत्व भारत के डीएनए में है। यहां के मुसलमान और अंग्रेज में भी हिन्दुत्व का ही डीएनए मिलेगा। कुछ पीढ़ी पहले सभी हिन्दू थे। उन्हें हिन्दू बनाने के बजाय हिन्दू मान लेना सकारात्मक सोच है। एक पैर यहां एक विदेश में रखने वाले नगण्य हैं। व्यक्तिगत और सामाजिक

क्षेत्र में राजनैतिक हस्तक्षेप न करते हुये, सार्वजानिक और राजनैतिक क्षेत्र केलिए समान नागरिक संहिता प्रवर्तित करने से अधिकांश समस्यायें समाप्त हो सकती हैं। संविधान के वर्तमान स्वरूप के रहते ऐसा हिन्दू राज संभव नहीं है। जाति और संप्रदाय के आधार पर बने अनेक प्राविधान संविधान से समाप्त करने पड़ेंगे।

हिन्दू कोई धर्म या संप्रदाय नहीं, एक संस्कृति है। अनेक संप्रदाय इसमें है। किसी एक को राष्ट्रधर्म मानने से हिन्दुत्व की व्यापकता और महिमा समाप्त होती है। इसमें किसी धर्म या संप्रदाय नहीं भारतीय संस्कृति का महत्व है तथा देश की आत्मा परिलक्षित होती है। किसी दल या संप्रदाय द्वारा इस कार्य का श्रेय लेने का प्रयास होने पर योजना विफल होगी। यह कार्य किसी विशेष राजनैतिक दल नहीं, सभी दलों, संतों और देशप्रेमियों के सहयोग से होगा। यह किसी धर्म या संप्रदाय का नहीं, स्वतंत्रता के बाद स्वदेशी शासन कहा जायेगा। इससे समरस समाज, देश का स्वाभिमान, सही स्वराज्य और सुशासन के दुर्ग का शिलान्यास होगा।

56- अपनी जीवनी लिखने और अपना परिचय बताने दोनों के उद्देश्य और तरीके अलग अलग हैं। परिचय बताने से व्यक्तित्व की पारदर्शिता और विश्वसनीयता प्रकाशित होती है। अपने जीवन की पृष्ठभूमि तथा कुछ लोगों को विदित बातों को, संक्षेप में, सब को बताना परिचय देने का तरीका है। ऐसा करना उचित है। अपनी जीवनी लिखने का औचित्य समझना कठिन है। इससे अहंकार का प्रदर्शन, आत्मश्लाघा, धूर्तता, कदाचार पर पर्दा डालना आदि की संभावना खूब है। व्यक्तिगत आचरण और व्यवहार, कुछ जीवनकाल के विषय में पर्दा डालना तथा आर्थिक व्यवस्था के विषय में मौन रहने पर व्यक्तित्व संदेहास्पद होता है। पुराने समय में स्वाभिमान के प्रदर्शन, गर्वोक्ति आदि में संक्षिप्त आत्मप्रसंशक थे लेकिन आत्मकथा किसी ने नहीं लिखा है। यह विदेशी नकल है, भारतीय संस्कृति का अंग नहीं है। यदि किसी ने अपने जीवन से लाभदायक संदेश दिया है तो इतिहास और कवि लोग मरने के बाद उल्लेख करते हैं। जीवनकाल में यह मिथ्या प्रचार और चाटुकारिता है।

अपना गलत परिचय देना धूर्तता है। कार्य के द्वारा उसे प्रमाणित करने पर

पूर्ण परिचय होता है। अपने स्वभाव का परिचय देने में गर्वोक्ति संभव है। कहंउ सुभाव न कुलहिं प्रशंसी। कालहुं डरहिं न रण रघुवंशी।। ऐसा कहने वाले तुलसीदास के राम ने कार्य से भी वही परिचय दिया। यह उत्तम विधि है। इससे विश्वसनीयता बनती है।

57- मनस्वी और अपने प्रताप से सुरक्षित (स्ववीर्यगुप्त) महापुरुष सुरक्षा के घेरे में नहीं रहते हैं। सत्य और न्याय ही उनका कवच है। राम ने कहा कि हमें दुश्मन से भय नहीं है क्योंकि 'जग मे सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महं तेते।।' कायर, आतंकी और अन्यायी अनेक स्तरीय सुरक्षा में रहकर भी मृत्यु से भयभीत रहते हैं। वे जितना व्यय जीवन यापन केलिए करते हैं उससे अधिक मृत्यु से बचने के लिए। न्यायप्रिय न्यायाधीश फांसी की सजा देने पर भी बहुत सुरक्षा में नहीं रहता है। वास्तव में कर्तव्यपालन की जगह अधिकार के प्रयोग का प्रदर्शन या सामूहिक निर्णय और प्रयास से मिले सुपरिणाम का श्रेय एक व्यक्ति द्वारा लेने पर उसको असुरक्षा उत्पन्न होती है। 'अति लोभात् लोकस्य चक्रं भ्रमति मस्तके।' अर्थात् अति महत्वाकांक्षी को व्याकुल करने वाला भय उत्पन्न होता है।

निर्भय और स्वतंत्र रहने तथा खुली गाड़ी में चलने के लिए सत्य, न्याय, स्वधर्मपालन का स्वभाव और निरहंकार होना ही सुरक्षा कवच है। निर्भय रहना लोक और परलोक दोनों के लिये साधन नहीं साध्य है। निष्काम होने से निर्भयता रहती है। डाइग्नीज ही सिकन्दर के अहंकार पर आघात करसकता था। काशी के तैलंग स्वामी राजाओं और अंग्रेज अधिकारियों को उनकी सही औकात बताने के लिए प्रसिद्ध थे। कर्मयोग की पराकाष्ठा तक पहुंचकर ज्ञान के पिपासु जनक केलिए याज्ञवल्क्य ने 'अभयं वै जनक प्राप्तोसि' कहा। इस उपनिषदीय आख्यान से शिक्षा मिलती है कि अभय होना जीवन की कृतकृत्यता है।

58- गरीब, बेरोजगार और मध्यम वर्ग को जीने का सहारा देने की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करना समय की मांग है। एक सुझाव है कि पिछले पांच वर्षों में राजकीय कर्मचारियों और एमपी, एमएलए आदि को जो मंहगाई भत्ते और बेतन दर में वृद्धि की गई है वह वापस ली जाय। इसके

साथ ही मूल्यों और टैक्स में जो वृद्धि इस आवधि में हुई है उसे भी समाप्त किया जाय। बढ़ती महंगाई को रोकने से कृषि क्षेत्र में लागत कम होगी और विकास के नाम पर शोषण बन्द होगा। अन्य क्षेत्रों में भी भ्रष्टाचार के आधार पर विकास का परिणाम बुरा हो रहा है।

अरबपतियों की संख्या बढ़ाने के बजाय लखपतियो और करोड़पतियों के द्वारा लघु उद्योगों से खाली हाथों को काम और स्वदेशी माल के विक्री की व्यवस्था की जाय। विदेशी ऋण और काले धन की वृद्धि आदि को नजरंदाज करके जीएसटी और जीडीपी को विकास का आधार न बनाकर, रोजगार, आत्मनिर्भरता और स्वदेशी के आधार पर आकलन किया जाय।

सामाजिक समरसता के नाम पर अनीति और अस्वाभाविक कार्य की योजना न बनाई जाय। मध्यमवर्ग को और नीचे ढकेलने के बजाय शिक्षा और सामाजीकरण द्वारा निम्नवर्ग के उत्थान का उपाय करना उचित है। भक्तिमार्गी समरसता जिसमें 'हरि को भजे सो हरि का होई, जातिपांति पूछे नहिं कोई' कहा जाता है, व्यक्तिगत जीवन और सांप्रदायिक मठों तक मान्य है। व्यक्तिगत और सामाजिक क्षेत्र तक समरसता यहां पहले रही है। इसे राजनैतिक दलों ने बिगाड़ा है। अतः, केवल सार्वजानिक और राजकीय क्षेत्रों तक राजनीति की सीमा निर्धारित हो जाने पर समस्या का निदान हो सकता है। इन क्षेत्रों में जाति, वर्ण, धर्म और लिंग का कोई महत्व न होकर, केवल योग्यता को वरीयता देने पर सब समान हो जायेंगे। पदप्रतिष्ठा तथा सम्मान का समान अवसर देना देशहित में है। सामाजिक अनुशासन का प्रभाव राजकीय शासन से अधिक कारगर होता है। वर्णव्यवस्था प्रकृति का कार्य है। वह रहेगी ही।निम्नवर्ग का उत्थान होने पर मध्यमवर्ग से उसकी दूरी कम हो सकती है और वास्तविक समरसता संभव हैं। दोनों के परस्पर सहयोगी होने से राजनीति पर इस वर्ग का हस्तक्षेप प्रभावी होगा।

59- मनुष्य विधाता की चरम कृति है। ज्ञान केलिए उसको प्रमुख साधन श्रवणेन्द्रिय प्राप्त है।दूसरे के मुख और अपने मन, बुद्धि और हृदय इन चार स्थानों से मनुष्य शब्द सुनाता है। सफलता इन में से किसी आवाज के अनुसार कार्य करने पर संभव है किन्तु यह चारों उत्तरोत्तर अधिक

विश्वसनीय होते हैं। केवल मुख की आवाज दूसरा व्यक्ति सुनता है, अन्य तीन की नहीं। मन की आवाज पर भरोसा करना मनमानी है। बुद्धि की आवाज सुनने पर सत्य का ज्ञान हो सकता है। हृदय की बात सुननेवाले विरले होते हैं जिनका अंतःकरण पवित्र होता है। उन्हें सत्य ही नहीं ऋत का भी ज्ञान होता है।

बहुधा, लोग मन का आग्रह और बुद्धि का निर्णय ही आत्मा की आवाज मान लेते हैं। यह भ्रम है।आत्मा को ही आत्मज्ञान संभव है। अपने या दूसरे के भी आत्मा की ध्वनि सुनने के लिए समर्थ आत्मज्ञ मनुष्य ही हो सकता है। परब्रह्म का साक्षात्कार करने में समर्थ ऐसे मनुष्य की अतिसृष्टि करके विधाता कृतकृत्य हो गये, यह मान्यता है।

'हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय' को चरितार्थ करने से बचने के लिये, सात्विक बुद्धि और उसकी आवाज सुनने का संकल्प लेना मनुष्यत्व है।

60- विषकन्याओं का प्रयोग राजनीतिज्ञ लोग पहले भी करते थे। मुद्राराक्षस में भी ऐसा पात्र मिलता है। प्रतिपक्षी को मारने के काम में इन्हें नियुक्त किया जाता था। पहले विषकन्या का बनाना सिद्धहस्त वैद्यों का काम था। अब विषकन्या बनाने, और उनके उपयोग के उद्देश्य एकदम भिन्न हैं। उनसे बचने के लिए, संक्षिप्त विवरण यहां है। कुछ लिखने के पहले स्पष्ट करदिया जारहा है कि कुलबधू, सम्मानित गृहिणी, योग्यता के आधार पर उच्च पदस्थ नारी, अपने पेशे के किसी क्षेत्र में शालीनता के साथ करने वाली अधिकांश महिलाओं के सम्मान को आहत करने नहीं बल्कि बढ़ाने के लिए यह लेख है। नारी का सशक्तीकरण अच्छी बात है। उन्हीं के भरोसे समाज और संस्कृति सुरक्षित रहती हैं। किन्तु इसके नाम पर जो नारी शोषण का पात्र बन रही हैं, उनके लिए और उनसे भी शोषित हो जाने वाले पुरुषों को आगाह करने के लिए यह लिखा जा रहा है। ऐसी विषकन्याओं की संख्या बहुत कम है किन्तु उनसे क्षति बहुत अधिक है। समाज, भारतीय नारी, कानून-व्यवस्था तथा देश की छवि को सुधारने के लिए यह लेखन उपयोगी होगा।

इस समय सिनेकार्यकर्ता, मनोरंजक, राजनीतज्ञ तथा पुलिस में से कुछ लोग और इस दिशा में कार्य करनेवाले कुशल दलाल विषकन्या बना रहे हैं। इनका प्रयोग किसी प्रतिपक्षी नेता, संपन्न धर्माचार्य, सामाजिक कार्यकर्ता या व्यक्तिगत विरोधी की राजनैतिक हिंसा, चरित्रहनन, उन्हें कानूनी विवाद में फंसाने या अर्थार्जन के लिए हो रहा है। सशक्तीकरण के नाम पर, सरकारी कानून भी विषकन्या बनाने में सहायक हो रहा है। विषकन्याओं का सशक्तीकरण हो रहा है और भारतीय नारी का स्वरूप अमर्यादित बन रहा है। सत्तासंपन्न लोग इन कन्याओं के साथी होकर भी अदण्य हैं और निरपराध लोग दंडित हो रहे हैं या भयग्रस्त हैं। विषकन्याओं, उनके प्रयोक्ता तथा उनको बनाने वालों को तत्काल दंडित होना चाहिए ।

इस हालत को पैदा करने मे सहायक कानून समाप्त करके अन्याय और अनीतिग्रस्त इस दुर्दशा का निवारण करना आवश्यक है। सुनीति यही है कि दलित और नारी को सवर्ण और पुरुष के समान रखने के कानून रहें। किसी तुच्छ स्वार्थ की सिद्धि के लिए, अस्वाभाविक भेद करके समाज को अव्यवस्थित नहीं किया जाय।

61- भारत भूमाता से प्रार्थना है कि कद्रू के नागनाथ व सांपनाथ पुत्रों की तरह, मायाजाल से सम्मोहित करने वाले, अपने पुत्रों को समेटकर, विनता के पुत्र गरुड़ की तरह, अपने पराक्रम से प्रभावित करने वाले, पुत्र को इस धरती पर पैदा करें। अन्याय और भ्रष्टाचार के विरुद्ध क्रान्ति करने में सक्षम नेताजी सुभाष जैसे सपूत की आवश्यकता है। उनके सामने गांधी, नेहरू जैसे लोग हतप्रभ हो जाते थे। ऐसा सर्वातिशायी व्यक्तित्व अपेक्षित है। माता की कोख से अब भी सब संभव है। भूमाता तो माता ही है। सत्य है –'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'। 'एकः चन्द्रः तमो हन्ति न च तारागणोऽपि।'

सत्य संकल्प के आधार पर संगठन बनाने वाले की विश्वसनीय आवाज पर अनुगमन करने हेतु युवा और प्रबुद्ध लोग व्यग्र हैं।उनको दूरदर्शी क्रांतिकारी नेता चाहिए। तब, सभी दलों के पाखंडी और अंधभक्तों की सेना उसी तरह लुप्त हो जायेगी जैसे सूर्य के उदय होने पर उल्लू और

अंधकार स्वतः गायब हो जाते हैं। देश के उद्धार केलिए दैवी प्रसाद की आशा में तथा आत्मकल्याण के लिए हम सत्य व कर्तव्य पर दृढ़ रहें। सत्यमेव जयते नानृतम्।

62- गूढ़ग्रंथि (गार्डियन नाट) को, रस्सी सुरक्षित रखते हुये, खोलना संभव नहीं है। इसे सिकन्दर की तरह तलवार से काटना बुद्धि का कौशल है। रस्सी को जला देने पर भी गांठ बिखर जाती है। यह दूसरा तरीका है। इस लौकिक समस्या के निराकरण के ज्ञान पारलौकिक समस्या के विषय में प्रयोज्य हैं।

मनुष्य की अनंत कामनाएं ही ग्रंथि बनाती हैं। ग्रंथि को खोलने की चुनौती प्रत्येक जीव के सामने रहती है।इन कामनाओं से मुक्ति पाना बुद्धि का कौशल है। कुशल व्यक्ति केलिए शास्त्रों में दो उपाय बताय गये हैं - प्रथम निष्काम कर्म, द्वितीय संन्यास। पहला साधन सुकर है किन्तु चिरकाल में सिद्ध होता है। दूसरा दुष्कर है किन्तु तीव्र संवेग वाला है। योग्यता के अनुसार साधन वरणीय होता है। एक में बंधनकारी रस्सी का अस्तित्व रहता है, दूसरे में नहीं।

बंधन के कारण और उसके निवारण के उपाय के साथ, ज्ञानविज्ञान का नाश करने वाली कामनाओं के बंधन को काटने के लिए उपदेश गीता में इस प्रकार है-

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।
महाशना महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञान नाशनम्।।

63- किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कोई कार्य किया जाता है। मूर्ख व्यक्ति भी बिना प्रयोजन के कुछ नहीं करता है। 'प्रयोजनमनुद्देश्य मन्दोपि न प्रवर्तते', यह नीति वाक्य है। मूर्ख का प्रयोजन निन्दनीय और विद्वान का प्रयोजन प्रशंसनीय होता है। कार्य के अनुसार कर्ता की योग्यता का आकलन होता है। कार्य का दूरगामी परिणाम भी कर्ता के व्यक्तित्व का प्रकाशक होता है।

कभी कभी प्रयोजन को गोपनीय रखकर, दिखावे के लिए कोई अच्छा

काम भी किया जाता है। धूर्तों का प्रयोजन जानना कठिन है। हितोपदेश में कहानी है कि फंसाने के लिए कंगन का दान करने वाले बूढ़े शेर पर विश्वास करने वाला लालची पथिक मारा गया था। अतः प्रयोजन के अनुसार व्यक्ति तथा व्यक्ति के अनुसार प्रयोजन का अंदाज कर लेना बुद्धि की कुशलता है। कालनेमि ने थोड़े समय के लिए हनुमानजी को भ्रमित किया लेकिन वे शीघ्र ही रहस्य जानकर अपने कार्य में सफल हुये।

कुसंग से बचकर शुद्ध आचार और निर्भय तथा निष्कलंक व्यवहार रखने के लिए किसी व्यक्ति और उसके कार्य के प्रयोजन के विषय में, स्वयं या जानकार लोगों की सहायता से, विश्वस्त होना शिक्षणीय है।

64- वद्धावस्था में आने वाले रोग और शाम को आने वाले अतिथि, दोनों एक प्रकार के होते हैं। उनके लिए रात्रि विश्राम करने की व्यवस्था देना धर्म सम्मत है। ऐसा न करने पर अनिष्ट संभव है । वृद्धावस्था जीवन की शाम है। संदेहास्पद कुलशील के अतिथि और गुप्त रोगों के विषय में संक्रमण से बचाव करना भी नीति सम्मत है। नीति और धर्म दोनों पालनीय हैं।

हितोपदेश में नीति है -अज्ञात कुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्। इस तरह अतिथि को रात्रि निवास देने से रोकने की भी नीति दिया है। राजनीति (अर्थशास्त्र) और धर्मनीति में विरोध होने पर, धर्मनीति को प्रबल माना गया है- 'अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्म शास्त्रमिति स्थितिः' याज्ञवल्क्य स्मृति। अतः सतर्कता के साथ अतिथि सत्कार भी कर देना संगत है। वृद्धावस्था के अधिकांश रोग साध्य और असाध्य से अलग आप्य (यथावत बनाये रखने) की श्रेणी में माने जाते हैं। उन्हें समाप्त करने केलिए सामान्य प्रयास ही करना चाहिए।

65- अभाव का भाव और भाव का अभाव असंभव है।असत् का भाव और सत् का अभाव नहीं होता है , ऐसा गीता में है- 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।' जिस प्रत्यक्षतः दृश्य पदार्थ का अभाव हो जाता है उसे मिथ्या कहते हैं। जो आदि और अन्त में नहीं है, वह मध्य में भी स्वप्नवत मिथ्या है। मिथ्या नहीं सत् पदार्थ के लिए प्रयास करना चाहिए। जीवनयात्रा में इस सिद्धांत का पालन विचारणीय है।

निराशा तब होती है जब आशा की जाती है। आशा नहीं तो निराशा का प्रश्न ही नहीं। सामान्य व्यक्ति को आशा ही कर्म करने केलिए प्रेरित करती है।आशा के बिना भी कर्म करने का तरीका कर्मयोग बताता है। कर्म फल भोग के बाद समाप्त हो जाता है। अतः वह मिथ्या है। कर्म मिथ्या नहीं होता है। निष्काम रहकर किये गये कर्म का फल चित्त का शोधक होता है जो स्थायी होता है। 'योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये'-गीता। कर्मयोगी इसीलिये स्वधर्म का पालन करता है।

अच्छे कार्यों का सुपरिणाम न निकलने पर कर्म का त्याग करना कर्मयोग का अज्ञान है। लोकसंग्रह के लिए कर्म करना अनिवार्य है। निष्काम कर्मयोगी को, स्वधर्म के पालन द्वारा, यथासंभव लोकोपकार का यश तथा चित्तशुद्धि और उससे परलोक का प्रशस्त मार्ग प्राप्त होता है।

66- सत्यनिष्ठ पुरुष की सहायता दैवी योजना से होती है। राम को सुग्रीव और विभीषण जैसे सहायक मिले, पांडवों को कृष्ण मिले, शंकराचार्य को गोविन्द पाद मिले, राणा प्रताप विचलित हो रहे थे तो उन्हें भामाशाह मिले, शिवा जी को समर्थ गुरु रामदास मिले। ऐसे बहुत उदाहरण हैं। यह सहयोगी सफलता दिलाते हैं या कम से कम सुयश का पात्र तो बना ही देते हैं।

असत्य पर आरूढ़ लोगों को भी सहयोगी मिलते हैं जो आसमान में पहुंचाकर पाताल में ढ़केल देते हैं। इतिहास में उन्हें कालीसूची में स्थान मिलता है। सत्यनिष्ठ व्यक्ति सफल नहीं होता है तो भी ऐसा संदेश छोड़ जाता है जो प्रेरणादायक होता है। स्वतंत्रता संग्राम में बलिदानी ही सफल हैं। उनके संदेश अमर है।

इतिहास में प्रमाणित है की किसी दिशा में सफल व्यक्तियों में मनसा वाचा कर्मणा ईमान अवश्य रहता है।टामस कार्लाइल की पुस्तक 'हीरोज एंड हीरो वर्शिप' मे वर्णित छः जननायकों की जीवनी से यही सिद्ध किया गया है। मुहम्मद साहब का पहले का नाम ही अमीन था जिसका अर्थ ईमानदार होता है। सफलता या असफलता नहीं ईमानदारी और उद्देश्य की पवित्रता के आधार पर इतिहास में व्यक्ति का स्थान निर्धारित होता है। सत्य का

विकल्प नहीं खोजना चाहिए। उसी में विश्वास करना श्रेयस्कर है।

67- अमर कोई नहीं है। जो जन्म लेता है वह मरता है और जो मरता है उसका जन्म अवश्य होता है। जातस्य हि ध्रुवा मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च- -गीता। देवता और ब्रह्मा भी पैदा होते हैं। वे भी दीर्घकाल बाद मरते हैं। इससे आवागमन का क्रम शास्वत लगता है। केवल परब्रह्म ही सृष्टि के प्रपंच से अलग है। दूसरी तरफ, हमारे शास्त्रों में मुक्ति और अमरत्व का विधान भी है। इन दोनों परस्पर विरोधी जैसे शास्त्रादेशों की संगति विचारणीय है।

मरने के बाद जन्म न लेना जीव के वश में नहीं है। पैदा होने के बाद मृत्यु से बचने की साधना वेदविहित है। शरीर नहीं जीव के अमरत्त्व का विधान वेद में है। श्वास निकलने (रोने) से जीवन यात्रा आरंभ होती है और श्वास निकलने पर ही समाप्त होती है। निकलना बन्द करना अमरत्व की साधना है। आत्मसाक्षात्कार से सोहं, अहंब्रह्मास्मि आदि वाक्यों की प्रतीत हो जाती है। तब 'जीवो ब्रह्मास्ति नापरः' की स्थिति बनती है।अमरत्व मिल जाती है। ऐसे व्यक्ति के प्राण निकलकर बाहर नहीं जाते हैं, यहीं व्याप्त हो जाते हैं। उपनिषद में यही है – 'नहि तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति'। यह भी है- 'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति।' अर्थात आत्मज्ञान होने पर जीवन सत्य हो जाता है, अमरत्व मिल जाती है। इस तरह विरोधाभास समाप्त करके, शास्त्रीय आधार पर संगति बन जाती है।

जिसके पास ब्राह्मणत्व की सात्विकता है, वह व्यक्ति उपर्युक्त ज्ञान का उपयोग इस युग में कुछ आसानी से कर सकता है। कलियुग में वैराग्य के अनेक कारण उपस्थित हैं। वेदव्यास ने महाभारत में कलियुग, स्त्री और शूद्र को धन्य कहा है। तुलसीदास ने भी 'कलि समान नहिं आन युग' कहा है। इन कवियों की इस मान्यता का आधार यह भी है कि कलि में वैराग्य सुलभ है। इसके साथ शास्त्रज्ञान का संयोग करने पर दुर्लभ मुक्ति सुलभ हो जाती है। इस सिद्धि के लिए किसी प्रामाणिक विद्वान से अध्यात्म विषयक शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करना प्राथमिक सोपान है। मनन और निदिध्यासन की साधना में सिद्धि न भी मिले तो अगले जन्म के लिए सुसंस्कार मिलेगा ही।

68- कोई व्यक्ति जिस विषय में कुशल और ख्यातिप्राप्त है, उसकी बात उसी विषय में ध्यान देने योग्य होती है। आइंस्टीन गणित और विज्ञान के क्षेत्र में विश्वविख्यात हैं। अन्य विषयों की पढ़ाई में फेल भी होते थे। अन्य क्षेत्रों में वह सामान्य व्यक्ति की कोटि में होसकते हैं। खेलकूद, सिनेमा , व्यवसाय आदि क्षेत्रों के विख्यात लोग विद्वत्ता, राजनीति, चिंतन आदि क्षेत्रों में सामान्य व्यक्ति से भी हीन मानने योग्य हो सकते हैं। भीड़ को जादूगर आसानी से इकट्ठा करके धन कमाता है। मनोरंजन कर्मी भी इसी कोटि में हैं। इसी तरह का हथकंडा राजनीति में अपनाने से समाज, प्रशासन और देश की अपूरणीय क्षति होती है। तब सारी व्यवस्था सत्ता व धन प्राप्त करने तथा अहंकार के तृप्ति का साधन बन जाती है। सत्य नहीं, झूठ के प्रचार से सफलता शीघ्र मिलती है। इसमें संदेह नहीं है कि निन्दनीय आचार और कुटिल अंतः करण के व्यक्ति का प्रत्येक कार्य दुखदाई होता है। यह सुविचारित सत्य है जिसके परिप्रेक्ष्य में अपने यहां के देशप्रेमियों को भी सक्रिय होना चहिए।

राजनीति में जाने के पहले राजधर्म की शिक्षा होनी चाहिए। कम से कम अर्थशास्त्र, रामायण, महाभारत के कुछ अंश और शांति पर्व का ज्ञान भारतीय राजनीतिज्ञ को होना चाहिए। दुर्योधन या युधिष्ठिर के तरह के नेता की पहचान कठिन नहीं है। व्यक्तिगत आचरण ठीक नहीं है तो सार्वजनिक का ठीक होना असम्भव है। बीज के अनुसार ही वृक्ष होता है। डीएनए का परिवर्तन नहीं होता है। जाति व धर्म की सीमा से बाहर रहकर, निष्पक्ष चिंतकों के विचारों का आदर होने लगे तो समाज और देश का कल्याण हो सकता है। राजधर्म के गहन चिंतकों की बड़ी आवश्यकता है। अतः विद्यार्थियों को गुरुजनों का सम्मान करने का संस्कार देना अत्यावश्यक है।

69- भाई सबसे विश्वसनीय मित्र होता है। वही सबसे बड़ा शत्रु भी हो सकता है।भाई से संबंध बिगाड़ने में स्त्री जाति की भूमिका सर्वाधिक होती है। रामायण में कैकेई, महाभारत में योजनगंधा, कुन्ती, द्रौपदी ही महाविनाश की कारण थीं। अपराजेय सगे भाई सुंदविसुंद एक युवती के लिए लड़ मरे थे। इन सब में स्त्री की सुन्दरता कारण रही। सामाजिक व्यवहार तथा

संयुक्त परिवार के विघटन में यह समस्या सभी देख रहे हैं।

बन्धुत्व को बनाए रखने के लिए सतर्कता और सहनशक्ति अपेक्षित हैं। बन्धु वर्ग से व्यवहार में नारी के भूमिका की सीमा निर्धारित रखना, भाई से व्यवहार में कहीं संदेह हो तो परस्पर वार्ता द्वारा तत्काल निराकरण करना, उम्रमात्र में बड़े भाई का सम्मान करते रहना चाहिए। तब उन्नति में उसे प्रसन्नता होगी और आशीर्वाद देगा। सम्मान पाने के लिए नहीं समस्या का सामना करने के लिए आगे रहने का स्वभाव होना चाहिए। ऐसे छोटे-छोटे नियम बड़े कारगर हैं।

पारिवारिक बन्धुत्व के निर्वाह में कुशलता से, हृदय विशाल होने पर, विश्वबन्धुत्व का स्वभाव जाग्रत होता है। परिवार की प्राथमिक पाठशाला बड़ी महत्वपूर्ण है। इसी से समाज में गुरुजनों को सम्मान देने का स्वभाव बनता है। इससे वंचित व्यक्ति मानमोह से रहित, असंग संन्यासी हो जाता है या आवारा कुत्ता की तरह, न घर का न घाट का रहता है। परिवार से समाज के स्तर तक बन्धुत्व की यात्रा बड़ी सुखद होती है। तब क्षमा, परोपकार, समभाव आदि स्वाभाविक गुण हो जाते हैं। लौकिक जीवन की सफलता का यही आदर्श है।

70- कालचक्र के अंतर्गत क्रमशः चार युगों का परिवर्तन होता रहता है। युगानुसार नियन्ता होते हैं। सतयुग में तपोबली ब्राह्मण, त्रेता में बाहुबल से संपन्न राजधर्म के प्रवर्तक क्षत्री, द्वापर में अस्त्रशस्त्रज्ञ ब्राह्मण और बाहुबली क्षत्री, कलि में धनबल व जनबल से संपन्न वैश्य और शूद्र राजा होते हैं। इस पूर्वस्थापित व्यवस्था में काल ही राजा का कारण लगता है। किन्तु महाभारत में राजा को काल का कारण कहा गया है- इति थे संशयों मां भूत राजा कार्य कारणम्। इन दोनों मान्यताओं का सामंजस्य विचारणीय है।

काल को ही कारण मानने पर, राजा अकर्ता हो जाता है। तब, समस्त दोषों के लिए भी काल ही कारण होगा, पाप करने पर भी राजा दोषमुक्त हो जायेगा। ऐसी स्थिति में, राजा के अमर्यादित होने पर अव्यवस्था उत्पन्न होगी। अतः दूसरी विधि से चिंतन आवश्यक है।

काल भी महाकाल के अधीन है।परमेश्वर ही जगत का संचालक है।वह कर्म के अनुसार निग्रह वह अनुग्रह करता है। कर्मवाद के सिद्धांत का प्रवर्तक और रक्षक वही है। 'राजा कालस्य कारणम्' मानने पर कर्मवाद सुरक्षित रहता है। गीता का कर्मयोग भी कर्मवाद पर ही आधारित है। श्रुति सेतु की सुरक्षा को दृष्टिगत करके महाभारत में निर्णय दिया गया है। यही स्वीकार्य है।

इस वैदिक सिद्धांत को मानना बड़ा उपयोगी है। देखा जाता है कि जनता या किसी प्रबल व्यक्ति द्वारा अन्यायी शासक को हटाकर, अच्छी व्यवस्था लाने का कार्य हर युग में होता रहा है। ऐसा विश्वास होने पर उत्साह के साथ स्वधर्म के पालन और संकल्प पर दृढ़ रहने की भावना बनी रहती है।

71- देश की मौलिक पहचान और जनता की आकांक्षा के अनुसार संविधान और कानून सफल होता है। संविधान देश के लिए होता है, देश किसी संविधान को ढोने के लिए नहीं होता है। स्वतंत्र देश में विदेशी कानून और नियमों का प्रवर्तन करना गुलामी और अनीति है।

इंग्लैंड की तरह, जहां की संस्कृति में स्वस्थ परंपरायें हैं वहां अलिखित संविधान सफल रहता है। वही जनमानस को स्वीकार्य होता है। वहां धनबल या जनबल नहीं बुद्धिबल को प्राथमिकता देने का अवसर होता है। ऐसा न होने पर, एक के ही साथ समस्त भेंड़ों का समूह कुआं में कूद सकता है। जनता की योग्यता, सांस्कृतिक पृष्टभूमि और नेताओं की नैतिकता को दृष्टि में रखकर संविधान और शासन व्यवस्था होनी चाहिए।

अपने देश में मुसलमान और अंग्रेज शासकों ने प्रशासन और जनहित संबंधी कुछ स्वीकार्य परंपरायें चलाया है। उन्हें भी बनाये रखते हुए अपनी पुरानी परंपरा के अनुसार कानूनों को लागू किया जा सकता है। याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा टीका अंग्रेजों के समय में भी मान्य थी। प्रिवी कौंसिल तक उसका साक्ष्य प्रस्तुत होता था। उसे हटाकर हिन्दू उत्तराधिकार, विवाह आदि के कानून बनाना संस्कृति व देश के प्रति अन्याय, पूर्वाग्रह व अदूरदर्शिता है।

वर्तमान में, वैश्विक परिवेश के लिए अत्यावश्यक बातों और कानूनों को यथावत बनाए रखना पड़ेगा। उनके अतिरिक्त विषयों पर अपनी रामराज्य की 'निजनिज धर्म निरत श्रुति रीती' की संस्कृति और परंपराओं के अनुसार अलिखित संविधान का प्रवर्तन सफल हो सकता है। इससे सभी जाति और धर्म के लोग संतुष्ट और सुखी रह सकेंगे।

72- विश्वास उत्पन्न करने के लिए शपथ लेने की परंपरा है। इससे सत्य प्रकाशित होना चाहिए। राष्ट्रपति से लेकर मंत्री, अधिकारी व चपरासी तक सत्यनिष्ठा के साथ शपथ लेते हैं। न्यायालय में शपथ के आधार पर साक्ष्य आदि सारे कार्य होते हैं।अब, सब जगह यह एक औपचारिकता मात्र रहगई है। झूठे लोग धड़ल्ले से शपथ लेते हैं। सत्यनिष्ठ की वाणी सही बात पर भी शपथ लेने में लड़खड़ाती है।

तुलसीदास नें भी ऐसा लिखा है -

मुनि समाज अरु तीरथराजू। सांचहुं शपथ अघाइ अकाजू।।
एहि समाज कछु कहंउं बनाई। एहि ते अधिक न अघ अधमाई।।

इसका अर्थ है कि पवित्र जगह में सत्य बोलने के लिए भी शपथ लेने पर भरपूर हानि होती है और वहां असत्य बोलने से बड़ा कोई पाप नहीं है। यह भी ध्वनित होता है कि सत्य के लिए भी शपथ लेने पर कुछ न कुछ मनस्ताप होता है। सत्य के लिए भी शपथ लेना अग्निपरीक्षा है।

सत्य की महिमा ईश्वर के बराबर है। व्यवहार में इसकी आवश्यकता है। सत्य को जानने के लिए परीक्षणीय व्यक्ति का जीवन चरित्र जानना बहुत उपयोगी है। अब आचरण ही विश्वास उत्पन्न करने का स्त्रोत है। स्वभाव के अनुसार ही व्यक्ति के क्रियाकलाप होते हैं। एक प्रश्नावली बनाकर पूछने और उसके सत्यापन से सही बात ज्ञात हो सकती है। यांत्रिक विधि से असत्य को पकड़ने पर भी सत्य कुछ स्पष्ट हो सकता है। आजकल यही उपाय कारगर हो सकते हैं। सत्य के आचरण से ही विश्वास पैदा कर देना महापुरुष का लक्षण है।

73- अपने प्रति हर आदमी ईमानदार हो सकता है। लोगों की परवाह न करके, अपनी रुचि, स्वभाव तथा क्षमता के अनुसार कथनी और करनी में

एकरूपता वाला व्यक्ति अपने लिए ईमानदार कहा जाता है। ऐसा व्यक्ति दूसरों को जानबूझ कर लाभ या हानि नहीं पहुंचाता है, घटना क्रम में भले हो जाता है। अपने क्षेत्र में कार्यरत मजदूर से लेकर उच्च कोटि के विद्वान राहुल सांकृत्यायन जैसे लोग इस श्रेणी के आत्मकेंद्रित ईमानदार कहे जायेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति समाज से बहुत कुछ पाता है। कृतज्ञ व्यक्ति उसका ऋण स्वीकार करता है। उसमें समाज के प्रति ईमानदारी और उपकार की भावना होती है। वह स्वार्थी न होते हुए अपने लिये भी ईमानदार रहता है। अपने परम हित के साथ सार्वजनिक हित के लिए अच्छे कार्य करने का प्रयास करता है। अच्छा या बुरा की जानकारी हर आदमी कर सकता है। जिस काम को छिपाना पड़े वह बुरा है, अपने लिए प्रतिकूल काम दूसरों के साथ करना बुरा है, लोकमर्यादा के विपरीत काम बुरा है। ऐसे मानदंडों से अच्छे-बुरे का ज्ञान हो जाता है। अच्छाई को जानकर सोचने, कहने और करने में एक रूपता होने पर सामन्य व्यक्ति भी अपने साथ ही सब केलिए ईमानदार कहा जाता है।

जो अपने लिए ईमानदार नहीं हैं वह समाज के लिए भी नहीं हो सकता है। आत्मकेंद्रित ईमानदार व्यक्ति भी सदैव निन्दनीय नहीं है। दोनों के लिए ईमानदार व्यक्ति प्रशंसनीय और आदर्श नागरिक है।

74- आजकल नारी और शूद्र के शोषण की समस्या खूब प्रचारित है। यह नारा सामाजिक नहीं शुद्ध राजनैतिक है। समाज को प्रदूषित और वोट की राजनीति करनेवाले जननेता स्वयं इनका शोषण कर रहे हैं और समाज को दोषारोपित करते हैं। यह समाज और देश का भी शोषण है।

अधिकांशतः नारी तृप्ति, संतान और सुरक्षा के लिए विवाह करती है। पुरुष को भी सहयोगी की आवश्यकता होती है।दोनों एक-दूसरे के पूरक होकर एक इकाई बनाते हैं। तब स्वावलंबी व सबल रहते हैं। दो इकाई बनाने पर पुरुष कमजोर हो जाता है। अकेली नारी को सुरक्षा के लिए कोई सहारा अनिवार्यतः चाहिए।सबल बनने के प्रयास में वह शंकास्पद और शिष्ट समाज में निंदनीय हो जाती है। अतः 'न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति',

स्त्री स्वतंत्र रहने योग्य नहीं होती है, यही मान्य है। वीरांगनायें अनेक तरह से सुरक्षित रहकर प्रबल होती थीं। सामर्थ्य में प्रबल होने के कारण पुरुष की प्राथमिकता मान्य है। यह व्यवस्था प्राकृतिक नियम के भी अनुकूल है। इसी में हमारी संस्कृति सुरक्षित रही है। हमारे यहाँ विवाह संबंध स्थायी होता है। इससे पूर्ण विश्वस्त होने की संभावना रहती है। विवेक के अभाव में, तलाक और पुनर्विवाह आजीवन अतृप्ति और अविश्वास के कारण बने रहते हैं।

दलित की समस्या विचारणीय है। आजकाल समाज दलित और सवर्ण दो भागों में विभक्त होगया है। दोनों में संबंध पुरानी संस्कृति के कारण कुछ बना रहता है किन्तु दूरी बढ़ती जा रही है। शूद्र के लिये दलित की उपाधि के साथ उनकी स्थायी पहचान बना दी गई है। अब संपन्नता और शिक्षा के होने पर भी वे दलित ही रहते हैं। ऐसी स्थिति में दलितोद्धार करना समस्या है। संविधान की प्रस्तावना में भाईचारा (फ्रैटर्निटी) की बात है। स्थाई दलित तथा आरक्षण और संरक्षण की व्यवस्था ऐसे कारण हैं जो भाईचारे के प्रविधान के विरोधी हैं। दलितोद्धार में बाधाओं को संविधान से ही दूर किया जा सकेगा। जहां तक गरीबी की समस्या है, वह सभी जाति में है। यह सापेक्ष्य अनुभूति है। सबको समान और संपन्न बनाना कहीं भी संभव नहीं हो रहा है। शोषण नहीं अन्य कारणों से पूरी तरह समानता असंभव है। कहीं भी नहीं है। सबसे अच्छी दशा भारत में ही है। प्राकृतिक नियम, तर्क, सांस्कृतिक आदर्श, मनोविज्ञान, व्यवहार आदि से वस्तुस्थिति का ज्ञान हो सकता है। किन्तु जानने केलिए कोई इच्छुक नहीं है। जहां अज्ञान ही वरदान हो वहां जानने का प्रयास मूर्खता है।

नारी और दलित के तथाकथित शोषण की समस्या से मुक्ति का एक और उपाय है। वास्तविक शोषक बेईमान जननेता हैं। सशक्तीकरण के नाम पर शोषक तथा अपनी जाति और धर्म की जनता को बरगला कर, उन्हें निजी स्वार्थ के साधक और अनैतिक कार्य में सहायक बनाना उन लोगों की नीति है। नेताओं के ऊपर विश्वास करना छोड़ने पर जनता स्वावलंबी होसकती है। हमारी सांस्कृतिक परंपरा और सामाजिक मान्यताओं में सबके शोषणमुक्त और सम्मानित रहने की व्यवस्था है। दूध के लिए जंगल में

मंदार का पौधा खोजने के बजाय घर की कामधेनु की सेवा करना बुद्धिमानी है।

75- शासन सत्ता चाहे जिस प्रकार की हो, वह एक व्यक्ति का वर्चस्व होने पर स्थिर रहती है। वह व्यक्ति धर्म, नैतिकता या कर्तव्यबोध से नियंत्रित नहीं हो तो निरंकुशतंत्र हो जाता है। तब सशक्त समाज या कोई सक्षम व्यक्ति ही नियंत्रण करता है। अशक्त समाज कुछ नहीं कर सकता है। भारत में ऐसी स्थिति उत्पन्न है। धर्म की परिभाषा विकृत हो गई है। जाति, धर्म, लिंग, क्षेत्र तथा संस्कृति के आधार पर भेद करके समाज को अनेक परस्पर विरुद्ध वर्गों में बांट दिया गया है। आकर्षक आंकड़ों के द्वारा विकास और संपन्नता का प्रलोभन तथा काल्पनिक भय के प्रचार से अंधभक्त बनाने वाले जननेताओं ने समाज को असंगठित बनाकर निर्बल कर दिया है।भारतेन्दु हरिश्चंद्र की लाइन –'सब मिलि रोअहु भाई, भारत दुर्दशा देखि नहिं जाई' याद आती है।

अब, प्रबुद्ध नवयुवकों के द्वारा सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक क्रांति की आशा की जा सकती है। उनको अनुभवी समाजसेवकों का मार्गदर्शन तथा धर्म, संस्कृति, लोकनीति, हिंन्दुत्व, राजनीति आदि के विषय में साहित्य और शिक्षा उपलब्ध कराना प्राथमिक कार्य है। परिवर्तन अनिवार्य है।

76- संतान के प्रति सहज प्रेम समस्त प्राणियों में होता है। यह सृष्टि के संचालन के लिए अद्भुत मानोभाव है। शिशु की उम्र बढ़ने के साथ घटते हुए यह ममता समाप्त हो जाती है। आगे चलकर यह संबंध दुर्लभ हो जाता है। बहुत कुछ तो स्वार्थ के लिए ही रहता है। प्रत्येक योनि में नवजात संतान के प्रति ममता सहज प्रवृत्ति है, यह दैवी विधान है।यही बात वैदिक साहित्य और गीता आदि ग्रंथों में भी लिखित है।

'स एकाकी न रेमे। सोऽकामयत् एर्कोहं बहुस्याम।' तथैव 'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर्जायमानो बहुधा विजायतजायते।' इन मंत्रों से इंगित है कि प्रजापति ने ही, एक से अनेक होने की कामना से, सृष्टि परंपरा को आरंभ किया। गीता में इन वेदवाक्यों का विस्तार इस तरह है-

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहयम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।।
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।।

प्रकृति (महत्तत्व) योनि है। उससे चैतन्यरहित मूर्ति उत्पन्न होती है।उस मूर्ति में चैतन्य का बीज पुरुष द्वारा डालने से शरीरधारी जीव बनता है।

इस जीव में भी' बहुस्याम' की भावना वंशानुगत चली आती है।इसी भावना के कारण योनि और बीज स्वरूप स्त्रीपुरूष दोनों में संतान के प्रति ममता स्वभाविक होजाती है। शारीरिक निर्माण में माता का और बौद्धिक निर्माण मे पिता का अंश अधिक होता है। इसीलिए, माता पुत्र के शरीर (आयु) के प्रति और पिता उसकी बुद्धि (प्रतिष्ठा) के प्रति अधिक ममता रखता है। ममता के स्वरूप में भेद भी प्रकृति और पुरुष में स्थित अंतर के अनुसार ही है। प्रथम सृष्टि अद्भुत रही है, अतः, उससे विकसित चतुर्विध प्राणी भी संतान के प्रति अद्भुत स्वभाव के होते हैं।

77- किसी देश को स्वतंत्र रहने के लिए समाज में संजीवनी शक्ति चाहिए। सहनशीलता ही नहीं, आक्रामकता भी संजीवनी शक्ति का अंग है।किसी को लूटने या उसका शोषण करने केलिए आक्रामकता आर्य संस्कृति का लक्षण नहीं है।सबको आर्य (सुसंस्कृत) बनाने तथा स्वाभिमान की रक्षा केलिए यह आवश्यक है।अपने देश में कुशासन होने पर, राजा को नियंत्रित करने केलिए भी समाज की संजीवनी शक्ति अपेक्षित है। प्रबुद्ध जनबल ही देश की सर्वोपरि शक्ति है।

जनता के शक्तिहीन होने पर ही देश में पराधीनता और शोषण होता है। भारत, चीन, लंका आदि एशिया के देशों के गुलाम होने का कारण जनता में संजीवनी शक्ति का अभाव था। बौद्ध धर्म, वैष्णव, वारकरी आदि आत्मकेंद्रित बनाने वाले संप्रदाय भी जनता को निःशक्त करने के कारण रहे हैं। छोटा सा नेपाल देश आक्रामक जनशक्ति के कारण कभी गुलाम नहीं हुआ। जैसी जनता की योग्यता होती है वैसा ही उसे राजा मिलता है। महाभारत में राजा को काल का कारण कहा गया है। प्रबुद्ध जनता नैतिक

राजा का कारण है और मृतप्राय जनता अनैतिक राजा का कारण है, यह भी सार्वभौम और सार्वकालिक सत्य है। यथा राजा तथा प्रजा और यथा प्रजा तथा राजा दोनों एकार्थक हैं। पहले समाज बनता है, उसके बाद राजा। लोक का वर्चस्व होना सुशासन का लक्षण है।

भारत में जनता और लोकनीति मृतप्राय हैं। अब, सरकारी सहयोग से निरपेक्ष सामाजिक संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। सब तरह के विकास और देश की सुरक्षा केलिए विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा जनजागरण से लोक में संजीवनी शक्ति का संचार करना ही कारगर उपाय है। प्रबुद्ध जनता से नैतिक सहयोग मिलने पर कार्यक्रम में प्रगति होगी।

78- जब तक हमारी वैदिक संस्कृति का वर्चस्व बना रहा, हम विश्व को सुसंस्कृत करते हुये जगद्गुरु बने रहे।हम अपनी सीमा के आगे, दूर के देशों पर विजय करके, उन्हें अधीनस्थ बनाकर, वहीं के राजा को शासक बनाते थे।स्वयं या अपने किसी व्यक्ति को वहां का शासक नहीं बनाते थे। किसी देश में वहां की संस्कृति और समाज के अनुसार शासक ही सुराज दे सकता है, बाहरी नहीं। जहां अधर्म के राज्य की संभावना हो तो मानवता और नैतिकता होने के कारण विदेशी जनता को भी सुशासन देना हमारा धर्म रहा है।यह हमारी संस्कृति को गौरवान्वित करता है। सांस्कृतिक ह्रास से अशक्त होने पर हमारे साथ ऐसा शिष्ट व्यवहार किसी ने नहीं किया।

मुसलमान और अंग्रेज भारत में आक्रांता और शोषक बनकर लंबे समय तक शासन किये हैं। उनका शासन इस देश केलिए अनिष्टकारी रहा। उन्हें जो आक्रमणकारी और बाहरी नहीं स्वीकार करता है, वह भारतीय नहीं कहा जासकता है। बाहरी लोगों से स्वतंत्रता मिलने पर, अब शासन व्यवस्था स्वदेशी होनी चाहिए। परिवर्तन आवश्यक है।यहां के लिए अपनी प्राचीन संस्कृति को वरीयता देने वाली शासनप्रणाली सफल रहेगी।

79- अपनी संस्कृति के आधारभूत जिन मूल्यों और शास्त्रों के सहारे भारत विश्वगुरु रहा है उनका महत्व भारतीय समाज में भी बहुत कम रहगया है।विश्वस्तर पर उनका मूल्य समाप्त है। दुनियां भौतिक समृद्धि को ही परम

मूल्य मानने लगी है। भारत भी इस परिवर्तन से खूब प्रभावित होचला है। यहां भी सांस्कृतिक मान्यताओं और शास्त्रों की अवहेलना तथा उनका परिहास करनेवाले बहुसंख्यक हो गये हैं। सत्ता की सुरक्षा आदि अनेक कारणों से शासनसत्ता भी संस्कृति और धर्म की परिभाषा बदलकर, वैश्विक परिस्थिति के अनुरूप बन रही है। विदेशियों की राजनैतिक गुलामी से मुक्त होकर हम उन्हीं के सांस्कृतिक और भौतिक मूल्यों के दास होचले हैं।अपने देश की स्थिति देखते हुये, विश्वगुरु बनने की दुराशा छोड़कर, स्वाभिमान पूर्वक स्वतंत्र भारतीय बने रहें तो बड़ी भारी उपलब्धि होगी। बीज सुरक्षित रहेगा। देशकाल के विवेकपूर्वक उपासित अपनी मौलिक संस्कृति और सनातन धर्म ही इसमें सहायक होंगे।

८०- अन्त्योदय, दलितोद्धार, सामाजिक समरसता जैसे उदार मानवीय कार्यों केलिए कुछ लोग हृदय से इच्छुक हैं और प्रयास भी कर रहे हैं। इसके बावजूद समस्या यथावत बनी हैं, शिकायतें बढ़ ही रही हैं। इन समस्याओं का समाधान आर्थिक स्थिति में सुधार, शिक्षा तथा सामाजीकरण, इन तीन से होगा। आर्थिक सहायता तथा शिक्षा केलिए राजकीय प्रयास भी होरहे हैं। इन प्रयासों के बावजूद समस्याओं में कमी की जगह, उनमें वृद्धि होरही है क्योंकि सामाजीकरण पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जा रहा है, जबकि यह सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। शासकीय नीतियां सामाजीकरण में बाधक हैं। इनके कारण वर्गविद्वेश तथा परस्पर अविश्वास व्याप्त है।

वर्तमान में जाति और धर्म के नेता बहुत प्रभावशाली हैं। जनता में स्वार्थी जातीय नेता के प्रति अंधभक्ति होने के कारण उन्हें वास्तविक हितैषी की बात पर विश्वास ही नहीं है। उनके नेताओं का वर्चस्व इसी स्थिति के कारण बना हुआ है। जाति और धर्म के सहारे बने हुये संघटनों को समाप्त करने या सख्त कानून से नियंत्रित करने पर समाज सेवी लोग सफल होंगे। धन और शिक्षा पात्रता के अनुसार परिणाम पैदा करते हैं।सामाजीकरण से पात्रता आती है।

जातीय नेताओं का महत्व समाप्त होने और उनका बहिष्कार करने पर, विश्वासपूर्वक परस्पर व्यवहार तथा योग्य व्यक्ति को आदर देने से सामाजीकरण का प्रयास सफल होगा। इस दिशा में सुधार होने पर

आर्थिक और शिक्षा की दृष्टि से उत्थान हेतु किये जा रहे राजकीय प्रयास भी सफल होंगे। तीनों अंगों पर ध्यान देना आवश्यक है।

81- शास्त्र, तर्क तथा व्यवहार इन तीनों से सम्मत होने पर कोई कार्य या सिद्धांत शुभ परिणाम देनेवाला होता है। प्रत्येक संप्रदाय का कोई न कोई शास्त्र होता है।हमारा वैदिक सनातन धर्म उक्त तीनों को महत्व देता है। इन तीनों से समन्वित आचरण की शिक्षा देनेवाला केवल सनातन धर्म है।

केवल शास्त्र के सहारे आचरण का उपदेश देने वाले संप्रदाय हैं। उनका प्रभाव सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर विवादास्पद हो जाता है। भक्तिपरक संप्रदाय ऐसे ही हैं।

मात्र तर्क सम्मत रहनेवाले व सरल चार्वाक आदि अधार्मिक दर्शन हैं। तर्क अप्रतिष्ठित है, अतः इनका आधार अविश्वसनीय है। वर्तमान में इस दर्शन से प्रभावित अनेक गुरु और उसकी आकर्षक संस्थांयें हैं जो हिन्दू धर्म के नाम पर विदेशों में भी विकसित हो रही हैं। उनकी स्वच्छंद व व्यक्तिपरक जीवन शैली होती है।

व्यवहार में आकर्षक और तर्कसम्मत किन्तु शास्त्र के विरोध से उत्पन्न नास्तिक बौद्ध, जैन आदि संप्रदाय व्यक्तिपरक हैं। एकांगी होने के कारण इनमें वैदिक यज्ञादि में होने वाले सामाजिक कार्य और रहस्यात्मक आध्यात्मिकता का लोप होता है।

मात्र व्यवहार सम्मत भौतिक चिंतन मार्क्सवाद, उपयोगितावाद, भोगवाद आदि अल्पकालिक हित साधक हैं। वे भारतीय परंपरा और आध्यात्मिक दृष्टि से त्याज्य हैं।

कोई न कोई धर्मशास्त्र और दर्शन विश्व भर में है। वैदिक सनातन धर्म और अध्यात्मपरक दर्शन यहां की विशिष्टता है।यह हिन्दू संस्कृति का प्राण है। हम इस विषय में संपन्न और भाग्यशाली हैं। शास्त्र, तर्क और व्यवहार तीनों के अनुसार अपनी भारतीय पहचान सुरक्षित रखना राष्ट्रीयता है।

82- व्यवसायी व्यक्ति द्वारा मुफ्त में कुछ नहीं मिलता है। प्रचार या प्रदर्शन हेतु

कोई उदारता दिखाता है तो सावधान हो जाना चाहिए। बहेलिया जंगल में दाना डालता है तो कबूतर को फंसाने के लिए। सार्वजनिक या किसी व्यक्ति की संपत्ति का प्रयोग मुफ्त में करना चोरी है।उस पर दंड मिल सकता है, मानहानि हो सकती है या भय, मनोविकार और बुरी आदतें दृढ़ होती हैं।याचना से लेने केलिए स्वाभिमान को तिलांजलि पहले ही देनी पड़ती है। परिश्रम और ईमानदारी से प्राप्त पदार्थ तनमन दोनों केलिए अमृत है।

दानबीर से भी केवल आवश्यकता भर केलिए दान, ब्रह्मचारी कौत्स की तरह, लेना चाहिए। इससे दाता और अनुग्रहीता दोनों को पुण्य होता है। दान देने और लेने दोनों से धर्म या अधर्म हो सकते हैं। संग्रह केलिए दान लेना भी परिग्रह है। यदि लेना ही पड़े तो उसे किसी सुपात्र को दान करदेना उचित है। 'त्यागाय संभृतार्थानाम्' -भोग के लिए नहीं त्याग के लिए होने पर धनसंग्रह भी प्रशंसनीय है। 'धन सोई धन्य प्रथम गति जासू।' धन की प्रथम गति दान है।

आदान-प्रदान या भोग और त्याग के विषय में यह पूर्वनिर्धारित नीतियां हैं।

83- परिवर्तन प्रकृति का नियम है। इससे नवीनता बनी रहती है। रुका हुआ पानी दुर्गंधित हो जाता है। बहता पानी निर्मल रहता है। इन प्राकृतिक क्रियाओं से व्यक्ति के जीवन, समाज के संगठन और शासनतंत्र केलिए बड़ी शिक्षा मिलती है। व्यक्ति, समाज और राजनेता भी प्रकृति से प्रभावित होते ही हैं। देश को स्वस्थ रखने केलिए हम शासन पर विचार करेंगे।

प्रजातंत्र में सत्ता का परिवर्तन होते रहना अत्यावश्यक है। देखा जा रहा है कि एक व्यक्ति के हाथ में पांच वर्ष से अधिक सत्ता रहने पर व्यक्तिवाद, परिवारवाद और दलवाद हावी होने लगते हैं। तब राष्ट्रवाद और देशहित उपेक्षित होते हैं। विशेषकर गरीब और अनपढ़ लोगों के देश में ऐसा होता ही है। सत्ता का परिवर्तन होते रहने पर आगे कही जारही बातों पर नेताओं का ध्यान, वादे के अनुसार, देश के हित की ओर आकृष्ट रहता है। तब वे महत्वपूर्ण कार्य को प्राथमिकता देते हैं।

संविधान देश के लिए होता है, देश कोई संविधान ढोने के लिए नहीं

होता है। संविधान की रक्षा के नाम पर देश को बरबाद नहीं किया जा सकता है। उससे कोई समस्या सुरसा के मुंह की तरह बढ़रही है तो देशहित को प्राथमिकता देना चाहिए। संविधान में आवश्यक परिवर्तन होना देशहित में है। संवैधानिक विधि से बनाया गया कानून संविधान की हत्या नहीं कहा जा सकता है। उसमें निहित सदोष प्राविधानों के सहारे ही सत्ता पक्ष अत्याचार करता है। सुप्रीम कोर्ट के आदेश का अनुपालन न करके, किसी बहाने से उसको टालने से, सरकार द्वारा संविधान की हत्या अवश्य होती है। ऐसे देश में, भ्रष्ट नेताओं के कारण, संविधान का दुरुपयोग होता है।परस्पर आरोप-प्रत्यारोप के बजाय, समस्या उत्पन्न करने वाले प्राविधानों को हटाने के लिए संविधान में वृहत् संशोधन करना देशहित में होता है। देशहित सर्वोपरि है।

संविधान और कानूनों के बनाने में देश की मौलिक सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक मूल्य, परंपरा, जनाकांक्षा, जनता की योग्यता, विवादित और अतार्किक रूढ़ि, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आदि पर विचार बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनकी उपेक्षा होने पर शांतिव्यवस्था बाधित होती है तथा अनेक समस्यायें पैदा होती हैं। यह बातें बहुत लोगों को स्पष्ट हैं। इन पर ध्यान देने के लिए ईमानदारी चाहिए।

84- किसी कार्य की सिद्धि केलिए कर्ता का उत्साह सबसे महत्वपूर्ण होता है। सफलता के लिए लक्षण प्रगट होना उत्साह वर्धक होता है। सहयकों कीउपलब्धि सबसे बड़ा सुलक्षण है। जिस काम में बहुत लोगों की आवश्यकता है उसके लिए पर्याप्त सहयोगियों का होना आवश्यक है। तपोबल की बात भिन्न है, बाहुबल और नीति बल से सफलता के लिए समर्थ व पर्याप्त अनुयायियों का मिलजाना शुभ लक्षण है।

मरते समय विराध असुर ने परम पराक्रमी राम को भी नीति बताया कि रावण से निपटने केलिए सुग्रीव से मिलकर सैन्यबल तैयार करें। अकेले पराक्रम दिखाना अपर्याप्त है। राम केलिए सुग्रीव के सहित हनुमानजी जैसे सहायकों और विभीषण जैसे रहस्य बताने वाले मंत्री के मिलने से रावणवध हुआ। चाणक्य केलिए चन्द्रगुप्त जैसा शिष्य मिलने से नंद वंश का नाश हुआ।

सहायकों का न मिलना यह संकेत देता है कि कार्य केलिए उचित समय नहीं है। ऐसा संकेत भी ईश्वर की कृपा है। समय अपार बलवान होता है। ऐसी स्थिति में उचित समय की प्रतीक्षा करते हुए, उत्साह पूर्वक अपनी योग्यता में वृद्धि करना बुद्धिमानी है। लोक में स्वच्छ छवि भी बड़ी सफलता है। नियति ठीक रहने पर असफलता में भी सफलता निहित होती है।

85- योग, तंत्र, यज्ञादि द्वारा किसी व्यक्ति या छोटे समूह को लाभ हानि पहुंचाना संभव है। ईश्वर की वृहद् योजना को नियंत्रित करने के लिए आशीर्वाद ही पर्याप्त नहीं है। मनुष्य में ईश्वरत्व की आशा नहीं करनी चाहिए। उसके लिए क्रिया के क्षेत्र में किसी विशिष्ट व्यक्ति को पैदा करना पड़ता है। विशिष्ट व्यक्ति का लक्षण जन्मजात होता है। उस पुरुष द्वारा ही पुरानी को समाप्त करके नई व्यवस्था चलाई जाती है। यह प्रकृति का नियम है। इस नियम का उल्लंघन करनेवाले हास्यास्पद हो जाते हैं। योग, तंत्र, यज्ञादि से चीन को हराना, भारत को विश्वगुरु बनाना, किसी दल को विजय दिलाना आदि पाखंड है। ऐसा करना असंभव है। असंभव को संभव करने में त्रिशंकु की दशा होती है। मनुष्य को धोखा देने वाला प्रकृति के साथ भी तथैव व्यवहार नहीं कर सकता है। ऐसा प्रयास मूर्खता है।

रामचरित मानस में राजा भानु प्रताप का किस्सा वर्णित है। वे राजा अमर होने की कामना करने से विनष्ट हो गये। अमर होना प्रकृति के नियम के विपरीत है। अतः किसी व्यक्ति से असंभव कार्य की आशा नहीं करें। उसमें ईश्वरत्व की भावना नाशकारी अंधभक्ति है। मनुष्य कितना भी चतुर हो, उसके क्रियाकलाप की सीमा है। वह नियमों के अंदर, प्रकृति की गोद में रहकर ही सुखी और सम्मानित रह सकता है।

86- प्रकृति के नियमों के अधीन रहने केलिए प्रत्येक प्राणी विवश हैं। मनुष्य केलिए भी स्वतंत्रता की बहुत लंबी सीमा नहीं है। सीमा का अतिक्रमण करके, अनियम को नियम माननेवाले आसुरी प्रकृति के होते हैं। उनमें बुद्धि तत्व अत्यंत क्षीण और मन ही प्रबल होता है। गीता के सोलहवें अध्याय में आसुरी योनि के लक्षणों का विशद् वर्णन है। आठवें श्लोक में

कहा है कि वे सृष्टि को स्त्रीपुरष के संयोग से उत्पन्न तथा ईश्वर रहित मानते हैं। अहंकारी प्रकृति के उन लोगों को काम ही सर्वस्व है।इस सिद्धांत से उनमें अनेक दुर्गुण पैदा होते हैं। ऐसी मान्यता वाले आसुरी प्रकृति के लोगों के विषय में कहा है कि वे बारबार उसी योनि में गिरते हुए अधम गति को प्राप्त करते हैं ।

'तानहं द्विषतःक्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रं अशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।।
आसुरीं योनिमापन्ना मूढ़ा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्।।'

अतः, पूर्वजों के अनुभव का लाभ लेकर मर्यादा में रहना सद्बुद्धि का लक्षण है। कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान केलिए शास्त्र को प्रमाण मानना गीता का संदेश और आदेश है।

'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।'

87- अदूरदर्शिता के कारण एक सेवानिवृत्त अधिकारी की दुर्दशा देखी गई। वे घूमते समय बच्चों को टाफी बांठते थे। एक दिन टाफी खत्म होने पर लड़के उन्हें घेर लिये, पत्थल मारने, गाली देने लगे। किसी तरह भाग कर घर में घुस गये। उनकी प्रतीक्षा सड़क पर बच्चे गाली देकर करते थे।

एक सेवानिवृत्त शिक्षक कभी-कभी बच्चों से प्रश्न पूछते थे। उत्तर देने वाले को दो-चार आने कुछ देते थे। यह आज से लगभग पैंसठ साल पहले की बात है। एक प्रश्न का उत्तर देने पर मुझे भी चार आना मिला था। इनकी प्रतीक्षा स्कूल में हमसब अच्छी भावना से करते थे।

आदत डाल देने पर मुफ्तखोर उसे अधिकार समझ लेते हैं, फिर आगे और मांग करते हैं। नदी का पानी खत्म होने पर उसकी तलहटी भी खोदी जाती है।

इन घटनाओं से शिक्षा मिलती है कि फोटो खिंचाकर नहीं, पहचान छिपाकर सहायता या दान, रहीम की तरह नीचे सिर करके, दिया जाय।

अपात्र को कुछ भी मुफ्त मे न दें। मुफ्तखोरी की बुरी आदत न डालें न ही दूसरे में पैदा करें। अगर आदत डाल दिया तो उसे भी नियम बना दें। प्रोत्साहन के लिए सुपात्र को कुछ देना प्रशंसनीय है।

८८- शक्तिपूजा के साथ गणेश पूजा अनिवार्यतः की जाती है। गणेश के बिना सारी क्रिया विफल रहती है। गौरीगणेश, लक्ष्मीगणेश वाणी विनायक, के रूप में काली, लक्ष्मी, सरस्वती की पूजा का ही विधान है। सभी शक्तियों के पहले उपास्य गणेश उनके शोधक अंकुश हैं। उनके बिना शक्ति निरंकुश और आसुरी हो जाती है।

किसी व्यक्ति या पदार्थ के विषय में सोचना और उसके गुणदोष का विवेचन करना भी उससे मानसिक संबंध बनाना है। संबंध का प्रभाव चिंतक के ऊपर ही पड़ता है। अतः चिंतन का विषय अच्छा, सात्विक रखने में आध्यात्मिक लाभ है। इससे आचरण भी शुद्ध रहता है। अतः शारीरिक, वाचिक या मानसिक कोई भी कार्य करने के पहले आध्यात्मिक पक्ष पर ध्यान दें। हर विषय में गुणदोष होते हैं। दोष से बचने केलिए आरंभ में हृदय से गणेश देवता का स्मरण करना श्रेयस्कर है।

ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में पुरोहित रूप से पूजित अग्नि के ही स्वरूप वृहस्पति और गणेश हैं। स्मार्त उपासनाओं में गणेश प्रथम पूज्य देवता हैं।उनकी सही उपासना स्वच्छ हृदय से होती है। उनसे संपर्क बनाये रखने पर सभी संपर्क शुभ हो जाते हैं। उनके अंकुश से शक्ति पर नियंत्रण, निर्विघ्नता, विवेक, सात्विकता आदि सुलभ है। उनको प्रसन्न रखने पर, सभी कार्यों का सुपरिणाम होता है। शक्ति पर संयम, गुणग्राहकता, सात्विकता, बुद्धि व विवेक गणेश देवता के सूक्ष्म स्वरूप हैं। तस्मै श्री गणपतये नमः।

८९- विद्वद्वरेण्य, भारत रत्न की उपाधि को गौरवान्वित करनेवाले आचार्य पी वी काणे ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में भारत के मूल वैदिक धर्म तथा यहां के विविध संप्रदायों की भूत, वर्तमान तथा भावी स्थिति का विश्वसनीय स्वरूप प्रस्तुत किया है। यहां के धर्म किसी न किसी दर्शन पर आधारित हैं। उन दर्शनों के स्वरूप का भी संक्षिप्त तथा सारगर्भित परिचय ग्रंथ में है।

धर्म और दर्शन के स्वरूप में अकल्पनीय परिवर्तन को देखते हुए ऐसा अंतर लगता है जैसे शुद्ध दही की जगह मट्ठे में थोड़ी दही डालकर, उसे ही शुद्ध कहा जाय। सनातन धर्म, बौद्ध, जैन, योग, तंत्र, भक्ति, कर्मकांड, ज्ञान आदि सभी संप्रदाय तथा हिन्दू संस्कृति की वही हालत है। निष्पक्ष लेखक ने शालीन ढ़ंग से विवेकानंद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, जैसे आधुनिक चिंतकों के दर्शन का परिचय, अंतिम भाग के 'भावी वृत्तियां' नामक अंतिम अध्याय में दिया है। इससे वर्तमान चिंतकों की दिशा और गंभीरता का आकलन होता है।

प्रसिद्ध कवि जयदेव ने अपने गीत गोविंद काव्य को पढ़ने की शर्त को ईमानदारी पूर्वक बताते हुए लिखा है--

यदि हरिस्मरणे सरसं मनः यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलिं शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्।।

कवि ने कामकला और भक्ति दोनों को समन्वित कर दिया है। भागवत में रासलीला आदि अंश इस उपासना के पोषक पहले से भी हैं। यही कारण है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम, सती, सावित्री, अनुसूचियां आदि अब हमारे आदर्श नहीं रह गये हैं। जनमानस के कभी प्रेरणास्रोत रहे राम, अब मूर्ति के रूप में पर्यटकों के आकर्षण केंद्र हो गये हैं। धर्म को सरल करते हुये अशुद्ध तक को शुद्ध स्वीकार कर लिया गया। शुद्धता का स्वरूप सभी संप्रदायों में इसी तरह है।

युगधर्म को स्वीकार करना पड़ता है। महामाया की प्रेरणा से सामान्य जनमानस अभिभूत हो जाता है। अपवाद भी हर युग में होते हैं। सतयुग में कलियुग तथा कलियुग में सतयुग के स्वभाव के लोग भी मिलते हैं जो मुख्य धारा से अलग रहते हैं। दूरदर्शी आचार्य पी. वी. काणे ने आदर्श और युगधर्म दोनों का चित्रण किया है।

90- एक दिन मेरा मोबाइल खो गया। आधे घंटे के अंदर ही खोजना आरंभ किया तो स्विच आफ बताया गया। इससे निश्चित हो गया कि किसी ने चुराया है। उस समय मैं देहात में था। तत्काल तो व्यक्तिगत फोन के अभाव में बड़ी असुविधा और हानि की अनुभूति हुई। उसके नोट पैड पर

लिखित प्रभूत सामग्री का खोना अपूरणीय क्षति जैसी लगी। नित्य कुछ लिखने का व्यसन छोड़ना भी मजबूरी में नशे का त्याग करना जैसा लगा। नये सिमकार्ड तथा मोबाइल के लिए आर्थिक भार के साथ दौड़-धूप की समस्या झेलना भी हमारे लिये दुस्साध्य है। मैं बाहर के संपर्क से रहित होकर अपने घर में ही सीमित हो गया। घर में एक दूसरा मोबाइल था जिसका प्रयोग खोने से संभावित कानूनी समस्या के निवारण के लिए कर लिया था। इस तरह आठ-दश दिन बिताया गया। असुविधा और हानि एक पक्ष था। बिना मोबाइल के रहने का लाभ एक दूसरा पक्ष भी दृष्टिगत हुआ जो आकर्षक लगा। एकांत में आत्मचिंतन के लिए पूरा समय मिलने लगा। भविष्य में वृद्धावस्था के सदुपयोग पर विशेष ध्यान देने की प्रेरणा मिली। शनिवार के दिन खोने से व्यसन के स्थायी त्याग हेतु विवश होने का लक्षण लगा, जो ईश्वर की कृपा है।

आजकल सामाजिक व्यवहार के लिए मोबाइल आवश्यक हो गया है।इससे कुछ लाभ और विशेष हानि से सभी अभिज्ञ है, फिर भी प्रज्ञापराध कर रहे हैं। विवशता में बिना मोबाइल और समाचारपत्र के आठ दश दिन रहने का अनुभव हमें बड़ा हितकर लगा। इससे आत्मसंयम करने में सहायता मिल सकती है। पुराने लिखे हुए कई प्रकरणों के विलुप्त होने से हमें संदेश मिला कि उस तरह के विषयों पर पर्याप्त लिखा जा चुका है। अब जीवन की साधना संबधी विषयों पर कुछ लिखकर, शनैः-शनैः, लेखन से विराम लिया जाय। ऐसा सोचने के लिए अवसर देना दैवी व्यवस्था है। देशकाल के अनुसार स्वधर्म पर आरूढ़ रहकर फल केलिए ईश्वर की योजना को सहर्ष स्वीकार करने में ही आनंद है। अकारण प्रसन्न रहने पर आगे का मार्ग स्वतः प्रशस्त होता है।

91- गीता में एक जगह ईश्वर को सत् तथा असत् दोनों कहा गया है- 'सदसच्चाहमर्जुन'। दूसरी जगह ध्रुव सिद्धांत है- 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'। इसमें असत् को शशश्रृंग की तरह सर्वथा अभाव रूप माना गया है। वेदांत में अभाव कोई पदार्थ नहीं है। असत् का भाव ही संभव नहीं है तो ईश्वर सदसद् दोनों कैसे है, इसी का समन्वय अभीष्ट है।

मांडूक्योपनिषद् में 'सोयमात्मा चतुष्पाद' अर्थात् आत्मा के चार चरण है, ऐसा कहा है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्त अवस्था तीन पाद हैं। चतुर्थ पाद के लिए प्रपंच शून्य, अद्वैत शिव आत्मा कहा है – 'प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं तुरीयं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः'। इससे आभास होता है कि पहले तीन पाद आत्मा के नहीं है केवल चतुर्थ पाद ही आत्मा है। किन्तु ऐसा नहीं है। एक ही प्रकरण में परस्पर विरोधी बातें होना असंभव है। प्रथम तीन मायिक होने से मिथ्योपाधिक आत्मा हैं। चतुर्थ पाद निरुपाधि आत्मा है। चारों पाद में ब्रह्म ही है। इसी तरह से सदसच्चाहमर्जुन का भी अर्थ समझना ठीक लगता है।

गीता में अन्यत्र भी ऐसे प्रयोग हैं।अध्याय तेरह में ईश्वर के लिए 'न सत्तनासदुच्यते' सदसत् से परे कहा है। यहां वाणी और इन्द्रियों से परे अर्थ किया जाता है। इसी तरह अध्याय ग्यारह में 'त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्' सदसत् से परे अक्षर कहा है। यहां भी दृष्ट और अदृष्ट से परे अविनाशी, सदैव एकरस अर्थ किया जाता है। इन दृष्टांतों से स्पष्ट है कि दार्शनिक शब्दों का प्रयोग सर्वत्र पारिभाषिक अर्थ में नहीं हुआ है। यहां असत् का प्रयोग चतुष्कोटि विनिर्मुक्त माया के अर्थ में मानने पर विरोधाभास समाप्त हो जाता है। सर्वत्र समन्वित अर्थ निकलता है। ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। अतः मायोपाधिक तथा निरुपाधि दो तरह के दृष्ट और अदृष्ट ब्रह्म एक ही है। इसी अर्थ में 'सदसच्चआहमर्जुन' कहा गया है।

92- इस सृष्टि का आरंभ ब्रह्मनाद ओंकार से है। इसी से ही अनन्त विस्तार है। नाद ही अक्षरों के द्वारा विस्तृत होते हुए, शब्द, वाक्य और अर्थ के रूप में व्यापक शब्दब्रह्म है। ब्रह्म से ईश्वर, उससे ब्रह्मा और ब्रह्मा से प्रजापति, प्रजापति से विराट स्वरूप ऋषि, देवता, असुर आदि से कीट पतंग तक का सृष्टिक्रम है। कार्य की अपेक्षा कारण अधिक सूक्ष्म, व्यापक और प्रबल होता है। कार्य में क्रमशः सत्वगुण का ह्रास और रज-तम की वृद्धि होती है। अतः देवता की सामर्थ्य सीमित होती है, ब्रह्म और ईश्वर की सामर्थ्य अनन्त है। उसी ब्रह्म का प्रथम व्याकृत रूप ओंकार है जो त्रिगुणात्मक माया के संचालक ईश्वर का ही स्वरूप है। ईश्वर सर्व सत्ता संपन्न होता है। वही देवताओं को शक्ति प्रदान करता है। ओंकार एकाक्षर

ब्रह्म है, वही नादब्रह्म या ईश्वर है। उसकी वाणी होने के कारण वेदवाक्य पूर्ण सत्य हैं। देवता या देवदूत की वाणी की अपेक्षा वह अधिक विश्वसनीय है। उससे उत्पन्न वैदिक ज्ञान में विश्वास न करके भटकने वाले अभागे हैं। वे तुलसी की यह उक्ति चरितार्थ करते हैं--

ते नर कामधेनु गृह त्यागी।
खोजत आक फिरहिं पय लागी।।

वेदवाक्यों पर आधारित सनातन धर्म पूर्ण सत्य और विश्वसनीय है। धर्म सनातन है। इसकी अनेक शाखाएं हैं जो कठोर साधना से लेकर सरल आचरण तक का अनुशासन करती हैं। प्रत्येक तरह की रुचि और सामर्थ्य के व्यक्ति केलिए इसमें कई संप्रदाय हैं। हिन्दू कहे जानेवाले लोग अपने संप्रदाय में सनातन धर्म के ही तत्वों से अनुप्राणित हैं।इस धर्म के सूक्ष्म तत्व सत्यनिष्ठापूर्वक सदाचार और न्यायपूर्वक लोकसंग्रह हैं।इनके बिना धर्म पाखंड है।कुछ संप्रदाय लोक और राष्ट्र की उपेक्षा करके अपने संगठन और व्यक्तिनिष्ठता की ही शिक्षा देते हैं, लेकिन सभी अंगों का पोषण किए बिना कोई संप्रदाय अधूरा रहता है। सनातन धर्म के सूक्ष्म तत्वों में ईश्वर या ओंकार की शक्ति अनुस्यूत है। इसके मूल सिद्धान्तों को सुरक्षित रखते हुए प्रवर्तित किसी संप्रदाय के अनुसार श्रद्धापूर्वक धर्मपरायण रहने पर कल्याण संभव है।

93- सत्य, सदाचार और मर्यादा के आदर के अभाव में धर्म पाखंड या प्रच्छन्न अधर्म बन जाता है। ऐसे धर्म से धार्मिक बनने की अपेक्षा अधार्मिक रहना समाज के लिए क्षेमकारक है।पाखंड के द्वारा धार्मिक बनने पर दोनों तरह की हानि है। अधर्म का सेवन व्यक्ति केलिए और पाखंड समाज के लिए घातक बनते हैं। अधार्मिक रहने पर केवल व्यक्ति ही त्याज्य या दंडनीय होता है। किन्तु पाखंडी होने पर समाज और राष्ट्र सभी दूषित और निर्बल हो जाते हैं। सभी धर्मों में सत्य, सदाचार तथा सद्व्यवहार की मान्यता है। अतः 'सत्यान्नास्ति परो धर्मः' तथा 'आचारःपरमो धर्मः' इन वाक्यों को धर्म का आधार मानकर, इन्ही पर दृढ़ रहना लोक यात्रा के लिए पर्याप्त धार्मिकता है।

आजकल धर्म संचय के नाम पर राजकीय व्यवस्था या अन्य प्रपंच से दूर रहने मे ही सुरक्षा है। साधु प्रकृति के लोग अप्रतिष्ठित हैं, अतः नेता और व्यवसायी लोग जनता का शोषण करते हैं। प्रत्येक धर्माचार्य पूंजीपति है। धर्मगुरु के वेश में प्रायः काम और अर्थ के साधक ही हैं। गुरुशिष्य दोनों का पतन हो रहा है। इससे बचने का उपाय यही है कि व्यक्ति को नहीं, सदाचार या किसी भूतपूर्व ज्ञाननिष्ठ महापुरुष की शिक्षाओं को गुरु बनायें। इसीलिए विद्वद्दीक्षा का विधान है। सत्य, सदाचार और यथासाध्य शास्त्रादेश के सेवन से निष्पाप रहने पर परलोक का मार्ग स्वतः प्रत्यक्ष होता है। सतसंग न मिले तो भी शास्त्रचक्षु या आत्मदीप बनने में बहुत कुछ साध्य है।

94- आदर्श जीवनयात्रा के विषय में चिंतन करने पर निश्चय बनता है कि आत्म कल्याण ही यात्रा का स्वर्वोपरि साध्य है। इस यात्रा को सार्थक बनाने के लिए ऋषि ऋण के अंग लोकऋण से उऋण होना आवश्यक है। जिस समाज और संस्कृति ने हमें सामर्थ्य दिया उसके लिए कुछ करना भी हमारा दायित्व है। लोकनीति और संस्कृति की सुरक्षा करना सब का कर्तव्य है। इसके लिए, राजनीति का शिकार होने से बचकर, लोकनीति और संस्कृति के आधार पर ही जन-जागरण व सामाजिक आंदोलन करना उचित है। सुराज लाने के लिए उत्साह और सामर्थ्य हो तभी राजनीति में प्रवेश करें, अन्यथा पंकिल ही होना पड़ता है। अलग रहकर राजनीति को सही दिशा देने में प्रबुद्ध लोग और जीवित समाज सक्षम हैं।

जहां अनाचार की प्रबलता है वहां सदाचारी भी सामाजिक जीवन में दुखी रहता है। अन्याय को देखकर चुप रहना भी पाप है। अतः असंगत कानून का अतिक्रमण करना भी नागरिकों का दायित्व है। यथाशक्ति विरोध न करके अन्याय सहन करने वाला समाज गुलाम प्रकृति का है। उसे दुखी रहना ही पड़ता है। यह कार्य-कारण का वैज्ञानिक सत्य कर्मवाद ही है। 'एकः करोति पापानि फलं भुंग्ते महाजनैः' एक के पाप का फल समाज को भोगना पड़ता है, ऐसा भी देखा जाता है। यह कुसंग और कायरता का फल है। संसार की गति विचित्र है। समय पर चूक करके आजीवन पश्चात्ताप के लिए बाध्य होने से बचना अत्यावश्यक है। आत्मा का पतन

अपूरणीय क्षति है। अतः अपनी शक्ति और स्थिति के अनुसार निर्धारित सामाजिक और व्यक्तिगत स्वधर्म का पालन करते हुए जो भी अच्छा बुरा फल मिले उसे ईश्वर का प्रसाद मानने में ही संतोष और शांति है। इसी से आत्मप्रसाद होने पर जीवनयात्रा की सार्थकता का मार्ग प्रशस्त होता है।

95- गिरिधर कविराय की एक कुंडलिया है - टूटे नखरद केहरी सो बल गये थकाइ। हाय जरा अब आइके वह दुख दियो बढ़ाइ। वह दुख देत बढ़ाइ चहूं दिश जंबुक गाजे। शशक लोमड़ी आदि स्वतंत्र करें सब राजे। आदि। यह कविता ब्राह्मण की प्राचीन स्थिति और आज की दुर्दशा के प्रति अन्योक्ति लगती है। ब्राह्मण का पूर्वप्रताप और वर्तमान निस्तेजता में आकाश पाताल का अंतर दिखाई पड़ता है। चाटुकारिता, बिकाऊ प्रतिभा, कदाचार, धन-पद-प्रतिष्ठा के लिए नीच की अधीनता, स्वाभिमान का अभाव आदि दुर्गुणों के कारण ब्राह्मण पदच्युत और निन्दनीय दशा को प्राप्त है। ऐसे लोगों को ब्राह्मण मानने से संस्कृति नष्ट हो रही है। छोटे-छोटे लोग भी उसके ऊपर आक्षेप करते हैं। ब्राह्मण जाति अपने आसन से अपदस्थ हो गई है।

ऐसा सोचने के अनंतर एक नया विचार आया। वृद्ध सिंह और वर्तमान ब्राह्मण तुलनीय नहीं हैं। सिंह में साहस और शारीरिक बल होता है किन्तु वह बुद्धिबल में दुर्बल होता है। वर्ण संकर नहीं, कुलीन ब्राह्मण के डीएनए में धैर्य और बुद्धिबल के साथ कई गुण होते हैं। अतः उसके नख-रद कभी नहीं टूटते हैं। सन्मार्ग, सत्य, विनम्रतापूर्वक स्वाभिमान, बुद्धि कौशल आदि उसकी स्थाई संपत्ति हैं जिन्हें उससे कोई नहीं छीन सकता है। वह अपने को पहचाने, अपनी योग्यता का आदर स्वयं करे, अपने से हीन व्यक्ति के अधीन कार्य न करें। राजकीय सेवा में यह संभव नहीं है तो निजी संस्थानों में रहे। अपनी प्रतिभा और कार्यशैली से अपनी पहचान प्रदर्शित करे। ऐसी अन्य बातें भी हैं जो विशिष्ट बना सकती हैं। अच्छे शिक्षक, वैद्य, ज्योतिषी, याज्ञिक, लेखक, अन्वेषक, समाज तथा धर्म सुधारक आदि ब्राह्मण के स्वधर्म हैं। जाति- धर्म से नहीं, स्वभाव और विश्वसनीयता के आधार पर भी ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है। रतन टाटा, कलाम आदि इसी तरह के मान्य हैं।

विश्वास योग्य होना ब्राह्मण का स्वाभाविक गुण है। शुद्ध आचरण, पवित्रता, तपस्या, त्याग, वैदिक देवता और ईश्वर की उपासना, स्वाध्याय आदि उसके कर्तव्य हैं। पवित्र ब्राह्मण सब का सुहृद व हिन्दू समाज की धुरी रहा है। उसके सुदृढ़ रहने पर क्षत्रिय तथा अन्य सब यथास्थान बने रहते हैं।कुछ लोग भी वास्तविक ब्राह्मण बने रहें तो समाज जाग्रत रहेगा।

96. सामान्यतया अच्छे और प्रभावशाली व्यक्तियों को योग्यता से अधिक ऊंचे पद पर आसीन करके बदले में उनसे अपने पक्ष में झूठ बोलवाना भी एक कुनीति चलपड़ी है। उन्हें अपनी तरह बनाना एक कुचक्र है। बहुत प्रतिष्ठित महापुरुषों को भी अपनी श्रेणी में घसीटना भी उसी का अग्रिम स्वरूप है। तुलसी ने ऐसे लोगों के लिए लिखा --

मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा।।

पंडतों ने ठीक कहा -प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा। अतः अपनी योग्यता के बल पर प्रतिष्ठित होना और उस पर बने रहने केलिए संघर्ष करना उचित है।

97. जातिवाद भारतीय धरती की विशेष प्रकृति, व्यावहारिक और वैज्ञानिक व्यवस्था है किन्तु इसके स्थान पर यह मनुवाद की कुटिल देन मान ली गई है। इस देश में कोई न कोई जाति सब की है। जाति एक स्थायी उपाधि बन गई है। इसी जातिवाद के आधार पर अनेक सुविधाएं पाने वाले लोग अपनी जातीय पहचान सुरक्षित रखना चाहते हैं। यदि यह व्यवस्था स्पृहणीय है तो मनुस्मृति का विरोध नहीं करना चाहिए। किन्तु वही लोग स्मृति और मनुवाद का विरोध भी करते हैं। जिस डाली पर बैठे हैं उसी को काटने वाले मूर्ख कहे जाते हैं।

वास्तव में संदर्भित वर्ग की समस्या आर्थिक कमजोरी से अधिक बौद्धिक विपन्नता है। समाज को दो परस्पर विरोधी वर्गों में बांट करके इनके बहुमान्य नेताओं नें ही इन्हें बेवकूफ बनाया है। सामाजीकरण के अभाव में, सारी सामाजिक संस्थाएं इस विपन्नता को दूर करने में असफल हैं। अन्त्योदय आदि के पवित्र उद्देश्यों का कोई परिणाम नहीं है। परस्पर विश्वास पैदा करने के बाद ही योजनायें सफल होंगी। यह सामाजिक समस्या है जिसमें राजकीय नीतियों का अनुकूल रहना भी परमावश्यक है।

98. कुछ वेद मंत्रों के साक्ष्य में, मृत्यु के बाद गति और पुनर्जन्म के विषय में ईश्वरीय व्यवस्था का निरूपण प्रस्तुत हैः-

1- योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमर्न्येनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।। कठ,2/2/7

2- अन्य श्रुति, ऐतरेय ब्रह्मण में – यथा प्रज्ञं हि संभवाः।

3- ईशोपनिषद में उक्त रहस्य निम्नवत है।
वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तंशरीरम्।
ओं क्रतो स्मर कृतंस्मर क्रतो स्मर कृतंस्मर।।

यहां वायु शब्द प्राण के अर्थ में है। क्रतो शब्द संकल्पात्मक मन के अर्थ में उसका संबोधन है।

इन श्रुति वाक्यों की भावात्मक व्याख्या इसतरह बताई गई है।

1- कठोपनिषद् के मंत्र में मृत्यु के बाद प्रणियों की गति बताई गई है। सामान्य जीव शरीरधारी बनने के लिए, अपने कर्म और आध्यात्मिक ज्ञान के अनुसार, किसी योनि में जाने का प्रयास करते हैं। अधम कोटि के जीव स्थावर पाषाण आदि बनकर पड़े रहते हैं।

2- ऐतरेय ब्राह्मण में भी आध्यात्मिक ज्ञान के अनुसार अगला जन्म होना कहा है।

3- ईशोपनिषद् में मृत्यु के पूर्व पवित्र जीव की कामना वर्णित है कि प्राण सूत्रात्मा प्रजापति को प्राप्त हो जाय और शरीर भस्मसात हो जाय। इसके लिए मन जीवन भर की अपनी करनी का स्मरण करे। यहां ज्ञान का उल्लेख नहीं है तथापि चिंतन के लिए ज्ञान आवश्यक है, अतः वह अंतर्भूत है।

सब का सारांश है कि मृत्यु के बाद हमारा भविष्य हमारे कर्मों और आध्यात्मिक ज्ञान पर निर्भर करता है। अतः हम अपना भविष्य आत्मान्वेषण द्वारा स्वयं जान सकते हैं।

ओम् चरैवेति, चरैवेति, चरन्वै मधुविन्दति ओम् ।

९९. आपद्धर्म का सेवन आपत्ति के निवारण मात्र के लिए करना उचित है, सुविधा या किसी लाभ के लिए नहीं। अपने आश्रित केलिए आपत्ति निवारण का प्रबंध कर देना धर्म है ।

यह शिक्षा छांदोग्य उपनिषद् के ऋषि उषस्ति चाक्रायण की आख्यायिका से मिलती है। प्राणरक्षा के लिए हाथीवाले से मांग कर जूठा उड़द खायलिया किन्तु जूठा पानी लेने से इंकार कर दिया क्योंकि साफ पानी मिल सकता था। कुछ उड़द को बचाकर अपनी क्षुधार्त पत्नी केलिए भी ले गये।

१००. अपने या सार्वजनिक विषय में विषम परिस्थिति का चिंतन करना और प्राप्त निर्णय के अनुसार यथासाध्य प्रयास करना स्वधर्म है। ऐसा न करके उन परिस्थितियों पर चिंता या दया मात्र आत्मघाती भावनायें हैं। सहानुभूति दया से भिन्न भावना है। स्मरणीय है कि चिंता, ईर्ष्या और खाली दया करना स्वयं पैदा की गई कष्टकर भावनयें हैं। इनकी जगह स्पर्धा, चिंतन और सक्रिय सहयोग यशस्कर हैं।

१०१. जार्ज बर्नार्ड शा ने कहा "Why should I engage others when I myself can pat my back better". अर्थात् अपनी प्रशंसा मैं बेहतर ढंग से कर सकता हूं तो इसके लिए दूसरे को क्यों लगाऊं। उनके अभिमान से आलोचक उनसे ईर्ष्या करते थे। एक बार वे अमेरिका गए। वहां के अखबारों में उनकी आलोचना बड़े-बड़े कालमों में प्रकाशित हुई। एक पेपर के संपादक ने पेपर के किस पेज के कोने में केवल इतना लिखा कि यूरोप से एक बर्नार्ड शा आये हैं। यह सब से तीखी आलोचना मानी गई। कम शब्दों में उपेक्षा प्रदर्शित करना कटु आलोचना है।

आजकल के अधिकांश राजनीतिज्ञों के चरित्र और उनके द्वारा बनाई गई नीतियों और कार्यकलापों के दूरगामी परिणाम अनिष्टकारी होने की पूरी संभावना है। देश को विपन्न, अशांत, असंस्कृत करने और नई गुलामी देने वाले कानूनों तथा कार्यों से नेताओं द्वारा निजी स्वार्थों को सिद्ध करने के लक्षण स्पष्ट हैं। ऐसे विचार बहुत से चिंतकों, विशेषज्ञों ने और समाजसेवियों के हैं। वे खिन्न भी हैं। इनके कुछ कार्यों की निन्दा करने से

अन्य कार्यों का मौन समर्थन होता है। अतः संछेप में इन्हें तिरस्कार योग्य कहना ही पर्याप्त है। इसके अलावा पापी की चर्चा अकल्याणकारी होती है। माघ कवि ने यही कहा - कथापि खलु पापानाम् अलम् अश्रेयसे ह्यतः। बर्नार्ड शा के विषय में संक्षेप में लिखने वाले बुद्धिमान पत्रकार की बात स्मरणीय है।

102- मृत्यु अवश्यंभावी है, प्राणप्रयाण के समय क्या यहीं रह जायेगा क्या साथ जायेगा, यहां रहने वाले और साथ जाने वाले पदार्थों में क्या कीर्ति और क्या अपयश देने वाले हैं, क्या सुखद और क्या दुखद हैं इनका ज्ञान सभी को हो जाता है। हर कार्य को करते समय इनका स्मरण बना रहे तो व्यक्ति पूर्ण मानव हो सकता है।

हमारे ज्येष्ठ भ्राता श्रद्धेय कमला शंकर तिवारी के, तीन दिन पूर्व, महाप्रयाण के उपलक्ष्य में श्रद्धांजलिस्वरूप यह संदेश प्रसारित है।

103- सृष्टि क्यों और क्या है? चिंतकों केलिए यह सबसे जटिल प्रश्न है। इसका उत्तर विज्ञान का विषय नहीं है। यदि वैज्ञानिक को इसका निमित्त और उपादान कारण ज्ञात होता तो दूसरे आकाश और दूसरी अनंत सृष्टि की भी कल्पना होसकती थी। दर्शन में इस प्रश्न का उत्तर देने के प्रयास हैं किन्तु विभिन्न विचारकों के निर्णय अलग अलग हैं। लगता है कि संतोषजनक उत्तर संभव नहीं है। इस प्रश्न के अनुत्तरित रहने पर दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है। सृष्टि ऐसी ही रहेगी यह मानकर, इसमें देश-काल के अनुसार भौतिक लोक उपास्य है या सार्वकालिक सत्य के अन्वेषण में आध्यात्मिक लोक के ही लिए जीयें या दोनों के लिए प्रयास करें। दोनों प्रश्नों पर विचार-विमर्श दिये जा रहे हैं।

सृष्टि क्यों है, इसका उत्तर आध्यात्मिक चिंतकों ने देनें का प्रयास किया है। मांडूक्य कारिका में इसका विवेचन है। कुछ कारिकायें द्रष्टव्य हैं-

विभूतिं प्रसवं त्वन्ये मन्यन्ते सृष्टिचिन्तकाः
स्वप्नमायास्वरूपेति सृष्टिरन्यैर्विकल्पिता।। 1/7

इच्छामात्रं प्रभोःसृष्टिरिति सृष्टि विनिश्चिताः।
कालप्रसूतिं भूतानां मन्यन्ते कालचिन्तकाः।।1/8

भोगार्थं सृष्टिरित्यन्ये क्रीडार्थमिति चापरे।
देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा।।1/9

उपर्युक्त कारिकाओं में विभिन्न चिंतकों द्वारा बताए गए विकल्पों में ईश्वर की विभूति, स्वप्नवत, कर्ता की इच्छा, काल, भोग, कर्ता का विनोद को कारण रूप गिनाने के बाद, गौड़ पादाचार्य ने उन्हे स्वयं नकारते हुए कहा है कि उस आप्तकाम ईश्वर की इच्छा नहीं संभव है। सृष्टि उसका स्वभाव है। इतने से भी संतुष्ट न होकर आचार्य प्रवर ने अजातिवाद को सिद्धांत बताते हुए, सृष्टि को ही नकार दिया। अलातचक्र प्रकरण की बाईसवीं कारिका में यही है। स्वतः, परतः, सत्, असत्, सदसत् किसी तरह की सृष्टि नहीं है-

स्वतो वा परतो वापि न किंचिद्वस्तु जायते।
सदसत्सदसद्वापि न किंचिद्वस्तु जायते।।

सभी सिद्धान्तों को अनुपयोगी समझते हुए आचार्य शंकर ने इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ना मुमुक्षु ज्ञानी केलिए व्यर्थ कहा है। आगम प्रकरण की सातवीं कारिका के भाष्य में उन्होंने लिखा है—

तुरीयाख्यं परमार्थतत्वम्। अतस्तच्चिन्तायामेवादरो मुमुक्षूणामार्याणां।

न निष्प्रयोनायां सृष्टावादर इति।।

अर्थात्, इस प्रश्न के उत्तर का प्रयास करना आर्यजन के लिए व्यर्थ है।यह मिथ्या तर्कवितर्क मात्र है।

दूसरे प्रश्न का उत्तर ठीक से समझ लेना कल्याणकारी है। उपनिषदादि शास्त्रों में इसका उत्तर है। कर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग दोनों ही उपास्य बताये गये हैं। एकमत होने के कारण यह शास्त्र निर्विवाद विश्वसनीय हैं। गीता का कर्मयोग भी इसी विषय की व्याख्या करता है। इन स्थलों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन लोक परलोक दोनों के लिए मार्गदर्शक है। समाज ने ही हमें ज्ञानराशि दिया है। अतः लोकसंग्रह करना कृतज्ञता है। कृतज्ञता से मानसिक शांति मिलती है। लोक परलोक के संतुलन के साथ आत्महित की साधना शुभ है।

104- किसी साजंमाजिक संगठन और उसके सदस्य को अच्छे व्यक्ति या दल का समर्थन करने और बुरे का विरोध करने की स्वतंत्रता हो तो वह संगठन प्रजातंत्र केलिए अधिक उपयोगी होसकता है। एक राजनैतिक दल से संबद्ध होजाने पर वह संगठन सामाजिक नहीं रहकर, शंकास्पद होजाता है। धर्म, जाति, दल, प्रदेश आदि के आधार पर अपने स्वतंत्र निर्णय लेने मे असमर्थ संगठन या नागरिक सामाजिक व्यवस्था और देशहित के लिए विश्वसनीय नहीं होता है। चिंतन और निर्णय करने में स्वतंत्र होने पर वे देशहित के लिए अमूल्य हैं। जिस देश में नागरिक स्वतंत्र निर्णय लेने मे असमर्थ है वहां असंतोष प्रच्छन्न रहता है और कानून या कोई भी व्यवस्था ठीक नहीं रहती है। वहां का विकास ज्वालामुखी के मुहं पर बने महल की तरह होता है। ऐसे देश को सुरक्षित रखने के लिए वहां की शासन प्रणाली, प्रजातंत्र नहीं कोई अन्य होनी चाहिए। प्रजातंत्र की सफलता केलिए राजनीति में सक्रिय भाग लेने वाले ही किसी दल के सदस्य बनाये जांय, अन्य लोगों को किसी दल की सदस्यता नहीं दी जाय। किसी देश में निर्दल रहने वाले, स्वतंत्र निर्णय में समर्थ और अच्छे चिंतकों की संख्या जितनी ही अधिक होगी वहां प्रजातंत्र उतना ही सफल होगा, वह देश उतना ही समृद्ध रहेगा। यह शिक्षा की गुणवत्ता पर निर्भर करता है।

105- समाज में नारी का सम्मानित स्थान होना चाहिए। वर्तमान में समाज निर्बल व दिग्भ्रमित है। राजकीय व्यवस्था का विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। नेताओं और व्यवसायियों द्वारा भारतीय नारी को बोल्ड तथा आधुनिक बनाने के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति की पोषक तथा अमर्यादित बनाया जा रहा है। अपने हित के लिए उनका अनेक तरह से शोषण कुछ लोगों द्वारा हो रहा है। वे दिनों-दिन असुरक्षित होती जा रही हैं। अतः देश की सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए, लोकसंग्रह के उद्देश्य से, इस विषय में वर्तमान परिस्थिति का विश्लेषण किया जा रहा है।

अपनी प्राचीन संस्कृति में नारी का सम्मानित स्थान था।वह गृहिणी रहकर गृहलक्ष्मी कही जाती थी। यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता, ऐसी मान्यता थी। विदुषी होने पर शास्त्रार्थ आदि में भी उसका प्रवेश था। पिता, पति और पुत्र ही नहीं, कुल और गांव के लोग भी किसी नारी की सुरक्षा

करना धर्म मानते थे। इस विषय का विषद साहित्य हमारी संस्कृति में उपलब्ध है। अब उनकी उपेक्षा हो रही है। इसका दुष्परिणाम भी प्रत्यक्ष है। अतः अपनी संस्कृति का पुनरावलोकन प्रासंगिक है।

वर्तमान में पुरुष और स्त्री के वैवाहिक संबंध, नारी का परिवार और समाज में स्थान, उसकी स्वतंत्रता, शिक्षा, सुरक्षा, उसके सशक्तीकरण के उपाय और उन उपायों का उलटा प्रभाव विचारणीय हैं। उनको सम्मान और सुरक्षा अपेक्षित हैं। पढ़ने और बढ़ने का अवसर देना भी आवश्यक है। इनके साथ उनकी मर्यादा का विधान भी होना चाहिए। भारतीय और अमेरिकन महिला एकसाथ बनना असंभव है। उनकी नग्नता और चित्र का उपयोग मनचलों के आकर्षण और विज्ञापन का साधन बनाना नारी का अपमान है। नारी द्वारा पुरुष को मानसिक संवेग उत्पन्न करना आपराध है। फिर भी, चाहे जिस पक्ष की गलती हो पुरुष की कोई हरकत दंडनीय अपराध है। यह सत्य है कि वर्तमान का मानसिक संवेग भविष्य के संभावित भय से ही नहीं, अवश्यंभावी भय से भी प्रबलतर हो सकता है जिससे सुरक्षा की समस्या तीव्र हो जाती है। अतः नारी का स्वच्छंद होना अनुचित है। स्वतंत्रता और स्वच्छंदता में अंतर है। शालीनता नारी का आभूषण है। इन मूल्यों केलिए समाज का सहयोग ही कारगर है। अतः नारी को मर्यादा में रखने के लिए सामाजिक संस्थाओं का अधिकार अत्यावश्यक है। सिनेमा जगत की नारियों का अनुकरण और हिन्दू कोड बिल से लेकर आजतक बनते जा रहे कानूनों के प्रभाव से परिवारों का विघटन, परस्पर अविश्वास तथा नारियों के प्रति अपराधों में उत्तरोत्तर वृद्धि सिद्ध कर रही है कि राजकीय व्यवस्था ही नारी को अशक्त तथा हिंसा का शिकार बना रही है। यह व्यवस्था नारी या समाज किसी के हित में नहीं है। नारियां भी बहुत कम संख्या में इन नियमों से सहमत हैं। भारत की कुलीन नारी को पाश्चात्य संस्कृति स्वीकार नहीं है। वोट और अर्थ के लिए समाज, हिन्दू, राष्ट्र और देश को खतरा उत्पन्न नहीं करना चाहिए। संस्कृति ने ही हिन्दू को इस्लाम तथा ईसाइयत से बचाया था। इसके अभाव में हिन्दू स्वतः समाप्त हो जाएगा। हिन्दुत्व की रक्षा के लिए भी नारी की सुरक्षा आवश्यक है। सामाजिक चेतना, जन-जागरण और जाति

धर्म की सीमा से बाहर आकर, हानिकर कानूनों का विरोध, प्रदर्शन तथा सामाजिक क्रांति ही इसका निदान है।

106- ब्रह्म का प्रथम व्याकृत रूप ओंकार है। इस ओंकार से उत्पन्न अनंत सृष्टि ब्रह्म का पूर्ण व्याकृत (इन्द्रिय गम्य) रूप है। जीव विवृत (शरीरधारी) रूप में आकर ब्रह्म और अपने को जानने का प्रयास करता है। वह ब्रह्म सूक्ष्म सत्तामात्र और ओंकार से निःसृत अनंत सृष्टि, दोनों रूप में एक ही है। सूत्र और भाष्य की तरह ब्रह्म और ओंकार एक ही अर्थ के बोधक हैं। 'अध्यारोपावादाभ्यां निष्प्रपंचः प्रपंचते'। अध्यारोप से भाष्य और अपवाद से सूत्र बनता है। कालक्रम से चलती हुई यह व्यवस्था ही सृष्टि का प्रपंच है। सूत्र को जानने से भी सर्वज्ञता (प्रज्ञानं ब्रह्म, आत्मबोध) संभव है- 'यस्मिन् ज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति'। सूक्ष्म तत्व को जानकर सर्वज्ञ तथा ब्रह्म होना जीव की चरम गति है। इस गति को प्राप्त कराने के लिए, पवित्र रहकर, ओंकार की साधना करने का विशेष महत्व वेदांत के कई ग्रंथों में बताया गया है। यह औपनिषदिक विद्या है। गीता में भी इसका प्रतिपादन है। मृत्यु के समय में ओंकार को तारक मंत्र कहा है--

ओमित्येक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

107. बाल्यकाल में काई वर्ष तक मैं माता जी के ही पास सोता था। माता जी के भजन की गीत के वह स्वर अब भी मेरे कान में गूंजते हैं, जो चार बजे प्रातः जगने पर वे गाती थीं। कुछ अंश प्रस्तुत है-- आगे चल हो मन राम आगे त रामा मिलिहीं, आगे चल हो मनराम आगे त तुलसी मिलिहीं, ओन्हहूं के किहे परनाम आगे त गंगा मिलिहीं, ओन्हहूं के किहे परनाम आगे त रामा मिलिहीं। आगे ब्रह्मा, विष्णु, शंकर मिलिहीं तक भजन है। अंततः रामा मिलेंगे ही यही तात्पर्य है। रामा कौन हैं यह समझने पर इस लोकगीत में आर्ष चिंतन की गहराई दिखाई पड़ती है। यह सामान्य लोकगीत नहीं है। इसमें आध्यात्मिक यात्रा का विवरण है। आचरण से पवित्र रहने के लिए तुलसी, गंगा, गौ और बाधाओं को दूर करके मार्गदर्शन व लक्ष्य की प्राप्ति कराने में सहयता के लिए ब्रह्मा, विष्णु, शंकर की उपासना बताई गई है।

ब्रह्मा, विष्णु, शंकर इन त्रिदेवों के भी आगे रामा को बताने पर स्पष्ट है कि अक्षर ब्रह्म (ओंकार या परब्रह्म) ही लक्ष्य हैं।यही अजन्मा तत्व कबीरदास का 'राम नाम का मर्म' है । इससे जान बन्यन के उपन्यास 'पिल्ग्रिम्स प्राग्रेस' की भी याद आती है। उसमें आध्यात्मिक मार्ग पर चलने पर आने वाली बाधाओं का वर्णन है, जिन्हें पार करना पड़ता है। इस गीत में अनन्त की यात्रा में सहायक पड़ाव वर्णित हैं। वह लौकिक से पारलौकिक जीवन की यात्रा का रूपक है, यह आध्यात्मिक जीवन की अनंत यात्रा हेतु लोकगीत है। इन दोनों से सन्मार्ग पर 'चरैवेति' की प्रेरणा मिलती है।

108. मैं कौन हूँ, क्या हूँ आदि प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिए चिंतन करना और निश्चय होने पर उसी पर निदिध्यासन करना सन्मार्ग का अन्तिम पड़ाव है। 'यस्मिन् ज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति' उस सूक्ष्म तत्व को जानने से सबकुछ ज्ञात होता है, इस औपनिषदिक ज्ञान में विश्वास पूर्वक, आत्मविद् बनना जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। कुछ श्रवण या स्वाध्याय और प्रवचन में समय देना आदर्श दिनचर्या है। वृद्धावस्था का संस्कार और ज्ञान अगले जन्म में शीघ्र जाग्रत होजाता है। कोई भी सत्कार्य निष्फल नहीं जाता है। वृद्धावस्था में निरोग रहते हुए आयुष्य मिलना ईश्वर की बड़ी कृपा। इस समय का सदुपयोग करने के लिए ब्राह्मण सन्यासी होता था, राजा बनवासी बनता था, वैश्य उदासी होता था और शूद्र हरिभगत तीर्थवासी बनजाता था। आज भी वार्धक्य का सदुपयोग करना संभव है। इसकी कामना करने के लिए सदाचार का पालन करना और ईश्वर को अंतर्यामी जानते हुए निर्मल हृदय रहना प्राथमिक ब्रत हैं। वयोवृद्ध जनों के लिए यह संदेश पाथेय है।

। ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमःॐ ।